कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥" दीपिकायाम्-"वर्षे पर्जन्यके काले षष्ठीं रिक्तां शनिं कुजम् । अनध्यायान्विना नत्वा देवं ग्रन्थकृतं गुरुम् ॥ " श्रीधरः-" हस्तादित्यसमीरमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाराकर्यशादिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये । पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः ॥ " विष्णुधर्मोत्तरे-"पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं तथा देवीं सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥ एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्घृतम् । दक्षिणाभिर्द्विजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥" इति ॥ अथ धनुर्विद्या । दीपिकायाम्-"अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्राग्निपित्र्यध्रुवहरिवसुमूलेष्विन्दुभागान्त्यभेषु । शनिशशिबुधवारे विष्णुबोधेऽपि पौषे सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥" अनुपनीतबाले निर्णयः । अथानुपनीतस्य विशेषः ॥ गौतमः-' प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षाः ' इति । भक्षणं लसुनादेरपि इति । भक्षणं लसुनादेरपि इति हरदत्तः ॥ अपरार्के वृद्धशातातपः-"शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् । रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके ॥ प्राक् चूडाकरणाद्बाल प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः । कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम् ॥ २ ॥" आपस्तम्बोऽपि-'अन्नप्राशनात् प्रयतो भवत्यासंवत्सरादित्येके' इति ॥

---

पंचमवर्षमें कुम्भकी संक्रांतिको त्यागकर उत्तरायण सूर्यमें विद्याका आरम्भ करे । दीपिकामें कहा है कि, वर्षाका समय, छठ, रिक्ता, शनि, मंगल दिन तथा अनध्यायको त्यागकर देव और ग्रन्थके कर्ताको नमस्कार करके विद्यारम्भ करे । श्रीधरने कहा है कि, हस्त, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, रेवती, अश्विनी, चित्रा, श्रवण, मंगल, शनैश्चर, सूर्यसे भिन्न वार, स्थिर राशि दोनों पक्षोंका पूर्ण चन्द्रमा, प्रतिपदा, रिक्ता, षष्ठी, अष्टमीको त्यागकर तिथि और अष्टमभवनशुद्धवाली लग्नमें विद्यारम्भ करावे । विष्णुधर्ममें कहा है कि, हरि, लक्ष्मी, देवी, सरस्वती, अपनी विद्याके सूत्रकार और विशेषकर अपनी विद्याकी पूजा करके और इन्हीं देवताओंके नामसे घीका हवन करे और दक्षिणाओंसे ब्राह्मणोंका विद्यारम्भमें पूजन करे ॥ अब धनुर्विद्याको कहते हैं-दीपिकामें कहा है कि, पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, पूर्वा फाल्गुनी, स्वाती, चित्रा, कृत्तिका, मघा, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मृगशिरका अन्त्यभाग, शनैश्चर, चन्द्र, बुधवार, विष्णुका जागरण, पौषसे भिन्न महीना, श्रेष्ठसमय और तिथिका योग हो तो धनुर्विद्याका आरम्भ करे । अब उस बालकके निमित्त विशेष कहते हैं जिसका यज्ञोपवित न हुआ हो-गौतमका कथन है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथम बालक बोलने और भक्षण करनेमें स्वच्छन्द है, अर्थात् उसके बोलने और भक्षण करनेमें प्रायश्चित्त नहीं है । हरदत्तने कहा है कि, लहसुनका भी भक्षण करलेनेसे उस अवस्थामें दोष नहीं । अपरार्कमें वृद्ध शातातपने कहा है कि, शिशुका अभ्युक्षण, बालकका आचमन, कुमारका स्नान रजस्वला आदिके स्पर्शमें लिखा है । मुण्डनसे प्रथम बालक, अन्नप्राशनसे

गौतमोऽपि-'न तदुपस्पर्शनादाशौचम् । ' तस्यानुपनीतस्य चाण्डालादिस्पृष्टस्यापि स्पर्शान्न स्नानम् । इदं च षष्ठवर्षात् प्राक्, ऊर्ध्वं तु स्नानं भवत्येव । 'बालस्य पञ्चमाद्वर्षाद्रक्षार्थं शौचमाचरेत् ।' इति स्मृतेः । कामचारादिकेऽप्येवम् ।" ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च । चरेद्गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् ॥" इति स्मृतेरिति हरदत्तः ॥ स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ॥ अथोपनयनम् । आश्वलायनः-"गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा । द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः ॥ " मनुः-" ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥ " विष्णुः-"षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे । अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः ॥ " आपस्तम्बः-"गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत । " बहुवचनं गर्भषष्ठगर्भसप्तमयोः प्राप्त्यर्थमिति सुदर्शनभाष्ये । केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते । आपस्तम्बः-"अथ काम्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादश इन्द्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत् ॥ "

---

प्रथम शिशु, यज्ञोपवीतसे प्रथम कुमार है । आपस्तम्ब कहते हैं कि, अन्नप्राशनसे वा वर्षदिनसे प्रथम सावधान ( शुद्ध ) होता है । गौतमने भी कहा है कि, उसके स्पर्शसे आशौच नहीं लगता, अर्थात् यज्ञोपवीतसे प्रथम बालकका चाहे चांडालने भी स्पर्श किया हो तो भी उस बालको स्पर्श करके स्नान न करना, परन्तु यह छः वर्षसे प्रथममें जानना, इसके उपरान्त स्नानसे शुद्ध होता है । क्योंकि, पांच वर्षके उपरान्त बालककी रक्षाके निमित्त शौच करे, यह स्मृतिमें लिखा है । इच्छासे किये हुए कर्ममें भी इसी प्रकार होता है । ११ वर्षसे प्रथम, ५ वर्षसे पीछे प्रायश्चित्त शुद्धिके निमित्त गुरु और मित्र करे,इससे बहुत छोटे बालकको न अपराध लगता है,न पातक है; यह स्मृतिमें कहा है, यह हरदत्तका कथन है। स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार कहा है।। अब यज्ञोपवीत विधि कहते हैं-आश्वलायनने लिखा है कि,गर्भसे आठवें वा जन्मसे आठवेंमें वा पांचवें वा सातवें वर्षमें ब्राह्मण,ग्यारहवेंमें क्षत्रिय द्विजत्व ( यज्ञोपवीत ) को प्राप्त होते हैं । मनुने भी लिखा है कि, ब्रह्मतेजकी कामनावाले ब्राह्मणका पांचवेंमें और बलकी इच्छावाले क्षत्रिय छठे वर्ष और धनकी इच्छावाले वैश्यका अष्टम वर्षमें यज्ञोपवीत करना चाहिये । विष्णुने भी लिखा है कि, धनकी इच्छावाला छठेमें, विद्याकी इच्छावाला सातवेंमें, सब वस्तुओंकी इच्छावाला अष्टममें और कांतिकी इच्छावाला नववें वर्षमें यज्ञोपवीत करे । आपस्तम्बने यह लिखा है कि,गर्भसे आठवें वर्ष ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करे । सुदर्शनभाष्यमें यह लिखा है कि, 'गर्भाष्टमेषु' यह बहुवचन गर्भसे छठे, सातवें वर्षके ग्रहणके निमित्त है । कोई तो यज्ञोपवीतमें ब्राह्मणको छठा वर्ष नहीं कहते हैं । आपस्तम्बने यह लिखा है कि,ब्रह्मतेजकी इच्छावाला सातवेंमें,आयुकी इच्छावाला आठवेंमें,तेजकी इच्छावाला नवयेंमें, अन्न आदिकी इच्छावाला दशवेंमें, इन्द्रियकी इच्छावाला ग्यारहवेंमें, पशुकी

अत्र गौणकालनिर्णयः । गौणकालमाह मनुः-"आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । आद्वाविंशत्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ " ज्योतिर्निबंधे-"अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरूर्ध्वमब्दतः । अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः ॥ " गर्गः-"विप्रं वसन्ते क्षितिपं निदाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विदध्यात् । माघादिशुक्रान्तिकपञ्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम् ॥ " हेमाद्रौ ज्योतिषे-'माघादिषु च मासेषु मौञ्जी पञ्चसु शस्यते ॥' कालादर्शे वृद्धगार्ग्यः-"माघादिमासषट्के तु मेखलाबन्धनं मतम् । चूडाकरणमन्नं च श्रावणादौ विवर्जयेत् ॥" मैत्रेयसूत्रेऽपि-'वसन्तो ग्रीष्मः शरत् इत्यृतवो वर्णानुपूर्व्येण माघादिषण्मासा वा सर्ववर्णानामेतदुदगयनमनयोर्विकल्पः ।' इति । अत्रेदं तत्त्वं नात्र वसन्तेनोत्तरायणस्य संकोचः । श्राद्धदर्शस्यापराह्णविधिनैवाधाने वसन्तादेः कृत्तिकादिने च सायंप्रातर्विधिना यावज्जीवविधेरिव युक्तः । आद्ययोः परस्परव्यभिचारान्नियमः । अंत्ये निमित्ते साङ्गकर्मोक्तेः कालापेक्षा । इह तूत्तरायणं

---

इच्छावाला बाहरवेंमें यज्ञोपवीत करे । अब गौण समय मनु जी कहते हैं-कि, सोलह वर्षपर्यन्त ब्राह्मणको, बाईस वर्षपर्यन्त क्षत्रियको, चौतीस वर्षपर्यन्त वैश्यको गायत्री उल्लंघन नहीं करती । ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका अपनी अवधिके वर्ष ऊपरले वर्षमें यज्ञोपवीत न होजाय तो वे सम्पूर्ण शूद्रके तुल्य हो जाते हैं । गार्ग्यने कहा है कि, ब्राह्मणका वसन्तमें, क्षत्रीका ग्रीष्मऋतुमें, वैश्यका शरदृतुमें यज्ञोपवीत करना चाहिये और माघसे लेकर ज्येष्ठपर्यन्त पांच मास सब द्विजोंको साधारण हैं, अर्थात् इन महीनोंमें सब द्विज यज्ञोपवीत करें । हेमाद्रिमें ज्योतिषका कथन है कि,माघ आदि पांच महीनोंमें मौंजीबन्धन (यज्ञोपवीत) श्रेष्ठ है । कालादर्शमें वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि,माघ आदि छः महीनोंमें मेखलाबन्धन ( यज्ञोपवीत ) और चूडाकर्म करे और श्रावण आदि महीनोंको त्याग दे । मैत्रेयसूत्रमें भी कहा है कि, वसंत, ग्रीष्म, शरद् य तीनों ऋतु तीनों वर्णोंको क्रमसे हैं वा माघ आदि छः महीने उत्तरायण कालमें करे, इन दोनोंका विकल्प है, अर्थात् तीनों वर्ण चाहे वसंत आदि ऋतुमें, चाहे माघ आदि छः मासोंमें यज्ञोपवीत करे । इसमें यह सिद्धान्त है कि, यहां वसंतसे उत्तरायणका संकोच उस प्रकार नहीं कहा है, जसे अमावस्याके श्राद्धका अपराह्णविधिसे कहते हैं और जैसे अग्न्याधानमें वसंतका कृत्तिका नक्षत्रसे और जैसे यावज्जीव अग्निहोत्रविधिको सायंकाल प्रातःकाल विधिसे संकोच प्राप्त होता है, प्रथम दोनोंमें परस्पर व्यभिचार दोष है, अर्थात् दर्शविना अपराह्ण और वसंतविना कृत्तिका । इससे नियम करदिया है कि, वसंतकी कृत्तिकामें ही करे, तीसरेमें किसी निमित्तसे सांगोपांग कर्मके कहनेसे कर्मकालकी अपेक्षा प्राप्त है अर्थात् जबतक जिये अग्निहोत्र करे, परन्तु इसने यह नहीं कहा कब करे, इससे 'सायंप्रातर्जुहुयात्' इस वाक्यने सायंकाल प्रातःकालकी प्राप्ति बतायी । यहां तो उत्तरायणके विना वसंत प्राप्त हो नहीं सकता, इससे न नियम है और न इसमें निमित्त

विना वसन्तस्याभावान्नो नियमः। न वा निमित्तत्वम्। न चैकं वृणीत इतिवद्-वयुत्त्यानुवादः। तद्वद्वाक्यभेदापरिहारात्। उत्तरायणविधिवैयर्थ्योत्त्वनुकल्पो-ऽयमिति। माघ आदिर्येषां पञ्चानां एवं षट्। पारिजाते बृहस्पतिः—"झषचाप-कुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः। अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु॥" वृत्तशते—"न जन्मधिष्ण्ये न च जन्ममासे न जन्मकालीयादिने विदध्यात्। ज्येष्ठे न मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मङ्गलानि॥" राजमार्तण्डः—"जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो ह्यष्टौ च गर्गो नियतं दशात्रिः। जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ताः खलु जन्ममासि॥ जन्ममासे तिथौ भे च विपरीत-दले सति। कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः॥ जन्ममासनिषेधेऽपि दिनानि दश वर्जयेत्। आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयोऽपरे॥ ३॥" ग्रन्था-न्तरे—"व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात्सकृत्। शुभोऽतिकाले तुर्याष्टव्य-यस्थो द्विगुणार्चनात्॥ शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि। चैत्रे मीनगते

---

है। यदि कोई शंका करे कि, 'एकं वृणीत' अर्थात् एक ब्राह्मणका वरण करे, इसके समान पृथक् करके अनुवाद है, अर्थात् ब्राह्मणोंका वरण करे, इससे ही एकका वरण प्राप्त था, जैसे एकका वरण करे यह सिद्धका कथनरूप अनुवाद है। इसी प्रकार उत्तरायणकी विधिसे ही यज्ञोपवीत सिद्ध होगया था, वसन्तमें करे यह भी सिद्धका कथनरूप पृथक् करके अनुवाद है, सो उचित नहीं, इसमें भी पूर्वोक्तके तुल्य वाक्यभेदरूप दोषका परिहार प्राप्त न होगा, अर्थात् माघआदिमें उत्तरायणमें करे और वसन्तमें करे ये दो विधान करनेवाले वाक्य हो जायँगे, इससे उत्तरायणमें यज्ञोपवीत करे, इस विधिके व्यर्थ हो जानेसे वसन्तमें करे, यह अनुकल्प है, यह इतना यहां निचोड है, यहां माघ आदिमें पांच और एक माघ अर्थात् जिन पांचकी आदिमें माघ इस प्रकार छः मास लेने, कारण कि, यह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है। पारिजातमें बृहस्पतिने कहा है कि, मीन, धन, कर्कका अशुभ भी बृहस्पति विवाह यज्ञोपवीत आदिमें अत्यन्त शुभको करता है। वृत्तशतमें कहा है कि, जन्मका नक्षत्र, जन्मका महीना, जन्मके दिनमें और जेठे पुत्र और जेठी कन्याका ज्येष्ठमासमें मंगलकार्य न करे। राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, वसिष्ठ जन्मसे एक दिनको और गर्गऋषि जन्मसे आठ दिन और अत्रिऋषि जन्मसे दश दिन और भागुरि जन्मसे एक पक्षको अनिष्ट कहते हैं, शेष दिन जन्मके मंगलकार्योंमें श्रेष्ठ हैं। यदि जन्मके महीने, तिथि और नक्षत्रमें पक्षका भेद हो तो मंगलकार्य कर लेना, यह गर्ग, भार्गव, शौनकका मत है। जन्ममासके निषेधमें भी जन्मदिनसे लेकर दशदिन त्याग दे, शेष तिथि श्रेष्ठ हैं। ग्रन्थान्तरमें कहा है कि, यज्ञोपवीतमें जन्मका, तीसरा, दशवां, छठा बृहस्पति एक वार पूजनेसे उत्तम है, अतिकाल होगया हो तो चौथा आठवां, बारहवां भी दूने पूजनेसे श्रेष्ठ है। यदि आठवें वर्षमें जिस बालककी बृहस्पतिशुद्धि न हो, उसका यज्ञोपवीत चैत्रमास,

भानौ तस्योपनयनं शुभम् ॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ ३ ॥" नारदः-"बालस्य बलहीनोऽपि शान्त्या जीवो बलप्रदः । यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते चोपनायनम् ॥" शान्तिश्चाग्रे वक्ष्यते ॥ ज्योतिर्निबन्धे नृसिंहः-"तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी । पक्षयोरुभयोश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥ धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा । शुक्लत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा ॥ २ ॥" टोडरानन्दे वसिष्ठः-नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिनम् । मेखलाबन्धने शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि ॥ प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे न पूर्वा परसंयुता ॥" एतदतीतकालस्यातस्य बटोरुपनयनविषयम् । 'प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णे कदाचिच्छुभगे विधौ । चन्द्रे बलयुते लग्नवर्षाणामपि लंघने ॥" इति व्यासोक्तेरित्याहुः । एवं सप्तम्यपि । तस्या गलग्रहत्वोक्तेः । बृहस्पतिः-'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना ॥' तथा-'मिथुने संस्थिते भानौ ज्येष्ठमासो न दोषकृत् ।' मदनरत्ने नारदः-"विनर्तुना वसन्तेन कृष्णपक्षे गलग्रहे । अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥" अपराह्णस्त्रिधाविभक्तदिनतृतीयांश इत्युक्तम् । तत्रैव

---

और मीनके सूर्यमें उत्तम है । जन्मसे आठवें, सिंहके, नीचके वा शत्रुक्षेत्रके भी बृहस्पति हो तो चैत्रमें मीनके सूर्यमें यज्ञोपवीत श्रेष्ठ है । नारद कहते हैं कि,बलहीन भी बृहस्पति शान्तिसे बालकको बलदायक है, इससे शास्त्रोक्त वर्षमें वा अन्य वर्षमें यज्ञोपवीत करलेना और शान्ति आगे लिखेंगे। ज्योतिर्निबन्धमें नृसिंहने कहा है कि, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, द्वितीया, सप्तमी, ये दोनों पक्षोंकी तिथि विशेष कर अत्यन्त उत्तम हैं । शुक्लपक्षमें यज्ञोपवीत करे तो धर्म काम सिद्ध होते हैं और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा और शुक्लपक्षकी त्रयोदशीकी भी कोई मुनि इच्छा करते हैं । टोडरानन्दमें भी वसिष्ठका वाक्य है कि, कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका दिन नैमित्तिक अनध्याय है, तो भी यज्ञोपवीत, मुण्डन और वेदके व्रतोंमें उत्तम है । कृष्णपक्षकी प्रतिपदा उत्तम है, पर अमावस्या और द्वितीयासे युक्त हो तो श्रेष्ठ नहीं है, यह भी उस बालकके यज्ञोपवीतमें जानना जिस बालकके यज्ञोपवीतका काल बीत गया हो, कारण कि, व्यासने यह लिखा है कि, कदाचित् कृष्णपक्षकी भी प्रतिपदा तब उत्तम है जब चन्द्रमा उत्तम हो और लग्न बलवान् हो और यज्ञोपवीतके वर्ष बीत गये हों । इसी प्रकार सप्तमीको भी जानो, अर्थात् चन्द्र आदिके बलमें शुभ जानो, कारण कि, वह भी गलग्रह तिथि है । बृहस्पतिने कहा है कि, सम्पूर्ण शुक्लपक्ष और पिछली पांच तिथियोंको त्यागकर और सम्पूर्ण कृष्णपक्षकी शुभ हैं । इसी प्रकार वाक्य है कि, मिथुनके सूर्यमें ज्येष्ठ मासका दोष नहीं है । मदनरत्नमें नारदका कथन है कि,वसन्तसे पृथक् ऋतु कृष्णपक्ष और गलग्रहमें तथा अपराह्ण कालमें जिसका यज्ञोपवीत हो वह फिर संस्कारके योग्य है । तीन भाग किये हुए दिनके तीसरे भागको

वसन्ते गलग्रहो न दोषायेत्यर्थः । नारदः-"कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिन-त्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः ॥ " वसिष्ठः-"पापांशकगते चन्द्रे अरिनीचस्थितेऽपि च । अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ अनध्यायस्य पूर्वेद्युस्तस्य चैवापरेऽहनि । व्रतबन्धं विसर्गं च विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ २ ॥" राजमार्त्तण्डः-"आरम्भानन्तरं यत्र प्रत्यारम्भो न सिद्ध्यति । गर्गादिमुनयः सर्वे तमेवाहुर्गलग्रहम् ॥" ज्योतिर्निबन्धे-"अष्टकासु च सर्वासु युगमन्वन्तरादिषु । अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि ॥ " सोपपदास्तु स्मृत्यर्थसारे-" सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ॥ चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोप-पदाः स्मृताः ॥ " एवं प्रदोषदिनवर्ज्यम् । प्रदोषस्वरूपमाह गोभिलः-"षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया तूनयामिका ॥" ज्योतिर्निबन्धे व्यासः-"या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गु-नस्य । कृष्णे तृतीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥ " अत्रापि कृष्णप्रतिपद्वज्ज्ञेयम् । यत्तु बृहद्गार्ग्यः-"अनध्याये प्रकुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् । सप्तमी माघशुक्ले तु तृतीया चाक्षया तथा । बुधत्रयेन्दुवाराश्च शस्तानि

---

अपराह्न कहते हैं और यह मदनरत्नमें ही लिखा है कि, वसंतऋतुमें गलग्रहका दोष नहीं है । नारदने कहा है कि, कृष्णपक्षकी चौथ और सप्तमीसे तीन दिन और त्रयोदशीसे चार दिन ये आठ गलग्रह तिथि हैं । वसिष्ठने कहा है कि, पापके नवांशमें चन्द्रमा हो वा शत्रु-घरका और नीचका चन्द्रमा हो वा अनध्याय हो; ऐसे योगमें जिसका यज्ञोपवीत हुआ हो वह फिर संस्कारके योग्य है । अनध्यायके प्रथम दिन वा परले दिन यज्ञोपवीत विसर्जन और विद्यारम्भ न करना चाहिये । राजमार्तण्डमें कहा है कि, गर्ग आदि मुनियोंने उसको भी गलग्रह कहा है, जहां आरम्भके उपरान्त प्रत्यारम्भ ( विसर्जन ) न बने । ज्योतिर्निब-न्धमें कहा है कि, सम्पूर्ण अष्टका और मन्वन्तरादि और सोपपदामें यज्ञोपवीतका अनध्याय करना चाहिये । स्मृत्यर्थसारमें सोपपदा तिथि यह लिखी है कि, ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, आश्विन शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल चौथ और द्वादशी सोपपदा है। इसी प्रकार प्रदोष दिनको भी छोड़ दे। प्रदोषका रूप गोभिलने इस प्रकार लिखा है कि, षष्ठी और द्वादशी ये आधी रातसे एक घडी और तृती-या एक प्रहर न्यून हो तो प्रदोष करे । ज्योतिर्निबन्धमें व्यासने कहा है कि, चैत्र और वैशाख शुक्ल तीज और माघ शुक्ल सप्तमी और फाल्गुन कृष्ण तीज ये तिथि यज्ञोपवीतमें भारद्वाज मुनिराजने श्रेष्ठ कही हैं । यहां भी कृष्णप्रतिपदाके तुल्य चन्द्रमाके बलमें ही इनको शुभ जानना । जो बृहद्गार्ग्यने यह कहा है कि, जो कर्म किसी निमित्तसे किया जाय तो उसे अनध्यायमें भी कर लेना चाहिये। माघ शुक्ल सप्तमी, अक्षय तीज, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चंद्र-

व्रतबन्धने ॥" इति तत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम् ॥ "स्वाध्यायवियुजो घस्राः कृष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखलाबन्धने मताः ॥ " इति तेनैवोक्तेरिति निर्णयामृतकालादर्शौ । यद्यप्यथोपेतपूर्वस्येत्युक्त्वा अनिरुक्तं परिदानं कालश्चेत्याश्वलायनेन पुनरुपनयने कालानियम उक्तस्तथापि निमित्तान्तरमेव सः । तदानीमकरणे तु पूर्वोक्तकालो ज्ञेयः । प्रतिवेदमुपनयने कालानियम इति तु युक्तम् । गर्गः–"ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥" संकटे तु चण्डेश्वरः–दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च । केतौ तथोल्कांशुकणप्रपाते त्र्यहं न कुर्याद्व्रतमंगलानि ॥" तत्रैव–"वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा । न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेऽपि च ॥" हेमाद्रौ ज्योतिषे–"हस्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु । शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यौ द्विजानां व्रतबन्धमोक्षौ ॥" ज्योतिर्निबन्धे नारदः–"श्रेष्ठान्यर्कत्रयान्त्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च । विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥"

---

वार ये यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं। यह बृहद्गार्ग्यका कथन भी उस यज्ञोपवीतमें समझना चाहिये; जो प्रायश्चित्तके निमित्त किया जाय; कारण कि, बृहद्गार्ग्यने यह लिखा है कि, स्वाध्यायसे पृथक् ( अनध्यायके ) दिन और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि ये उस यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं जो प्रायश्चित्तके निमित्त हो, यह निर्णयामृत और कालादर्शमें कहा है। यद्यपि आश्वलायनने फिर उपनयनमें समयका नियम नहीं लिखा है कि, जिसका प्रथम यज्ञोपवीत हो गया हो उसको यज्ञोपवीतका देना, और समय नहीं लिखा तथापि निमित्तके उपरान्त ( पीछे ) ही वह समयका अनियम जानना चाहियें, उस समय न करे तो पूर्वोक्त समय ही जानना। युक्त तो यह है कि, प्रतिवेद यज्ञोपवीतमें समयका नियम नहीं है। गर्गने लिखा है कि, सूर्य-चन्द्रमाका ग्रहण, भूमिका कंप, केतुतारेका निकलना, बिजलीका गिरना आदि दोष हों तो यज्ञोपवीतमें ज्योतिषी दश दिनका निषेध कहते हैं और कोई तेरह दिन त्यागको कहते हैं। संकटमें तो चंडेश्वरने यह लिखा है कि, दिशाओंके दाह, भूमिका कम्प, वज्रका गिरना और राजयुद्ध, केतुका निकलना और बिजलीके खंडोंका गिरना इनमें तीन दिनतक यज्ञोपवीत और मंगलके कार्योंको न करे। यजुर्वेदियोंको सोपपदा और अनध्यायका दोष वेदव्रत और यज्ञोपवीत और वेदपाठमें नहीं है, यह वहां ही कहा है। हेमाद्रिमें ज्योतिषका कथन है कि, हस्तसे तीन, पुष्य, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, श्रवणमें और चन्द्रमाके बलसे युक्त श्रेष्ठ तिथिमें द्विजातियोंका यज्ञोपवीत और विसर्जन करने चाहिये। ज्योतिर्निबंधमें नारदने कहा है कि, हस्तसे तीन, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवणसे तीन,

बृहस्पतिः—"त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे । त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम् ॥" ज्योतिर्निबन्धे—"पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बह्वृचाम् । यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः ॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः । धनिष्ठादितिमैत्रार्केष्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम् ॥". राजमार्तण्डस्तु ब्राह्मणस्य पुनर्वसुं निषेधयति—"ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि । पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥" ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः । चन्द्रार्कौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः ॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा । शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥ २ ॥ " शाखाधिपाश्च रत्नसंग्रहे—"ऋगथर्वसामयजुषामाधिपा गुरुसौम्यभौमासिताः । जीवसितौ विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रः ॥" इति । पारिजाते बृहस्पतिः—"बह्वृचानां गुरोर्वारे यजुर्वेदजुषां बुधे । सामगानां धरासूनोरथर्वविदुषां रवौ ॥" अत्र लग्नशुद्ध्यादि दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् । विस्तरभयान्नोच्यते । लल्लः—"व्रतेऽह्नि पूर्वसंध्यायां वारिदो यदि गर्जति । तद्दिने स्यादनध्यायो व्रतं तत्र विवर्जयेत् ॥"

---

आश्विनी, अनुराधा, रोहिणी ये नक्षत्र यज्ञोपवीतमें उत्तम हैं। बृहस्पतिने कहा है कि, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, धनिष्ठा, चित्रा, मृगशिर, पुनर्वसु यज्ञोपवीतमें श्रेष्ठ हैं । ज्योतिर्निबंधमें कहा है कि, तीनों पूर्वा, और हस्तसे तीन, आश्लेषा, श्रवण, मूलमें बह्वृचों ( ऋग्वेदियों ) का और रेवती, अनुराधा, हस्त और पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक और ध्रुवसंज्ञकमें यजुर्वेदियोंका, श्रवण, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा, पुष्य, तीनों उत्तरा, अश्विनीमें सामवेदियोंका और धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मृगशिर, रेवतीमें अथर्ववेदियोंका यज्ञोपवीत करना उत्तम है । राजमार्तण्ड तो ब्राह्मणको पुनर्वसुका निषेध लिखते हैं कि, तारा और चन्द्रमा अनुकूल हो और ग्रह और वर्ष शुभ भी हो तो भी पुनर्वसुमें यज्ञोपवीत किया हुआ ब्राह्मण फिर संस्कारके योग्य है । ज्योतिर्निबंधमें नारदने कहा है कि, बृहस्पति, शुक्र, बुधवार सबके यज्ञोपवीतमें उत्तम कहे हैं और चन्द्रमा और सूर्य मध्यम जानने और वैश्य और क्षत्रियको मंगल उत्तम है । शाखाके स्वामीका वार और शाखाके स्वामीका बल और शाखाके स्वामीकी लग्न, ये तीन यज्ञोपवीतमें दुर्लभ हैं । शाखाके स्वामी रत्नसंग्रहमें यह लिखे हैं कि, ऋक्, साम, अथर्व, यजुर्वेदियोंके स्वामी क्रमसे बृहस्पति, बुध, मंगल, शुक्र होते हैं । बृहस्पति और शुक्र ब्राह्मणोंके स्वामी, क्षत्रियोंके मंगल और सूर्य, वैश्योंका स्वामी चन्द्रमा होता है । पारिजातमें बृहस्पतिने कहा है कि, ऋग्वेदियोंका वार बृहस्पति, यजुर्वेदियोंका बुध, सामवेदियोंका मंगल, और अथर्ववेदियोंका सूर्य वार होता है, यज्ञोपवीतमें लग्न आदि ज्योतिषियोंसे जानने चाहिये । यहां विस्तारभयसे नहीं लिखते । लल्लने लिखा है व्रतके दिन यदि

ज्योतिर्निबन्धे–"नान्दीश्राद्धे कृते चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः। तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत् ॥" एतद्बह्वृचातिरिक्तानाम्। तेषां तद्दिने वेदारम्भाभावात्। अतस्तेषामुपनयनं न भवत्येव। ऐतरेयोपनिषदि–"मृगादिज्येष्ठान्तं वर्षर्तुः। तं विना वर्षादौ त्रिरात्रमनध्यायः" इति वेदभाष्ये उक्तम्। एतच्च प्रातस्तनिते सायंस्तनिते तु दिवैव चरुं श्रपयित्वा सायंसंध्योत्तरं होमं कुर्यात्। "न संध्यागर्जिते काले न वृष्ट्युत्पातदूषिते। ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वं चेन्न निवर्तते॥ ब्रह्मौदनं पचेदग्नौ पक्वमन्नं न दुष्यति।" इति संग्रहोक्तेः। इति प्रयोगरत्ने भट्टचरणाः। सायं गर्जने शान्तिनिर्णयः। अत्र शान्तिरप्युक्ता नृसिंहप्रसादे–"ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि। तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य तत्॥ तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः। प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियजौ भवेत्॥ सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान्पठेत्प्रज्ञाविवृद्धये। गायत्री चैष मन्त्रः स्यात्प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा॥ धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम्। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत्॥" उपनयने चाधिकारिणो माधवीये वृद्धमनुनोक्ताः–"पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजाग्रजाः। उपानयेऽधिकारी स्यात्पूर्वाभावे परः परः॥"

---

पूर्वसंध्यामें मेघ गर्जे तो अनध्याय हो जाता है, इससे उसमें व्रतको त्याग देना चाहिये। ज्योतिर्निबंधमें यह कहा है कि, यदि नान्दीमुख श्राद्ध किये उपरान्त अकालिक अनध्याय हो जाय तो उपनयन कर लेना और वेदारंभको न करे, बह्वृचोंका (असमय) अनध्यायमें वेदारंभ नहीं होता इससे यह ज्योतिर्निबंधका कहना उनसे भिन्नोंके निमित्त है इससे उनका असमय अनध्यायमें यज्ञोपवीत नहीं होता, ऐतरेय उपनिषद्में मृगशिरसे ज्येष्ठातक वर्षा ऋतु है उसके विना वर्षाऋतुमें तीन रात्रका अनध्याय है यह वेदभाष्यमें कहा है। प्रयोगरत्नमें भट्टचरणोंने यह लिखा है कि, यह वाक्य प्रातःकालके गर्जनेके विषयमें है, यदि संध्यामें गर्जे तो दिनमें पकाये हुए चरुका संध्याके उत्तर सायंकाल हवन कर ले, कारण कि संग्रहमें लिखा है कि, संध्याके समय गर्जनेमें और बिजली आदिके उत्पातमें ब्रह्मौदन (चरु) को अग्निमें पकाना न चाहिये, वे और पका हुआ अन्न इनमें दूषित नहीं होता। इस स्थलमें नृसिंहप्रसादमें शान्ति भी लिखी है कि, यदि प्रदोषके समय ब्रह्मौदनविधि (यज्ञोपवीतके भात) से पूर्व मेघ गर्जे तो वह विद्यार्थीको अध्ययनका विघ्नकारी समझना चाहिये उसकी शान्ति मैं शास्त्रके अनुसार लिखता हूं कि, शान्तिहवनमें घीसहित (खीर) प्रधान है इससे इनका होम करे, और बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धिकी वृद्धिके निमित्त बृहस्पतिसूक्त तथा गायत्री पढ़े और प्रायश्चित्त होमको घृतसे करे, दूध देती हुई बछडासहित गौ आचार्यको दे, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे फिर ब्रह्मौदन विधिको करे। उपनयन करानेमें अधिकारी माधवीय ग्रन्थमें मनुने ये लिखे हैं कि, पिता, दादा, भाई, जातिके मनुष्य, और सगोत्री, तथा ब्राह्मण यज्ञोपवीत करानेके अधिकारी हैं और इनमें पूर्वालाभ हो तो

प्रयोगरत्ने- "पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता । तदभावे पितुर्भ्राता तद्भावे तु सोदरः ॥" पितेति विप्रपरं, न क्षत्रियादेः । तेषां पुरोहित एव । उपनयनस्य दृष्टार्थत्वात् । तेषां चाध्यापनेऽनधिकारात् । अत्र पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्राभ्रभावेऽधिकारः । 'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । तेनेदमविभक्तपरम् । पूर्वं तु विभक्तपरम् । मातृ रजोदोषे तु प्रागुक्तम् । अथ षण्ढमूकादीनां विशेषः । प्रयोगपारिजाते-ब्राह्मे-" ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स" इति श्रुतिः । तस्माच्च षण्ढबधिरकुब्जवामनपंगुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु ॥ मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ॥ ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् । मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित्प्रचक्षते ॥ कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः । तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥ संस्कारमन्त्रहोमादीन्करोत्याचार्य एव तु । उपनेयांश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः । आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत् । कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्ड-

---

परपरका ग्रहण है, अर्थात् पिता न हो तो पितामह इत्यादि। प्रयोगरत्नमें भी लिखा है कि, पिता ही पुत्रका उपनयन करे, वह न हो तो पितामह और उसके अभावमें चाचा, यदि पितृव्य न हो तो सगा भाई यज्ञोपवीत करावे। पिता भी ब्राह्मणोंके निमित्त है क्षत्रियादिको नहीं; कारण कि, उपनयनका दृष्टार्थ इस लोभके निमित्त होनेसे पुरोहित ही अधिकारी है और क्षत्रिय आदिकोंका वेदके पढ़ानेमें अधिकार नहीं है और यहां पितृव्यका भी ज्येष्ठभाईके न होनेमें ही अधिकार है;कारण कि,याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, जिन भाईयोंका संस्कार नहीं हुआ उनका प्रथम संस्कृत भाई संस्कार करे, इससे यह अविभक्त ( अभिन्न ) पर है विभक्तपर नहीं, माताको रजोदर्शन हो तो यज्ञोपवीतका करना प्रथम कह आये हैं । अब नपुंसक और मूक ( गूंगे ) आदिमें विशेष कथन करते हैं–प्रयोगपारिजातमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, ब्राह्मणीमें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होता है वह ब्राह्मण होता है, यह श्रुति है, उससे उत्पन्न हुए नपुंसक,बहरे,कुबड़े, वामने, लंगडे हैं, जड़,तोतले,रोगी,शुष्क और विकल अंगवाले हैं वा मत्त उन्मत्त गूंगे हैं वा निद्रालु और इन्द्रियसे रहित हैं वा पुंस्त्वहीन हो गये हैं उनका भी यथोचित संस्कार करना। कोई यह कहते हैं कि, इन दो मत्त उन्मत्तका संस्कार न करे, ये दोनों पतित तो नहीं हैं, पर इनका कर्ममें अधिकार नहीं,किन्तु उनकी सन्तान संस्कार करने योग्य हैं। कोई तो इससे अन्यथा कहते हैं कि, उनके संस्कार होम आदि आचार्यको करने चाहिये, यज्ञोपवीत करने योग्य नपुंसक आदिको आचार्य विधिसे अपने निकट लाकर और अग्निके पास बैठाकर और स्पर्श करके गायत्रीका जप करे, निदान कन्यादान करनेसे भिन्न सब कर्मको आचार्य करे। इसी प्रकार ब्राह्म-

गोलकौ ॥ ७ ॥ " इति ॥ स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् । कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्वं श्राद्धे निषेधश्च क्षेत्रजपुत्रविषयः। अन्यस्य-' विप्रास्त्वेष विधिः स्मृतः ' इति वचनात् । अब्राह्मण्येनोपनयनाद्यप्राप्तेरित्यपरार्कः । उपनयनं च कुमारं भोजयित्वा कार्यम् । 'प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति' इति मदनपारिजाते गोभिलोक्तेः ॥ गायत्र्युपदेशश्चोत्तरतोऽग्नेः कार्यः । 'उत्तरेणाग्निमुपविशतः । प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुख इतरोऽधीहि भोः' इति शांखायनसूत्रोक्तेः ॥ यद्यपि कात्यायनेन 'अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखाय' इत्युक्त्वा 'दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके ' इति विकल्प उक्तः ॥ तथापि कातीयानामेव सः बह्वृचानां तूत्तर एव वेदैक्यात् ॥ भिक्षायां विशेषनिर्णयः । भिक्षायां विशेषमाह कात्यायनः-'मातरमेवाग्रे भिक्षेत ।' पराशरमाधवीये-"मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ॥" संस्कारलोपे निर्णयः । अथ संस्कारलोपे शौनकः-"आरभ्याधानमाचौलात्कालेऽतीते तु कर्मणाम् । व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम् ॥ एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत् । चूडायामर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम् ॥ अनापदि

---

णोंसे उत्पन्न हुए कुण्ड गोलक भी संस्कार करने योग्य हैं, (पतिके जीते हुए जारसे उत्पन्न हुएको कुण्ड और मरे पीछे जारसे उत्पन्न हुएको गोलक कहते हैं) । स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है, कुण्डगोलकका संस्कार और श्राद्धमें निषेध क्षेत्रज पुत्रके विषयमें है औरको ब्राह्मण न होनेसे यज्ञोपवीतकी प्राप्ति ही नहीं है,यह अपरार्कका कथन है । यज्ञोपवीत बालकको भोजन कराकर कराना; कारण कि, मदनपारिजातमें गोभिलने यह लिखा है कि, यज्ञोपवीतमें बालकको पहले ही भोजन करावे । गायत्रीका उपदेश अग्निसे उत्तर दिशामें करे; कारण कि, शांखायन सूत्रमें यह लिखा है कि, अग्निसे उत्तरमें बैठे हुए पश्चिममुख बालकको पूर्वमें बैठा हुआ आचार्य यह कहे,भो बटो!अध्ययन करो।यद्यपि कात्यायनने यह विकल्प लिखा है कि, इसके उपरान्त बटुको गायत्रीका उपदेश अग्निसे उत्तर पश्चिममुख बैठे हुएको करे, यह कहकर कोई लिखते हैं कि, दक्षिणकी ओर बैठे हुएको उपदेश करे, तथापि यह कात्यायनोंके निमित्त है, बह्वृचोंको तो उत्तरमें ही उपदेश करे; कारण कि,उनका एक ही वेद है । कात्यायनने भिक्षामें विशेष लिखा है कि, पहिले मातासे ही भिक्षा मांगे । पराशरमाधवीयमें लिखा है कि,माता, बहिन, मौसी इनसे प्रथम भिक्षा मांगे । अथवा जो इसका अपमान न करे उससे मांगे । अब संस्कारके लोप ( न होना ) में शौनकका कथन है कि, गर्भाधानसे लेकर मुण्डनपर्यन्त संस्कारकाल बीत जाय तो व्याहृतियोंसे घीका संस्कार और हवन करके क्रमसे कर्म करे। यदि इनमें एक२ कर्मका लोप हो तो चौथाई कृच्छ्र करे,मुण्डनके लोपमें आधा कृच्छ्र करे, यह आपत्तिमें लिखा है, आपत्ति न हो तो सब कर्मोंके लोपमें दूना२प्रायश्चित्त करे।

तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत् ॥ " पारिजाते कात्यायनः-"लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत् ॥ " स्मृत्यर्थसारे चैवम्। कारिकायां तु-'प्रायश्चित्ते कृतेऽतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम्' इत्युक्तम्। "प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै । कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः ॥ " इति। त्रिकाण्डमण्डने तु-"कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषु च । कालातीतानि कृत्वैव विदध्यादुत्तराणि तु ॥" तत्र सर्वेषां तन्त्रेण नान्दीश्राद्धं कुर्यात् । देशकालकर्त्रैक्यात् । "गणशः क्रियमाणानां मातॄणां पूजनं सकृत्। सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् । एतद्बहूनामपत्यानां युगपत्संस्कारकरणविषयमिति बोपदेवः । अतीतसंस्काराणां युगपत्करण इत्यन्ये । तत्रापि चौलस्योपनीत्या सहेति पक्षे उपनीतिदिन एवानुष्ठानं न पूर्वदिने । सहत्वस्य दिवसैक्ये सन्निकृष्टतरत्वात् वृद्धाचारोऽप्येवम्। उपनीतिदिने मध्याह्नसंध्यामाह पारिजाते जैमिनिः-"यावद्ब्रह्मोपदेशस्तु तावत्संध्यादिकं च न। ततो मध्याह्नसंध्यादि सर्वं कर्म समाचरेत् ॥ " इति । ब्रह्म-गायत्री । यत्तु वचनम्-"उपायने तु कर्तव्यं सायंसन्ध्ये उपासनम् । आरभेद्ब्र-

---

पारिजातमें कात्यायनने सब स्थानमें कर्मके लोपमें प्रायश्चित्त लिखा है, प्रायश्चित्त करने उपरान्त लोप हुए कर्मको करे स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है । कारिकामें तो यह लिखा है कि, प्रायश्चित्तके उपरान्त वह कर्म किया भी न करनेके बराबर है जिसका समय बीत गया हो कारण कि, यह कहा है कि, प्रायश्चित्त होनेपर बीता हुआ कर्म करना, यह कोई आचार्य लिखते हैं और अन्य विद्वान् यह कहते हैं कि, न करना । त्रिकाण्डमण्डनमें तो यह लिखा है कि, वे कर्म करने हों जिनका समय बीत गया हो और अन्य कर्म भी प्राप्त हों तो उन कर्मोंको प्रथम करके जिनका समय बीत गया हो, फिर नये कर्मोंको करे । वहां सब कर्मोंका तन्त्र ( एक ) से ही नान्दीमुखश्राद्ध करे, कारण कि, देश काल करनेवाले यह सब एक हैं । छंदोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, गणसे ( एकवार ) किये हुए कर्मोंमें माताओंका पूजन और श्राद्ध एकबार ही पहिले करले, और भिन्न २ न करे, बोपदेव तो यह लिखते हैं कि, यह उस विषयमें है कि, जब एकवार बहुतसे अपत्यों ( सन्तान ) का संस्कार हो, और तो यह कहते हैं कि, जिनका समय बीत गया हो उनके संस्कारोंके विषयमें है, उनमें भी मुण्डन जब यज्ञोपवीतके संग है, उस पक्षमें उपनयनके दिन ही नान्दीमुख श्राद्ध करना; पूर्वदिनमें न करना कारण कि, संग करनेमें एक दिनमें ही श्राद्ध अत्यन्त निकट है वृद्धोंका आचरण भी इसी प्रकार है । यज्ञोपवीतके दिन पारिजातमें जैमिनि मध्याह्नसंध्याको कहते हैं कि, जबतक गायत्रीका उपदेश न हो तबतक सन्ध्यादि न करे पीछे मध्याह्न संध्या आदि सब कर्मोंको करे, जो यह लिखा है कि, यज्ञोपवीतमें सायंसंध्याकी उपासना

ह्मयज्ञं तु मध्याह्ने तु परेऽहानि ॥" इति । तच्छाखान्तरविषयमिति पारिजातः । विकल्प इति युक्तं पश्यामः । उपनयनाग्निस्त्रिरात्रं धार्यः-'त्र्यहमेतमग्निं धारयन्ति' इत्यापस्तम्बोक्तेः। बौधायनसूत्रे तु सदा धारणमप्युक्तम्-'उपनयनादिरग्निष्टोमोपासनमित्याचक्षते । पाणिग्रहणादित्येके। नित्यो धार्योऽनुगतो निर्मन्थ्यः' इति । इदं जातारणिपक्षे। अन्यथा मन्थनासम्भवात्। ब्रह्मयज्ञे विशेषः। ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह तत्रैव जैमिनिः-"अनूपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः । वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समासतः ॥" इति। येषां तद्दिन एव वेदारम्भस्तेषां नेदमिति दिक्॥ अथ ब्रह्मचारिधर्माः । याज्ञवल्क्यः-" मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ॥ " मनुः-' अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ' वर्जयेदिति प्रकृतम् । पारिजाते कौर्मे-"नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेद्दन्तधावनम् । गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः ॥ " एतन्निषिद्धमध्वादिविषयम् । अन्यस्य गुरूच्छिष्टस्य सर्वदा प्राप्तेः। ' स चेद्व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । ज्येष्ठभ्रातुरित्यपि ज्ञेयम् । 'पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं

---

करे, और ब्रह्मयज्ञ ( वेदपाठ ) का आरम्भ तो प्रथम दिन मध्याह्नमें करे, यह और शाखाके विषयमें है यह विकल्प है, यही हम श्रेष्ठ समझते हैं, उपनयनकी अग्निको तीन राततक रक्खे, कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखा है कि, इस अग्निको तीन दिनतक धारण करते हैं। बौधायनसूत्रमें तो निरन्तर धारण करना भी लिखा है, किन्होंका यह कथन है कि, उपनयनकी अग्निको उपासनाग्नि कथन करते हैं, उसको विवाहतक धारण करे, कारण कि, यह लिखा है कि, मथी हुई अग्निको नित्य धारण करे और संग रक्खे यह भी उस अग्निमें है जो अरणीसे उत्पन्न हुई हो और अग्निके मथनेका असंभव है। ब्रह्मयज्ञमें जैमिनिने वहां ही विशेष लिखा है कि, यज्ञोपवीतसे प्रथमके समान ब्रह्मचारी ब्रह्मयज्ञ करे, और वेदके स्थानमें आचार्यके निकट गायत्री ग्रहण करे, और जिनका वेदारम्भ उसी दिन होता है उनको यह वाक्य नहीं ( इति दिक् ) । अब ब्रह्मचारीके धर्म लिखते हैं, याज्ञवल्क्यने लिखा कि, शहत, मांस, अंजन, उच्छिष्ट, शुक्त, पदार्थ स्त्री और प्राणियोंकी हिंसा, सूर्यदर्शन, कठोर वाक्य, निन्दाको ब्रह्मचारी सदा त्याग दे । मनुने लिखा है कि, उबटन, नेत्रोंका अंजन, जूता और छत्रधारणको त्याग दे । पारिजातमें कूर्मपुराणका वाक्य है कि, सीसा न देखें, दतोन न करे, गुरुके उच्छिष्टको ही औषधिके निमित्त खाय और जानकर न खाय, यह भी निषिद्ध शहत आदिके विषयमें है, उससे और गुरुका उच्छिष्ट सदा भक्षण करने योग्य है, कारण कि, वसिष्ठने यह लिखा है कि, जो ब्रह्मचारीको रोग हो तो गुरुकी सम्पूर्ण उच्छिष्टको औषधिके लिये भक्षण करले । बडे भ्राताके भी उच्छिष्टको यह जानना, कारण कि, आपने

भोज्यम्' इत्यापस्तम्बोक्तेः। गुरुपुत्रे तु स्मृत्यन्तरे उक्तम्-'गुरुवद्गुरुपुत्रः स्यादन्यत्रोच्छिष्टभोजनात्।' प्रचेताः-"ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्। यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत्॥" यमः-"मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः। कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत्। अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधःशय्यां गुरोर्हितम्॥" कुर्यादिति शेषः। मेखलामाहाश्वलायनः-'तेषां मेखला मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्यावी वैश्यस्य' इति। आचार्यः-"त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता। तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः॥" मनुः-"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला। त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा। मौञ्ज्यभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः॥" अत्र प्रवरसंख्यानियम इति वृद्धाः। अथ दण्डाः। मनुः-"ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वटखादिरौ। पैप्पलोदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः॥" एषामभावे गौतमः-'यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासाप्रमाणः' इति। अजिननिर्णयः। अजिनमाहाश्वलायनः-'अहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वाजिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्' इति। यद्यप्यैणेयशब्देन मृगी-

---

स्तम्बने यह लिखा है कि, पिता और बड़े भाईका उच्छिष्ट भोजन करनेयोग्य है। गुरुपुत्रके विषयमें तो स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, उच्छिष्ट भोजनको त्यागकर गुरुका पुत्र भी गुरुके समान है। प्रचेताने कहा है कि, पान, उबटना, कांसीके पात्रमें भोजन करना इनको संन्यासी ब्रह्मचारी और विधवा त्याग दे। यमने कहा है कि, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कौपीन और कटिसूत्रको ब्रह्मचारी निरन्तर धारण करे और अग्निके निमित्त ईंधन और भिक्षा लावे, गुरुसे नीचे सोना चाहिये, गुरुका हित करे। आश्वलायनने मेखला लिखी है कि, ब्राह्मणकी मेखला मूंजकी, क्षत्रीकी धनुषके प्रत्यंचाकी और वैश्यकी भेड़के ऊनकी होती है। आचार्यने यह कहा है कि, तीन सूतकी मेखला निर्माण करे, फिर उसको तीन वार करे, उसमें तीन पांच वा सात गांठ लगावे। मुनिने लिखा है कि, मूंजकी मेखला तीन तारकी, एकसी, चिकनी ब्राह्मणकी बनावे और तिगुनी उसमें तीन एक वा पांच गांठ लगावे और मूञ्जी न मिले तो कुश अश्मंतक और बल्वजकी बनावे। इसमें प्रवर संख्याका नियम है, ऐसा वृद्ध कहते हैं। अब दण्डोंको लिखते हैं कि, ब्राह्मण बेल और ढाकका, क्षत्रिय वट और खैरका, वैश्य पीपल और गूलरका दण्ड धर्मपूर्वक धारण करे। यह न मिले तो गौतमने यह कहा है कि, अथवा सबका दण्ड यज्ञके वृक्षके निर्माण करे। और शिर, मस्तक, नासिकाके अग्रभागतक प्रमाणवाले दण्ड ब्राह्मण क्षत्री वैश्यके क्रमसे निर्माण करे। आश्वलायनने चर्मको यह लिखा है, नवीन वस्त्रसे ढके ब्राह्मणका चर्म ऐणेय ( मृगका ) होता है, क्षत्रियका रुरु मृगका और वैश्यका बकरेके चर्मका होता है। यद्यपि ऐणेयपदसे मृगीका चर्म लिखा है

चर्मैवोच्यते 'एण्या ढञ्' इति पाणिनिस्मृतेः। 'ऐणेयमेण्याश्चर्माद्यमेणस्यैणमुभे त्रिषु।' इति अमरकोशाच्च। तथापि-'कृष्णरुरुबस्ताज्याजिनानि' इति शंखोक्तेः। 'सर्वेषां वा रौरवम्' इति यमोक्तेश्च मृगचर्मणा सह विकल्पो ज्ञेयः। वस्त्राजिनयोस्तु विकल्पः। 'कार्पासं वा विकृतम्' इति गौतमोक्तेः। अथ यज्ञोपवीतम्। मनुः-'कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।' पारिजाते देवलः-"कार्पासक्षौमगोवालशणवल्वतृणादिकम्। यथासंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥ शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहतांगुलिमूलके। आवर्त्य षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥ अब्लिंगकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्। अप्रदक्षिणमावृत्य सावित्र्या त्रिगुणीकृतम्॥ ततः प्रदक्षिणावर्त्तं समं स्यान्नवसूत्रकम्। त्रिरावेष्ट्य दृढं बद्ध्वा ब्रह्मविष्ण्वीश्वरान्नमेत्॥ ४॥" तन्नवतन्तु कार्यम्। 'सावित्र्या त्रिगुणं कुर्यान्नवसूत्रं तु तद्भवेत्।' इति तेनैवोक्तेः। छन्दोगपरिशिष्टे-"त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम्। त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते॥" ऊर्ध्ववृतं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वा वलितम्। भृगुः-'वामावर्तवलितं त्रिगुणं कृत्वा दक्षिणा-

---

क्योंकि, ( एण्या ढञ् ) इस पाणिनिके सूत्रसे एणीके चर्मको ऐणेय और एणके चर्मको ऐण और यह दोनों चर्म तीनों लिंगमें पुरुष स्त्री नपुंसक हैं, इस अमरकोशसे मृगीका चर्म प्राप्त है मृगका नहीं तथापि काला और रुरुमृग और मेंढा इनके चर्म तीनों वर्णोंके क्रमसे होते हैं, इस शंखके वाक्यसे वा सबके चर्म रुरुके होते हैं, इस यमके वाक्यसे मृगचर्मके संग मृगीचर्मका विकल्प समझना, अर्थात् दोनोंमेंसे किसीको धारण करे; कारण कि, गौतमने यह लिखा है कि, वस्त्र और चर्ममें विकल्प है वा इस प्रकार वस्त्र हो जो फटा न हो। अब यज्ञोपवीतको कहते हैं-मनुने लिखा है कि, ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासका और ऊपरको तिगुना मेला ( बटा ) हुआ होता है। मदनपारिजातमें देवलने कहा है कि, तीनों द्विजाति कपास, पाट, गौके बाल, सन, बल्वतृण आदिका यज्ञोपवीत यथासम्भव धारण करे। शुद्ध देशमें शुद्ध सूत्रको संमिलित अंगुलियोंके मूलमें छानवे बार गिनके फिर उसे बलसे तिगुना करके जलके नामवाले मन्त्रोंसे धोकर ऊपरको मेलें और तिगुने किये उसको प्रदक्षिणा क्रमसे बटकर तिगुना करे, फिर प्रदक्षिणा बटनेसे नव ९ सूत्र होते हैं, उसे तीन बार लपेटकर और दृढतासे बांधकर ब्रह्मा विष्णु शिवको प्रणाम करे, यज्ञोपवीतके तन्तु करने और गायत्रीसे तिगुना करके नवसूत्र हो जाते हैं, यह उन्होंने ही लिखा है। छन्दोगपरिशिष्टमें कहा है कि, तीन तन्तु ऊर्ध्व बटकर नीचे बटे, फिर तिगुना करके यज्ञोपवीत होता है, उसकी एक ग्रन्थि देनी इष्ट है, ऊर्ध्ववृत उसको कहते हैं; जो दक्षिण हाथको ऊँचा करके धारण किया जाय। भृगुने लिखा है कि, बाई ओरके मेलसे बटे हुएको तीन लड़ी करके फिर प्रदक्षिणावर्त लेकर

वर्तवलितं त्रिगुणं कार्यम् ।' स एकस्तन्तुरेवं त्रितन्तुकमित्यर्थः । कात्यायनः-"पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥" वसिष्ठः-"नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥" पारिजाते देवलः-"उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥" स एव-'बहूनि वायुष्कामस्य ।' तत्र मन्त्रमाह स एव-'यज्ञोपवीतमिति वा व्याहृत्या वापि धारयेत् ।' हेमाद्रौ-"यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥" देवलः-"सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् । विच्छिन्नं चाप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥ " मनुः-"मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रतः ॥" भैक्ष्यचरणादिलोपे प्रायश्चित्तम् । अथैतल्लोपे प्रायश्चित्तम् । मनुः-" अकृत्वा भैक्ष्यचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥" अमत्या आपदि त्यागे तु याज्ञवल्क्यः-"भैक्ष्याग्निकार्ये त्यक्त्वा

---

तिगुना करे वह एक सूत होता है, फिर इस प्रकार तीन तन्तु उसमें होते हैं । कात्यायनने कहा है कि, पीठपर और नाभिपर धारण करनेसे कमरतक पहुँच जाय वह यज्ञोपवीत धारण करने योग्य होता है, न अतिलम्बा न अति ऊँचा पहरना । वसिष्ठने कहा है कि, नाभिसे ऊपर यज्ञोपवीत हो तो आयुकी हानि और नाभिसे नीचे हो तो तपका क्षय होता है, इससे बुद्धिमान् मनुष्य नाभिके तुल्य यज्ञोपवीत निर्माण करे । पारिजातमें देवलने कहा है कि, ब्रह्मचारीका यज्ञोपवीत एक, वानप्रस्थ और गृहस्थीके दो, संन्यासियोंका एक होता है, यह शास्त्रका सिद्धान्त है । देवलने ही लिखा है कि, आयुकी इच्छावाला बहुतसे यज्ञोपवीत धारण करे, उसका मन्त्र देवलने लिखा है कि 'यज्ञोपवीतं परमं' इत्यादि मन्त्रसे वा व्याहृतियोंसे धारण करे । हेमाद्रिमें कहा है कि, वेद और स्मृतिमें कहे कर्मोंमें दो यज्ञोपवीत धारण करे और डुपट्टेके निमित्त तीसरा धारण करे, परन्तु वस्त्रके न होनेमें वह पहरे रहे, अन्यथा न पहरे । देवलने कहा है कि, गायत्रीको दशवार पढ़कर यज्ञोपवीत ऊपरको फेंके, यदि वह छिन्न हो जाय वा नाभिसे नीचे निकल जाय वा भोजन करके जो निर्माण किया हो उसको त्याग दे । मनुने कहा है कि, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, टूटे हुएको जलमें डालकर मन्त्रसे अन्योंको ग्रहण करे । अब इसके भिक्षाचरणआदिके लोप ( अभाव ) में प्रायश्चित्त लिखते हैं-मनुने कहा है कि, भिक्षाका आचरण न करके और अग्निहोत्र न करके रोगी न हो तो सात राततक अवकीर्णी ( वीर्यपाती ) के व्रतको करे, विना जाने आपत्तिमें त्याग दे तो याज्ञवल्क्यने यह लिखा है

तु सप्तरात्रमनातुरः । कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् ॥ उपस्थानं ततः कुर्यात्समासिश्चन्त्यनेन तु ॥" मन्त्रास्तु मिताक्षरायां ज्ञेयाः । सकृल्लोपे तु ऋग्विधाने–"मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये । अग्निकार्यं विना भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥" स्मृत्यर्थसारे तु–'संध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रं जपः । भिक्षालोपेऽष्टशतम् । अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्चेत्युक्तम् ।' अपरार्के संवर्तः–"यः संध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥" अग्निकार्यं संध्याद्वये कार्यम् । 'अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ।' इति याज्ञवल्क्योक्तेः सायमेव वा । 'सायमेव वाग्निमिन्धीतेत्येके' इति लौगाक्षिणोक्तेः । ब्रह्मचारिणां मधुमांसभक्षणस्त्रीसंगादौ निर्णयः । पारिजाते वृद्धशातातपः–"ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं तथैव च । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥" ऋग्विधाने–"तंवो धिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये । ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेति तत् ॥" स्त्रीसङ्गे तु मनुः–"अवकीर्णी तु कामेन गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाकविधानेन यजेद्वै निर्ऋतिं

---

कि, भिक्षा और अग्निकार्यको छोड़कर रोगीसे भिन्न हो तो सात रात्र व्रत करना चाहिये और 'कामावकीर्ण' इन दो मन्त्रोंसे दो आहुति दे, फिर प्रार्थना करे और इस मंत्रसे सेचन करे। मन्त्र तो मिताक्षरामें लिखा है। एकवार लोपमें तो ऋग्विधानमें लिखा है कि, 'मानस्तोके' इस मन्त्रको सौवार शिवालयमें जप करे, अग्निहोत्रके विना ब्रह्मचारीके भोजन कर लेनेमें पाप नहीं है। स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि, संध्या और अग्निकार्यके लोपमें स्नान करके आठ सहस्र जप करे भिक्षाके लोपमें आठ सौ और बारम्बार करनेमें दूना जप करे और फिर संस्कार करे। अपरार्कमें संवर्तने कहा है कि, जो यथाविधि सन्ध्या और अग्निकार्य नहीं करता उसको स्नान करके सावधानीसे आठ सहस्र गायत्री जपनी चाहिये, अग्निकार्य दोनों संध्याओंमें करना। कारण कि, याज्ञवल्क्यने यह लिखा है कि, फिर दोनों संध्याओंमें अग्निकार्य करे वा सायंकालको ही प्रज्वलित करे, यह कोई कहते हैं। कारण कि, लौगाक्षिने यह कहा है कि, सायंकालको अग्नि प्रज्वलित करे। पारिजातमें वृद्धशातातपने कहा है कि, जो ब्रह्मचारी मधु, मांस भक्षण करता है वह प्राजापत्य कृच्छ्रको करके शेषव्रतको पूर्ण करे। ऋग्विधानमें कहा है कि, जो ब्रह्मचारी अपने धर्मसे च्युत हो जाय तो शिवमंदिरमें जाकर 'तंवोधियो' मन्त्रको एक लाख जपे। स्त्रीके प्रसंगमें मनुने यह लिखा है कि, जानकर स्त्रीसंग करनेवाले चौराहेपर गधेपर चढ़े और स्थालीपाककी

---

१ "मानस्तोके तनये मान आयौ मानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः । वीरान्मानो रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वाहवामहे ॥ ऋ० १ । ८ । ६ ॥" २ "तंवोधियानव्यस्याशविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितं सयध्यै सनोवक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ऋ० ४ । ६ । १४ ॥"

निशि ॥" विस्तरस्तु मिताक्षरादौ ज्ञेयः । उपवीतनाशे तु हारीतः-"मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनः प्रतीयात् ॥" तत्रैव मरीचिः-"ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥" मनुः-"भोशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥" शर्मन्निति नकारात् पूर्व इत्यर्थः । अभिवादने प्रत्यभिवादनादौ विशेषः स्मृत्यर्थसारे पारिजातादौ ज्ञेयः । यमः-"ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवादयेत् । विना शिष्यं च पुत्रं च दौहित्रं दुहितुः पतिः ॥" अथ पुनरुपनयनम् । पारिजाते शातातपः-"लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनम् । उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासभीक्षीरभोजनात् ॥ उपानयं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः ॥" इति । हेमाद्रौ वृद्धमनुः-" जीवन्यदि समागच्छेद्घृतकुम्भे निमज्ज्य च । उद्धृत्य स्नापयित्वास्य जातकर्मादि कारयेत् ॥" तत्रैव पाद्मे-'प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति ।' चन्द्रिकायां बौधायनः-"सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः । अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥" हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे वृद्ध-

---

विधिसे रात्रिको निर्ऋति देवताकी पूजा करे तो शुद्ध हो, इसका विस्तार तो मिताक्षरा आदिमें लिखा है । यज्ञोपवीत नष्ट होनेमें हारीतने कहा है कि, 'मनोव्रतपतीभिः' इन मंत्रोंसे चार घृतकी आहुति, फिर यज्ञोपवीत धारण करे । वहां ही मरीचिने लिखा है कि, जो यज्ञोपवीतके विना भोजन वा मलमूत्र करता है वह आठ सहस्र गायत्रीका जप और प्राणायाम करनेसे पवित्र होता है । मनुने कहा है कि, दूसरेको प्रणाम करनेमें अपने नामके अन्तमें भो शब्दका उच्चारण करे और ब्राह्मणको हे सौम्य ! 'आयुष्मान् भव' यह कहकर आशीर्वाद दे और इसके नामके अन्तमें अकार अक्षर और प्रथम अक्षरको प्लुत बोलना चाहिये, अर्थात् 'शर्मन्' इस नकारसे प्रथमका अकार प्लुत करे । अभिवादन ( नमस्कार ) और प्रत्यभिवादन आदिमें विशेष तो स्मृत्यर्थसार और पारिजात आदिमें लिखा है । यमने कहा है कि, बड़ा भी संध्याके समय छोटेको प्रणाम करे, परन्तु शिष्य, पुत्र, दौहित्र और जामाताको न करे । अब फिर यज्ञोपवीतका कथन करते हैं- पारिजातमें शातातपने कहा है कि, लहसुन, गाजर, सलगम और कुत्ती, ऊंटनी, मानुषी, हाथिनी, घोड़ी, गधी इन सबके दूधको पीकर फिर संस्कार अर्थात् यज्ञोपवीतके योग्य होता है और वारंवार तो तप्तकृच्छ्र करे । हेमाद्रिमें वृद्धमनुने लिखा है कि, यदि जीता हुआ मनुष्य फिर आ जाय तो घीके घड़ेमें प्लावित और स्नान करके इसके जातकर्म आदि संस्कार करे । वहां ही पद्मपुराणमें लिखा है कि, प्रेतशय्याका प्रतिग्रह ( ग्रहण ) करनेवाला फिर संस्कारके योग्य होता है । चन्द्रिकामें बौधायनने कहा है कि, सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र और प्रत्यन्तवासी, अंग, वंग, कलिंग देशोंमें जानेसे फिर संस्कारके योग्य होता है । हेमाद्रिके प्राय-

गौतमः-"खरमुष्ट्रश्च माहिषमनड्वाहमजं तथा । बस्तमारुह्य मुखजः क्रोशे चान्द्रं विनिर्दिशेत् ॥" मार्कण्डेयः-"खरमारुह्य विप्रस्तु योजनं यदि गच्छति । तप्तकृच्छ्रत्रयं प्रोक्तं शरीरस्य विशोधनम् ॥ पुनर्जन्म प्रकुर्वीत घृतगर्भविधानतः ॥" मदनरत्ने मिताक्षरायां च स्नानमात्रमुक्तम् । मनुः-"अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥" मिताक्षरायां पराशरः-'यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति ॥ सञ्चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च । जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २ ॥" बौधायनसूत्रम्-'अथोपनीतस्य व्रतानि भवन्ति नान्यस्योच्छिष्टं भुञ्जीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां न स्त्रिया सह भुञ्जीत मधुमांसश्राद्धसूतकान्नानि दशासंधिनीक्षीरं छत्राकनिर्यासौ विलापनं गणान्नं गणिकान्नमित्येतेषु पुनः संस्कारः ॥' प्रतिषिद्धदेशगमनमित्येके । अथाप्युदाहरन्ति-" सौराष्ट्रसिंधुसौवीरमवन्तीदक्षिणापथम् । एतानि ब्राह्मणो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥" पुनःसंस्कारनिर्णयः । अथ पुनःसंस्कारं व्याख्यास्यामो देवयजनप्रभृत्यग्निमुखात्कृत्वा पालाशीं समिधमाज्येनाऽङ्क्त्वाभ्याधाय वाचयति ॥ 'पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः० कामाः स्वाहेति ।' 'अथाव्रत्यप्रायश्चित्ते जुहोति यन्म

---

श्चित्तकाण्डमें वृद्ध गौतमका वाक्य है कि, जो ब्राह्मण गर्दभ, ऊंट, भैंसा, बैल, बकरा तथा मेंढेपर कोशभर चढ़कर चले तो चांद्रायण करे । मार्कण्डेयने कहा है कि, यदि ब्राह्मण गधेपर चढ़कर योजनभर चले तो तीन तप्तकृच्छ्रसे उसका शरीर शुद्ध होता है और घृतमें गर्भकी विधिसे उसका फिर जन्मसंस्कार करे।और मिताक्षरामें मदनरत्नमें तो स्नानमात्र ही लिखा है। मनु कहते हैं कि,तीनों द्विजाति वर्ण यदि अज्ञानसे विष्ठामूत्र और मदिरामिश्रित वस्तुको खा लें तो फिर संस्कारके योग्य होते हैं । मिताक्षरामें पराशरने कहा है कि, जो(विरक्त) वा संन्यासी वा अनशनव्रतका करनेवाला फिर गृहस्थमें आनेकी इच्छा करे तो वह तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण करे और जातकर्म आदि संस्कारोंको फिर करके शुद्ध होता है । बौधायनसूत्रमें कहा है कि, यज्ञोपवीत होनेपर उसके ये व्रत होते हैं कि, पिता और जेठे भाईको त्यागकर अन्यके उच्छिष्टको न भोजन करे और न स्त्रीके संग खाय, मधु, मांस, श्राद्ध और सूतकका अन्न और दश दिनकी ब्याई और गर्भिणीका दूध, छत्राक, गूंद, रुदन, गण ( समुदाय ) आर वेश्याका अन्न खानेसे फिर संस्कारके योग्य होता है । कोई यह भी कहते हैं कि, निषिद्ध देशमें जानेसे भी फिर संस्कार होता है; उसमें यह वाक्य कहते हैं कि, सौराष्ट्र, सिंधु, सौवीर, अवंती ( उज्जैन ), दक्षिणका मार्ग इसमें ब्राह्मण जाकर फिर संस्कारके योग्य होता है । अब फिर संस्कारका वर्णन करते हैं कि, देवपूजनसे लेकर अग्निके मुख करनेपर्यन्त कर्मको सम्पादन कर पलाशकी समिधाको घीसे भिगोकर और रखकर यह मंत्र पढे कि-"पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः कामाः स्वाहा" इनको पढ़कर प्रायश्चित्तके मंत्रोंसे

आत्मनोमिन्द्राभूत्० पुनरग्निश्चक्षुरदात् इति द्वाभ्याम् । अथ पक्वाज्जुहोति । सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त० । घृतेन स्वाहेति ' अथाज्याहुतीरुपजुहोति– 'येन देवाः पवित्रेण इति तिसृभिः अनुच्छन्दसं स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरदानात् ' अथापरमापरिधानात्कृत्वा पालाशीं समिधमाधायाथाव्रत्यप्रायश्चित्ते जुहोत्यथ व्याहृतीर्जुहोति । अथापरो ब्राह्मणवचनादेव सावित्र्या शतकृत्वो घृतमभिमंत्र्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवति । गुरोर्वाप्युच्छिष्टं भुञ्जीताथाप्युदाहरन्ति । 'वपनं दक्षिणादानं मेखला दण्डमजिनभैक्ष्यचर्याव्रतानि च निवर्तन्ते पुनः संस्कारकर्मणि ' इति । 'आश्वलायनगृह्येऽपि–अथोपेतपूर्वस्येत्यादिना पुनः संस्कार उक्तः तथा पित्रादिव्यतिरेकेन ब्रह्मचारिणः प्रेतकर्मकरणे पुनरुपनयनमित्यपरार्कादयः । त्रिस्थलीसेतौ–" कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलंघनात् । गण्डकीबाहुतरणात् पुनः संस्कारमर्हति ॥ " गौडास्तु–'करतोयाजलस्पर्शात्कर्मनाशाविलंघनात्' इति पठन्ति । तन्न । दानधर्मेषु करतोयास्नाने प्राशस्त्योक्तेः । "करतोये सदानीरे सरिच्छ्रेष्ठेति विश्रुते । आप्लावयसि पौराणां पापं हर करोद्भवे " इति स्मृतिदर्पणचन्द्रिकालिखितस्नानमन्त्राच्च । पराशरः–"अजिनं मेखला दंडो भैक्ष्यचर्या

---

हवन करे, जो मेरे आत्माकी निन्दा हुई उसको अग्नि दूर करो, इन दो मंत्रोंसे हवन करे और " अग्ने० " इस मंत्रसे सात घृतकी आहुति देनी चाहिये, फिर घृतकी आहुति " येन देवा पवित्रेण" इन तीन मन्त्रोंसे दे, फिर सब वेदोंकी स्विष्टकृत आदि धेनुके वरप्रदान तक करके फिर परिधानके दूसरे कर्मको करके ढाककी समिध रखकर और व्याहृतियोंको पढ़कर प्रायश्चित्तके निमित्त हवन करे, पक्ववस्तुओंसे हवन करे " सप्त ते अग्ने " इत्यादि घृतसे आहुति दे, "येन देवा इति" अनुच्छान्दस स्विष्टकृदादि कर्म धेनुदानतक सिद्ध होते हैं, इसके पीछे ब्राह्मणके वाक्यसे ही गायत्रीसे सौ वार घृतको अभिमंत्रित और भोजन कर प्रायश्चित्त किया करे वा गुरुका उच्छिष्ट भक्षण करे। इसमें भी यह वाक्य लिखते हैं कि, द्विजातियोंके फिर संस्कार कर्ममें मुंडन मेखलाका दान मृगचर्म भिक्षाटन व्रत नहीं होते। आश्वलायनगृह्यमें फिर संस्कार कहा है कि, जिसका प्रथम संस्कार हो चुका है उसका फिर करे, इसी प्रकार कहा है कि, पिता आदिसे भिन्नका यदि प्रेतकर्म ब्रह्मचारी करें तो पुनः यज्ञोपवीतके योग्य होता है, यह अपरार्क आदिने कहा है। त्रिस्थलीसेतुमें कहा है कि, कर्मनाशा नदीके जलस्पर्शसे और करतोया नदीके लंघनेसे और गंडकी नदीको भुजाओंसे तैरनेसे फिर संस्कारके योग्य होता है। गौडोंका तो यह कथन है कि, करतोयाके जलस्पर्शसे और कर्मनाशाके लंघनेसे फिर संस्कार करे सो ठीक नहीं। कारण कि, दानधर्मोंमें करतोयाका स्नान उत्तम कहा है और स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा यह मंत्र भी है कि, हे करोद्भवे ! नदियोंमें श्रेष्ठ और प्रसिद्ध करतोयाके जलमें जो स्नान करता है उसके पापको दूर करो। पाराशरका भी मंत्र है कि, फिर

व्रतानि च । निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ " हरदत्तस्तु-" य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति । तस्य पुनरुपनयनं तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम् " इत्याह । अन्ये नैतन्मन्यन्ते 'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः साविञ्यनूच्यते ' इत्यापस्तम्बोक्तेः । तद्विधिः कारिकायाम्-"वेदान्तरमधीत्यैव ऋग्वेदं ये त्वधीयते । उपनीतिरियं तेषामलंकरणवर्जिता ॥ यद्वै तदुपनीतस्य प्रायश्चित्तं यदा भवेत् । कृताकृतं च वपनं मेधाजननमेवच ॥ मेधाजननसद्भावे व्रतचर्या भवेदिह । अनुप्रवचनीयश्च तदभावे द्वयं नहि ॥ परिदानं न कार्यं स्यान्निमित्तानन्तरं त्विदम् । पूर्वस्या वाचयेत्स्थाने तत्सवितुर्वृणीमहे ॥ ४ ॥ " यत्तु हारीतः-'द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या इति । सद्योवधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः । ' इति । तद्युगान्तरविषयम्-"पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥" इति यमोक्तेः । अथानध्यायः । पारिजाते बृहस्पतिः-

---

संस्कारमें द्विजातियोंका मृगचम, मेखला, दंड, भिक्षा मांगना, व्रत नहीं होता । हरदत्तने तो यह लिखा है कि, जो एक वेदको पढ़कर और वेदको पढ़नेकी इच्छा करता है उसका फिर यज्ञोपवीत करे, इससे प्रतिवेद उपनयन होता है । और इसे नहीं मानते । कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखा है कि, सब वेदोंसे गायत्रीका उपदेश किया जाता है, उसकी विधि कारिकामें यह लिखी है कि, दूसरे वेदको पढ़कर जो ऋग्वेद पढ़नेकी इच्छा करते हैं अलंकारको त्यागकर उनकी यह उपनीति (यज्ञोपवीत) है, यद्वा प्रथम उपनीतका जब प्रायश्चित्त होता है, मुण्डन और मेधा (बुद्धि) का जनन करे वा न करे । मेधाजनन हो तो ब्रह्मचर्या भी सफल होती है और अनुप्रवचनीय ( बटुसे पढ़वाना ) भी होता है, मेधाजनन न हो तो ये दोनों कार्य नहीं होते और यहां निमित्तके उपरान्त परिदान न करे, प्रथम गायत्रीके स्थानमें ' तत्सवितुर्वृणीमहे ' को बँचवावे । जो हारीतने यह लिखा है कि, दो प्रकारकी वधू होती हैं, एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी सद्योवधू, उनमें ब्रह्मवादिनियोंका उपनयन अग्नींधन वेद पढ़ना और अपने घरमें भिक्षा मांगना करने और सद्योवधुओंका उपनयन करके विवाह करे, यह युगांतर अर्थात् दूसरे युगोंके विषयमें है । कारण कि, यमने कहा है कि, प्रथम कल्पोंमें स्त्रियोंको मौंजी बांधना वेदोंका पढ़ाना[1] और गायत्रीका उपदेश इष्ट था । अब अनध्याय कथन करते हैं-पारिजातमें

---

१ वेदोंका पढ़ाना इस वाक्यसे वेदाङ्ग और शास्त्रोंके पढ़ानेका दोष नहीं है; नहीं तो विवाहके समय मन्त्रपाठ वधूसे किस प्रकार होगा ? और यज्ञकर्ममें अपशब्द भाषणका निषेध है सो विना संस्कृतके बोध हुए पाठ भ्रष्ट होगा, इससे कर्म बिगड़ेगा, इस कारण मन्त्रको छोड़कर और पढ़नेमें दोष नहीं है ॥

"प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः । श्वोऽनध्यायेऽथ शर्वर्यां नाधीयीत कदाचन ॥" नारदः-"अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥" निर्णयामृते-"चातुर्मास्यद्वितीयासु मन्वादिषु युगादिषु । अनध्यायस्तु कर्तव्यो या च सोपपदा तिथिः ॥" गर्गः-"शुचावूर्जे तपस्ये च या द्वितीया विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥" स्मृत्यर्थसारेऽपि-'आषाढीकार्त्तिकीफाल्गुनीसमीपस्थद्वितीयासु च' इति ॥ मनुः-"उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु॥" इति । उत्सर्गे तु-'मनूक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यां त्र्यहस्य विकल्पः' इति विज्ञानेश्वरः । अष्टकाशब्देन सप्तम्यादित्रयं ज्ञेयम् । 'तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रमन्त्यामेके' इति गौतमोक्तेः । 'ऋत्वन्तास्विति सौरऋत्वन्तासु चान्द्रान्तस्य पर्वत्वेनैव निषेधसिद्धेः' इति सर्वज्ञनारायणः । एते नित्याः । नैमित्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः-"त्र्यहं प्रेतिष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखश्रोत्रिये तथा ॥ संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसंधिषु

---

बृहस्पतिने कहा है कि, प्रतिपदा, चतुर्दशी, अष्टमी, दोनों पर्व और अगले दिन अनध्याय हो तो प्रथम रात्रिमें कदाचित् न पढ़े । नारदने कहा है कि, दोनों अयन, विषुव (तुलामेष), विष्णुका शयन और जागरण, मन्वादि और युगादि तिथि इनमें अनध्याय करना चाहिये। निर्णयामृतमें लिखा है कि, चातुर्मास्यकी द्वितीया तिथि, मन्वादि और युगादि और सोपपदा तिथि इनमें अनध्याय करना । गर्ग कहते हैं कि, चातुर्मास्य, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुनकी द्वितीयामें पंडितजन अनध्याय कहते हैं । स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुनके समीप (कृष्ण)की द्वितीयाओंमें अनध्याय होता है । मनुने कहा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन रात्रि और अष्टकामें दिनरात्र और ऋतुके अन्तमें एकरात्र अनध्याय होता है । उत्सर्गमें मनु कहते हैं कि, पक्षिणी और अहोरात्रके संग तीन दिन इसका विकल्प है यह विज्ञानेश्वरका कथन है । अष्टकाशब्दसे सप्तमी आदि तीन जानने चाहिये । कारण कि, गौतमने यह लिखा है कि, तीन अष्टका होती हैं और कोई यह कहते हैं कि, पिछली एक होती है, ऋतुके अन्तवालियोंमें सौरमासके प्रमाणसे ऋत्वंतोंमें चन्द्रमासके अन्तका निषेध पर्वसे ही सिद्ध है, यह सर्वज्ञनारायणका कथन है, यह पूर्वोक्त अनध्याय नित्यके जानने चाहिये । अब नैमित्तिक(कारण युक्त)अनध्यायोंको कथन करते हैं। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, शिष्य, ऋत्विक्, गुरु,बन्धुकी मृत्युमें उपाकर्म और उत्सर्ग, सन्ध्याके गर्जन, वज्रपात,भूमिकम्प, बिजलीका पतन, वेदको समाप्त करके दो दिन और आरण्यकको पढ़कर, पंचदशी,चतुर्दशी, अष्टमी, राहुसूतक (ग्रहण),ऋतुकी सन्धि, भोजनके उपरान्त और श्राद्धका प्रतिग्रह लेकर और पशु, मेढक, बिलाव, न्योला, कुत्ता, सर्प ये बीचमेंसे निकल जायँ तो अहोरात्र और

भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः । कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शुक्रपाते तथोच्छ्ये ॥ ४ ॥" ग्रहणे द्विनिशीक्तावपि ग्रस्तास्ते त्र्यहमित्युक्तं प्राक् । स्मृत्यर्थसारे तु-'रात्रौ तु ग्रहे तिस्रो रात्रीः दिवा च त्र्यहम् ।' इत्युक्तम् । ऋतुः सौरः । भुक्त्वेत्युत्सवविषयम् । 'ऊर्ध्वं भोजनादुत्सवे' इति गौतमोक्तेः । श्राद्धिकमहैकोद्दिष्टभिन्नं तत्र तु त्र्यहमिति मनुः । स्मृत्यर्थसारे चैवम् । यत्तु-' पश्वद्यन्तराये त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ।' इति गौतमोक्तं तत् प्रथमाध्ययने । याज्ञवल्क्यः-"श्वक्रोष्टृगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥ देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे । भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेतिमारुते ॥ पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः ॥ ४ ॥" बाणो-वंशः । शततन्तुर्वीणेति हरदत्तः । अमेध्याः-सूतिकादयः । स्तनितं-गर्जः । वर्षातोऽन्यत्र गर्जवृष्टिविद्युतां यागपद्ये आकालिकः ।

---

इसी प्रकार (वीर्य)पात और उच्छ्रायमें अहोरात्र अनध्याय होता है । यद्यपि ग्रहणमें दो रात कही है तथापि ग्रस्त होने अस्त होनेमें तीन दिन जानने चाहिये, यह पहले कह आये हैं । स्मृत्यर्थसारमें तो यह कहा है कि, रात्रिके ग्रहणमें तीन रात्रि और दिनकेमें तीन दिन, यहां ऋतुसे सौर लेना चाहिये और भोजनके उपरान्त यह उत्साहमें है; कारण कि,भोजनके उपरान्त उत्सवमें न पढ़े, यह गौतम कहते हैं । श्राद्धमें एक दिन एकोद्दिष्टसे भिन्नमें ह, वहां तो मनुने तीन दिन लिखे हैं । स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है । और जो यह गौतमने लिखा कि, पशु आदिके बीचमें निकलनेमें तीन दिन व्रत और परदेशमें जाना है, वह प्रथम अध्ययनमें समझना चाहिये । याज्ञवल्क्यने कहा है कि, कुत्ता, गीदड, गधा, उल्लू, सामवेद, सौ तंतुओंकी वीणा, बाण तथा आर्त्तका शब्द, अमेध्य (सूतिका आदि ), मृतक, शूद्र, चाण्डाल, श्मशान, पतितकी निकटता, अशुद्ध स्थान तथा अपनी अशुद्धि, बिजली, बादलका शब्द, भोजन करके गीले हाथ, जलका मध्य, अर्द्धरात्र, अत्यन्त पवन, धूलिका वर्षण,दिशाओंके दाहमें, संध्या, नीहार (कुहर)के भयसे भागते हुएकी दुर्गन्धि, सज्जनके घरमें आनेपर खर तथा ऊंटकी सवारी, हाथी, अश्व, नौका, वृक्ष, ऊषरमें गमन ये सत्ताईस तात्कालिक अनध्याय जानना । और ऐतरेय उपनिषदमें तो यह कहा है कि,वर्षासे भिन्न ऋतुमें वर्षे तो तीन दिन

वर्षासु तात्कालिक इति नारायणः । संध्यागर्जे तु हारीतः-"सायंसंध्यास्तनिते रात्रिः । प्रातःसंध्यास्तनितेऽहोरात्रम् । " रात्रौ विद्युत्यपररात्र्यवधिः । 'विद्युति नक्तं चापररात्रात्' इति गौतमोक्तेः । 'तृतीयदिनांशोत्तरं तु विद्युति सर्वरात्रम्' इत्याह स एव । त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति अर्धरात्रे मध्ययामद्वयमिति विज्ञानेश्वरः । 'मध्यदण्डचतुष्टय' इति निर्णयामृते । मनुः-" न विवादे न कलहे न सेनायां न संगरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके ॥ रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥" कौर्मे-" श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥" मनुः-"शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥" प्रौढपादः पादोपरि पाददाता आसनारूढपादो वेति हरदत्तः । सोपपदास्वपि प्रागुक्तम् । स्मृत्यर्थसारे-"श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे शवदर्शने चाहोरात्रम् । असपिण्डे गुरौ मृते त्रिरात्रम् । आचार्ये उपाध्याये च पक्षिणी । आचार्यभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् । अग्न्युत्पाते गोविन्द-

---

अनध्याय होता है और वेदभाष्यमें भी लिखा है कि, मृगशिरसे लेकर ज्येष्ठा पर्यन्त वर्षाऋतु है, यह पीछे कह आये हैं, इससे औरमें वर्षा आदि हो तो तीन दिनरात अनध्याय होता है । हारीतने तो इस गौतमके कथनसे सन्ध्याके समय गर्जनमें अनध्याय लिखा है कि, सायंकालकी सन्ध्याके समय गर्जे तो एक रात्रि, प्रभात सन्ध्याक समय गर्जे तो अहोरात्र, रात्रिमें बिजलीका शब्द हो तो पररात्रकी ( अगली ) अवधितक अनध्याय होता है । तथा दिनके तीसरे भागमें बिजलीकी कडक हो तो सम्पूर्ण रात्रि अनध्याय होता है; तीनों भागोंमेंसे कोई समय यदि विद्युत् प्रवृत्ति हो तो सम्पूर्ण दिन अनध्याय होता है । विज्ञानेश्वरने तो आधीरातके समय मध्यमें बिजली हो तो मध्यके दो प्रहर अनध्याय लिखा है । निर्णयामृतमें तो बीचके चार प्रहरोंमें बिजलीके शब्दसे अनध्याय लिखा है । मनु कहते हैं कि, विवाद, लड़ाई, सेना, संग्राम, भोजन करनेपर, अजीर्ण, वमन, सूतक, गात्रसे रुधिर गिरनेमें, शस्त्रघावसे युक्त होनेमें अध्ययन न करे । कूर्मपुराणमें भी लिखा है कि, श्लेष्मातक ( बहेड़ा ), शाल्मलि (सेमल), महुआ, कोविदार और कैथकी छायामें कदाचित् वेद न पढ़े । मनु कहते हैं कि, लेटा हुआ प्रौढपाद ( उकडू बैठा हुआ ) तथा मांस और सूतक आदिका अन्न खाकर वेद न पढ़े । हरदत्तने प्रौढपाद उसको लिखा है कि, जो पांवपर पांव रखकर बैठा हो व जो आसनपर जिसके पांव रक्खे हों । सोपपदाओंमें निषेध प्रथम कथन कर आये हैं । स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि, श्रवणद्वादशी, महाभरणी, यमद्वितीया, रथसप्तमी तथा आकाशमें मृतक दर्शनमें अहोरात्रतक न पढ़े । असपिण्ड गुरुके मरनेमें तीन रात्रि, आचार्य उपाध्यायके मरनेमें दो दिन और एक बीचकी रात और आचार्यकी स्त्री पुत्र शिष्यकी मृत्युमें अहोरात्र अनध्ययन लगता है । अग्निके उत्पा-

प्रसूतौ त्रिरात्रम्। अयने विषुवे च पक्षिणी । अकालवृष्टौ च । आरण्यमार्जार-सर्पनकुलपञ्चनखादेरन्तरागमने त्रिरात्रम् । आरण्यश्वसृगालादिवानररजकादौ द्वादशरात्रम् । खरवराहोष्ट्रचाण्डालसूतिकोदक्याशवादौ मासम् । गोगवयाजा-नास्तिकादौ त्रिमासम्। शशमेषश्वपाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्या-घ्रमहापापिकृतघ्नादावब्दमनध्यायः । शोभनादिने चानध्यायः । विवाहप्रतिष्ठोद्या-पनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्यायः । "उदयेऽस्तमये चापि मुहूर्त्तत्रयगामि यत्। तद्दिनं तदहोरात्रं चानध्यायविदो विदुः॥ केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्त-द्दिननाडिकाः। तावदेव त्वनध्यायो तत्तन्मिश्रे दिनान्तरे ॥" प्रदोषं त्वाह प्रजा-पतिः-"षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका॥" निर्णयामृते गर्गः-"रात्रौ यामत्रयादर्वाक् सप्तमी वा त्रयोदशी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते। प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ २ ॥" कौर्मे-"अनध्या-यस्तु नांगेषु नेतिहासपुराणयोः । न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि

---

तसे गौ ब्राह्मण मृतक हो जाय तो तीन रात, दोनों अयन और विषुव संक्रांति और अकाल वर्षामें पक्षिणी ( दो दिन एक रात ), वनबिलाव, सर्प, न्योला, पंचनख आदिके बीचमें निक-लनेसे तीन रात, वनकुत्ता, गदिड आदि, वानर, रजक ( धोबी ) आदिके बीचमें निकलनेसे तो बारह दिन, गधा, सूकर, ऊंट, चाण्डाल, सूतिका, रजस्वला, शव आदिक बीचसे निकल जायँ तो महीनेभरका अनध्याय होता है, ऐसा जानना चाहिये। गौ, नील गाय,बकरी, नास्तिक आदि निकल जायँ तो तीन महीने, खरगोश, मेंढा, श्वपाक ( चांडालका भेद ) आदि निकल जायँ तो छः महीने; हाथी, गेंडा, सारस, सिंह, भेडिया, महापातकी, कृतघ्नी आदि निकल जायँ तो वर्षभर अनध्याय और सुन्दर दिनमें अनध्याय होता है, विवाह, प्रतिष्ठा, उद्यापन आदिमें तो जबतक पूर्ति न हो तबतक सगोत्रोंको अनध्याय है। कारण कि, यह वाक्य है कि, जो दिन उदय वा अस्तमें तीन मुहूर्त हो वह दिन ( तिथि ) उस अहोरात्रमें अनध्याय माना जाता है, यह अनध्यायके जाननेवालोंका कथन है। कोई तो यह कहते हैं कि,किसी देशमें जितनी उस दिनकी घडी हो उतना ही अनध्याय होता है और उससे मिले और दिनमें नहीं होता। प्रजापतिने प्रदोष तो यह लिखा है कि, छठ, द्वादशी ये अर्द्ध रात्रिसे एक घडी प्रथम तक हो और तीज नौ घडी राततक हो तो इस प्रदोषमें न पढे। निर्णयामृतमें गर्गने लिखा है कि, रात्रिको तीन प्रहरसे प्रथम सप्तमी वा त्रयोदशी हो तो सब विद्याओंके पढनेमें निंदित प्रदोष जानना चाहिये। रातमें तजिके दिन चौथ नौ घडीतक आ जाय तो वेदोंके पढनेमें उसको निंदित जानना चाहिये। कूर्मपुराणमें लिखा है कि, अंग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्रमें अनध्याय नहीं होता और इनसे औरोंको इन पर्वोंमें त्याग

वर्जयेत् ॥ " शौनकः-"नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेऽपि हि ॥ नानध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥" इत्यनध्यायाः ॥ अथ महानाम्न्यादिव्रतम् । श्रीधरः-" तिथिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत्सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥" एषां लोपे शौनकः-"व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत् । अकृत्वाऽभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः ॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाज्याहुतीः शतम् । हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः ॥ २ ॥ " स्मृत्यर्थसारे तु-'त्रीन् षट् द्वादश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत् ।' इत्युक्तम् ॥ अथ समावर्तनम् । सुरेश्वरः-" भौमाभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समावर्तनक्रिया ॥ " बौधायनसूत्रे तु-"रोहिण्यां तिष्ये उत्तरयोः फाल्गुन्योर्हस्ते चित्रायामैन्द्रे विशाखायां वा स्नायात् " इत्युक्तम् । वसिष्ठः-"स्नानं मध्याह्नकाले तु होरायां कारयेच्छुभम् । पूर्वाह्णे तदभावे तु कुर्यात्स्नानं यथाविधि ॥ " 'सर्वे ऋतवो विवाहस्य' इति सूत्रात् यदा दक्षिणायने विवाहस्तदा समावर्तनमपि तत्रैव । अन्यथोदगयने समावर्तने 'अनाश्रमी न तिष्ठेत ' इति विरोधः स्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये । एतच्च ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम् । तदाह बौधायनः-

---

देना चाहिये । शौनकने कहा है कि, नित्यकर्म, जप, काम्यव्रत, ऋतु और पारायणमें अनध्याय नहीं है, किन्तु वेदोंके पढ़ने और पढ़ानेमें ही अनध्याय लिखा है । इत्यनध्यायाः ॥ अब महानाम्न्यादि व्रत कहते हैं-श्रीधरने कहा है कि, महानाम्नीव्रतमें तिथि, नक्षत्र, अंश, वार, वर्गोदय इन सबको मुंडनके तुल्य देखना लिखा है और गोदानव्रतोंमें भी इसी प्रकारसे देखे । इनके लोपमें शौनकने यह लिखा है कि, व्रतोंको विधिपूर्वक करके अपनी शाखाको पढ़े, विना व्रतोंके किये जो अध्ययन करता है वह पापी विधिको नष्ट करता है । शाखा शाखाके प्रति एक २ कृच्छ्र और गायत्रीसे घृतकी सौ आहुति देकर स्नान करे, यह शौनकने लिखा है । स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि, तीन, छः, बारह कृच्छ्र करके पुनः व्रत करे । अब समावर्तन लिखते हैं-सुरेश्वरने कहा है कि, मंगल और शनि और व्रतोंमें कहे नक्षत्र तारा और चन्द्रमाकी शुद्धिमें समावर्त्तन कर्म करना होता है । बौधायन सूत्रमें तो रोहिणी, पुष्य, दोनों उत्तरा, दोनों फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखामें स्नान करे, यह लिखा है । वसिष्ठने कहा है कि, मध्याह्न समय ही होरामें यथाविधि स्नान करे, वह न हो तो पूर्वाह्णमें स्नान करे । जब विवाहकी सब ऋतु हैं, इस सूत्रमेंसे विवाह होता है, तब समावर्त्तन भी दक्षिणायनमें करे, अन्यथा ( न करे तो ) उत्तरायणमें समावर्तन होगा, तो विना आश्रम कभी न टिके, इस कथनका विरोध होगा, यह सुदर्शनभाष्यमें कहा है । ब्रह्मचर्य व्रतके लोपके प्रायश्चित्त करके समावर्तन कर ले । वहां बौधायनने

"शौचसंध्यादर्भभिक्षाग्निकार्यराहित्यकौपीनोपवीतमेखलादण्डाजिनधारणे दिवास्वापच्छत्रपादुकास्रग्विधारणाङ्गोद्वर्तनानुलेपनाञ्जनद्यूतनृत्यगीतवाद्याभिरतौ ब्रह्मचारी कृच्छ्रत्रयं चरेत् । महाव्याहृतिहोमं पाहित्रयोदशहोमं च कुर्यात् । समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचं कार्यम् ॥" "आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥" इति मनूक्तेः ॥ आदिष्टी ब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः ॥ ब्रह्मचर्ये यदि कश्चिन्मृतस्तदा त्रिरात्रमध्ये विवाहः कार्योऽन्यथा नेति सिद्ध्यति । जनने तु सत्यापि न त्रिरात्रम् । तत्रातिक्रान्ताशौचाभावादुदकं दत्त्वेति वचनाच्चेति दिक् । तत्रापि विकल्पः । "पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् । आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात् । स्नातकव्रतनिर्णयः । स्नातकव्रतान्याह व्यासः—"यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् । छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृत्तकेशनखः शुचिः ॥" वेदो—दर्भवटुः । मनुः—"उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥" अन्यान्यपि बह्वृचगृह्यस्मृत्यादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ अथ छुरिकाबन्धः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः—"छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् ।

---

लिखा है कि, शौच, संध्या, कुश, भिक्षा, अग्निहोत्रका त्याग, कौपीन, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड, मृगचर्मको न धारे । दिनमें सोना, छत्र, खड़ाऊं, मालाको धारना, उबटना, लेपन ( चन्दन ), अंजन, जुआ, नृत्य, गाना, बजाना, ऋतुमें गमनमें ब्रह्मचारीको तीन कृच्छ्र और महाव्याहृतियोंसे होम करना चाहिये । समावर्त्तनके उपरान्त ब्रह्मचारी तीन रात्रि मरनेका आशौच करे । कारण कि, मनुने यह लिखा है कि, ब्रह्मचारी व्रतकी पूर्तिपर्यंत जलदान करे और पूर्ण होनेपर जलदान देकर तीन दिन पर अशुद्ध होता है । यदि ब्रह्मचर्यमें किसीकी मृत्यु होजाय तो तीन रात्रि भी अशौच नहीं लगता । कारण कि, उसमें ( बीता हुआ ) अशौच नहीं होता और पूर्वोक्त जल देकर यह वाक्य भी है कि, जन्ममें किसीको जल नहीं दिया जाता, यह संक्षेपसे कहा । उसमें भी विकल्प है अर्थात् कोई जन्ममें भी आशौच मानते हैं । कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, पिताकी भी मृत्यु होनेपर ब्रह्मचारियोंको कभी दोष नहीं लगता, उसको अग्निहोत्र आदि कर्मके उपरान्तमें वा तीन दिन आशौच होता है । स्नातकके व्रत व्यासने यह लिखे हैं कि, दो यज्ञोपवीत, जलसहित कमण्डलु, छत्र, निर्मल पगड़ी, खड़ाऊं, जूता, सुवर्णके कुण्डल, वेद कुशाका बटुक रक्खे, केश और नखको न कटाना और शुद्ध रहे । मनुने कहा है कि, जूता, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, पुष्पमाला, कमण्डलु अन्यके धारण कियेको धारण न करे और भी व्रत बह्वृच, गृह्य और स्मृति आदिसे जानने ॥ अब छुरिकाबन्ध कहते हैं—ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, राजाओंके विवाहसे पहिले छुरिकाबन्धनको

विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ॥ जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ २ ॥ " संग्रहे-" शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्ज्यभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना ॥ " अथ विवाहः । याज्ञवल्क्यः-"अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् । अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् । " लक्षण्यां बाह्याभ्यन्तरलक्षणैर्युक्ताम् । बाह्यानि काशीखण्डादौ प्रसिद्धानि । आन्तराण्याश्वलायनोक्तानि । 'अष्टौ पिण्डान् कृत्वा ' इत्यादीनि । मनुः-" असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ " दत्रिममातुर्गृहीता अपि सपिण्डा सगोत्रा । तत्कुलनिवृत्तये चकारान्मातुरसगोत्रा दत्तस्य पितुर्जनककुले पितुरसगोत्रापि सपिण्डत्वान्निषिद्धेत्यन्यश्चकारः । असपिण्डां-सापिण्डचरहिताम् । तच्चैकशरीरावयवान्वयेन भवति । तत्र सापिण्डचम् । एकस्य हि पितुर्मातुर्वा शरीरस्यावयवाः पुत्रपौत्रादिषु साक्षात्परम्परया वा शुक्रशोणितादिरूपेणानुस्यूताः । यद्यपि पत्न्याः पत्या सह भ्रातृपत्नीनां च परस्परं नैतत्संभवति, तथापि आधा-

---

लिखता हूं-वह विवाहमें ( कहे ) महीने, शुक्ल पक्ष, बृहस्पति, शुक्र, मंगलका उदय हो, चन्द्रमा, ताराका बल और मौंजीबंधनके नक्षत्र, तिथि और मंगलके सिवाय अन्य वारोंमें छुरिकाको बांधे । संग्रहमें लिखा है कि, शूद्र राजाके पुत्रको मौंजी न बांधनी चाहिये, इससे मौंजीबन्धनमें लिखी तिथि आदिमें मंगलवारको त्यागकर अस्त्रको बांधे ॥ अब विवाहकी विधि कहते हैं-याज्ञल्क्यने लिखा है कि, अक्षत ब्रह्मचर्यवाला मनुष्य सुलक्षणस्त्रीको विवाहे, जिसका पहिले सम्बध न हुआ हो, जो सुन्दर हो, अपने सपिण्डकी न हो और अपनेसे छोटी हो, रोग रहित हो; जिसका भाई विद्यमान हो, जो अपने प्रवर और गोत्रकी न हो और स्त्रीके लक्षण बाहर और भीतरके वर्तमान हो। उनमें बाह्य तो काशीखण्ड आदिमें लिखे हैं और अनन्तरके आठ पिंड बनाकर देखे, ये आश्वलायनमें लिखे हैं । मनुने कहा है कि, जो माताकी असपिंड हो और पिताके गोत्रकी न हो वह स्त्री विवाह मैथुनकर्ममें द्विजातियोंको है । दत्तक माताका ग्रहण करनेवाला असपिण्ड भी सगोत्र है, कुछ कुल निवृत्तिके निमित्त नहीं, चकारसे माताकी भी असगोत्र लेनी। दत्तक पिताके जनक कुलमें पिताकी असगोत्राको भी सापिंड होनेसे इसको दूसरा चकार निषेध करता है, असपिंडासे सापिण्डय एक शरीरके सम्बन्धसे होता है । एक पिता वा माताके शरीरके अवयव पुत्र पात्र आदिमें साक्षात् वा परंपरासे वीर्य और रजके द्वारा ( मिले ) हैं । यद्यपि पतिके संग पत्नीका और भ्राताकी पत्नियोंका यह सम्बन्ध परस्पर नहीं हो सकता, तो भी आधार होनेसे एक शरीरा-

त्वैनैकशरीरावयवान्वयोस्त्येव । 'अस्थिभिः—अस्थीनि' इति मन्त्रलिङ्गात् एकस्य हि पितृशरीरस्यावयवाः पुत्रद्वारा तास्वाहिता इति मदनरत्ने पारिजातविज्ञानेश्वरादयः ॥ वाचस्पतिशुद्धिविवेकशूलपाण्यादिगौडमैथिलादयोऽप्येवम् । श्रुतावपि—'एतत् षाट्कौशिकं शरीरम् । त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतोऽस्थिस्नायुमज्जानः पितृतस्त्वङ्मांसरुधिराणि मातृतः ' इति । 'प्रजामनु प्रजायसे' इति च । चन्द्रिकापरार्कमेधातिथिमाधवादयस्तु एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्ड्यम् । "लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥ " इति मात्स्योक्तेः । न च पितृव्यादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । तत्कर्तृकश्राद्धे दैवतैक्येन तत्सत्त्वात् । देवदत्तकर्तृकश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्ये यः कश्चिदन्यकर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशति तेषां सापिण्ड्यम् । तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे सहाधिकारित्वेन तदन्वयात् । 'एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके । ' इति स्मृतेश्च । श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात्तस्य सापिण्ड्यनिमित्तत्वे मानाभावात् । न च मातुलादिष्वेतन्नास्तीति वाच्यम् । मातामहरूपदैवतैक्यात् । ननु गुरु-

---

न्वय है ही, अर्थात् एक ही कुल सबका आधार है । कारण कि, यह मन्त्रका प्रमाण लिखा है कि, अस्थियोंके संग अस्थि मिलाता हूं, एक ही पिताके शरीरके सम्पूर्ण अवयव पुत्रके द्वारा उनमें स्थित होते हैं, यह मदनरत्न, पारिजात, विज्ञानेश्वर आदिका कथन है । और वाचस्पति शुद्धिविवेक, शूलपाणि आदि गौड, मैथिल भी इसी प्रकार कथन करते हैं । श्रुति भी है कि, वह शरीर छः कोश ( तत्त्वों ) से युक्त है, तीन कोश पितासे और तीन तत्त्व मातासे होते हैं—अस्थि, स्नायु, मज्जा ये तीन पितासे; त्वचा, मांस, रुधिर मातासे होते हैं । और यह भी श्रुति है कि, यह मनुष्य प्रजामें ही उत्पन्न होता है, चन्द्रिका अपरार्क, मेधातिथि, माधव आदिका तो यह कथन है कि, एक पिण्डदानकर्मका जिनके संग सम्बन्ध है वे ही सपिण्ड हैं । मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, चौथेसे आदि लेकर तीन लेपभागभुज और पिता आदि तीन पिंडभागी और सातवां पिण्ड देनेवाला यह सात पुरुषतक सापिण्ड्य होता है । यदि कोई यह शंका करे कि, पितृव्य ( चाचा ) आदिमें यह सापिंड्य नहीं है, सो उचित नहीं; कारण कि, पितृव्यके किये श्राद्धमें देवता एक होनेसे सापिण्ड्य है । देवदत्तके किये श्राद्धमें जो देवता हुए थे उनके मध्यमेंसे जो कोई दूसरेके किये श्राद्धमें हैं उनका सापिण्ड्य होता है, उनकी स्त्रियोंको भी स्वामियोंके किये श्राद्धमें संग अधिकार होनेसे एक शरीरका अन्वय है और पिंड गोत्र सूतकमें वह स्त्री पतिकी एकताको प्राप्त होजाती है, इस स्मृतिसे अन्वय है और श्रुति वैराग्यके निमित्त है, श्रुति भी सापिण्ड्यमें निमित्त है, इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता । यदि कोई शंका करे कि, मामा आदिमें यह नहीं है सो उचित नहीं; कारण कि, नाना आदिरूप देवता वहां भी एक है, इससे सपिण्डता है । गुरु शिष्य आदिका भी श्राद्धदेवता होनेसे सपिण्ड हो जायगा ।

शिष्यादेरपि श्राद्धदेवतात्वात्सपिण्डत्वं स्यात् । किंबहुना-'सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तस्य रिक्थतः ।' इति मार्कण्डेयपुराणाद्राज्ञोऽपि श्राद्धकर्तृत्वात्सापिण्डयप्रसङ्गः । सत्यम् । 'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा' इति याज्ञवल्क्यवचनेन माता-पितृसम्बन्ध एव तत्सत्त्वात् । ऊर्ध्वं सापिण्डयं निवर्तत इति शेषः । ननु पञ्चमत्वाद्यत्र नियम्यते न मातृतः इत्यादिवाक्यमेतत् । मैवम् । मातृकुले पञ्चमत्वस्य पितृकुले सप्तमत्वस्य च बाधने तुल्यत्वात् । पौरुषेयत्वाददोष इति चेत् । तुल्यमन्यत्रापि । अन्यकर्तृके राज्ञस्तत्पितॄणां वा देवतात्वाभावाच्च । किंच अवयवान्वयपक्षे यथा योगरूढया परिहारस्तथेहापि तेन मातृकुले पितृकुले चैकपिण्डदानक्रियान्वयित्वं सापिण्डयमित्याहुः । तेनैकस्य पित्रादयः षट् पुत्रादयश्च षट् सपिण्डा भवन्ति । अत्र केचिदुभयतः सापिण्डयनिवृत्तावेवोद्वाहो नान्यथा इत्याहुः । शुद्धचिन्तामणिवाचस्पतिहरदत्तादयस्तु सगोत्रत्ववत्सापिण्डयस्य सप्त-

---

बहुत कहनसे क्या है ? जिसके कोई न हो उसका राजा करे, इस मार्कण्डेयपुराणके वाक्यसे राजा भी श्राद्धका कर्ता है उसको भी सापिंडयकी प्राप्ति होगी सो सत्य है अर्थात् योग्य नहीं, कारण कि, मातासे पांचवें और पितासे सातवें पुरुषसे पीछे सापिंडय नहीं रहता, इस याज्ञवल्क्यके कथनसे माता और पिताके सम्बन्धमें ही सापिंडय प्राप्त होता है कि, पांचवें और सातवेंसे उपरान्त सपिंडता नहीं रहती है, यह याज्ञवल्क्यके वाक्यमें शेष समझना । यदि कोई कहे कि, पंचमत्वका यहां नियम है, अर्थात् मातास पांचवें और पितासे सातवें तक सापिंडय रहता है और फिर निवृत्त हो जाता है,यह अथ नहीं है; कारण कि, माताके कुलमें पांचवेंसे और पिताके कुलमें सातवेंसे आगे सापिंडय नहीं रहता, नियमके न माननेमें यह वाक्यभेद होगा, ऐसा मत कहो, कारण कि, नियम पक्षमें भी माताके कुलमें पांचवें-तकका और पिताके कुलमें सातवेंतकका ज्ञान करनेमें वाक्यभेदको समान है । यदि कहो कि, नियम पक्षमें ईश्वरोक्त होनेसे वाक्यभेदका दोष नहीं ह तो निषेधपक्षमें भी ईश्वरोक्त होनेसे वाक्यभेदका दोष नहीं है । वाक्यभेदरूप प्राप्त दोषके अभावको न माना जाय और दूसरे-के किये श्राद्धमें राजाको सापिंडय इस प्रकार नहीं होता कि, उसके पितर उसके देवता नहीं होसकते, किंच जब माता पिताके अवयवोंके योगसे सापिंडय होता है, इस पक्षमें जैसे योगरूढिसे इसका परिहार है इसी प्रकार यहां भी योगरूढि जानो, अर्थात् जिसमें सपिंड पदका तुल्यपिण्डवाले यह अर्थ भी करे और पांचवें आदितक उसमें रूढ भी हो, शब्दके अवयवोंका अर्थ जिसमें प्राप्त हो उसे योग कहते हैं, इससे माताके और पिताके कुलमें जिस जिस में एक पिंडदानक्रियाका अन्वय हो वही सपिंड होता है। किन्हींका यह कथन है उससे एक पिंड करनेवालेके पितासे लेके छः बारह सपिंड होते हैं, इसमें किन्हींका यह कथन है कि, दोनों ओरसे सापिंडयकी निवृत्तिमें ही विवाह होता है, और प्रकार नहीं होता। शुद्धचिन्तामणि वाचस्पति और हरदत्त आदिका तो यह कथन है कि, जैसे सगोत्रता

तियोगिकत्वेन संयोगवदुभयनिरूप्यत्वात् एकतो निवृत्तावन्यतो निवृत्तेरावश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमो वरो मूलपुरुषमारभ्य द्वितीयातृतीयादिकां कन्यामुद्वहेदित्याहुः । शिष्टास्तु न वधूवरयोः स्वतः सापिण्ड्यं किं तु कूटस्थसंततित्वात्तत्सापिंड्येनैव । अतोऽष्टमवरं प्रति कन्याया असापिंड्येऽपि कन्यायाः कूटस्थेन सापिण्ड्यात्तत्संततिस्थत्वाद्वरस्तां प्रति सपिण्ड एवेत्यविवाहः । सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोः प्रतियोगिभेदेनाविरोधादित्याहुः ॥ इदमेव च युक्तम् । आशौचेऽप्येवं सापिण्ड्यं ज्ञेयम् । यत्र तु मध्ये विच्छिन्नमपि सापिण्ड्यं मण्डूकप्लुतिवत्पुनरनुवर्तते । यथा–कूटस्थात्पञ्चम्योः कन्ययोः पुत्रौ तत्र निवृत्तिः । तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्तत्रापि न सापिण्ड्यासापिण्ड्ययोर्दोषः । संबन्धिभेदात् । तेन तत्र न विवाहः । अत्र कूटस्थमारभ्य गणना कार्या । तदुक्तम्–"वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः । पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निवर्तते ॥" इति । कूटस्थो मूलपुरुषः । विश्वरूपनिबन्धे–"एवमुक्तप्रकारेण पितृबन्धुषु सप्तमात् । ऊर्ध्वमेव विवाह्यत्वं पञ्चमान्मातृबन्धुतः ॥ सन्तानो भिद्यते यस्मात् पूर्वजादुभ-

---

सप्रतियौगिक अर्थात् उसके दो निरूपक होते है, इसी प्रकार सापिण्ड्य भी सप्रतियौगिक है इससे संयोगके तुल्य वह दोनोंसे बनाने योग्य है इससे एकसे निवृत्ति होनेके पीछे औरसे उसकी निवृत्ति आवश्यक है, इससे मूल पुरुषसे लेकर दूसरी तीसरी आदि कन्याका विवाह हो सकता है । शिष्टोंका तो यह कथन है कि, वधू और वरकी स्वयं सपिंडता नहीं है किन्तु कूटस्थ ( मूलपुरुष ) की सन्तान होनेसे सपिंडता प्राप्त होती है, इससे आठवें वरके प्रति यद्यपि कन्या असपिंड है, तो भी कूटस्थके संग कन्याको सपिण्ड होनेसे वरको उस मूलपुरुषकी सन्तान होनेसे उस कन्याके प्रति सपिण्डता प्राप्त ही है, इससे उन दोनोंका विवाह नहीं हो सकता; कारण कि, सपिंडता असपिंडताका प्रतियोगीके भेदसे परस्पर विरोध है, और यह शिष्टोंका कहना भी युक्त है अशौचमें भी इसी प्रकार सपिंडता जाननी चाहिये और जहां बीचमें सपिंडता जाती हो अर्थात् बीचका कोई मृतक हो गया हो वहां मेंडककी प्लुति ( कूदना ) के तुल्य अनुवर्तन होजाता है और जहां बीचमें सपिंडताकी अनुवृत्ति नहीं होती, जैसे कूटस्थसे पांचवीं कन्याके पुत्रोंमें वहां निवृत्त होजाती है और उनकी सन्ततिमें तो अनुवृत्ति होजाती है, वहां भी सपिंडता और असपिंडताका सम्बन्धीके भेदसे दोष है, इससे वहां विवाह नहीं होता । यहां कूटस्थसे लेकर गिनती करनी, सोई लिखा है कि, वधू और वरका पिता यदि कूटस्थसे सातवां हो और उनकी माता पांचवीं हो तो उन दोनोंके सापिंड्यकी निवृत्ति हो जाती है । विश्वरूपनिबन्धमें कहा है कि, ऐसे ही उक्त प्रकारसे पिताके बन्धुओंमें सातसे ऊपर ही विवाह करने योग्य है और माताके बन्धुओंमें पांचसे उपरान्त सन्तानके भेदकी प्राप्ति हो जाती है, इससे मूलपुरुषसे दोनों

अत्र च । तमादाय गणेद्धीमान् वरं यावच्च कन्यकाम् ॥" स्मृतितत्त्वे नारदः— "आसप्तमात्पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा ॥" अत्र बन्धुभ्य इति पञ्चमीनिर्देशात् । पितुः पितृष्वसृपुत्रात्सप्तमीं मातुः पितृष्वसृपुत्राच्च पञ्चमीमपि त्यजेत् । एवमन्यबन्धुषु ज्ञेयम् ॥ त्रिगोत्रात्यये निर्णयः । तत्रापि त्रिगोत्रात्ययेऽर्वागपि विवाहं कुर्यात् । वक्ष्यमाणवचनात् । त्रिगोत्रगणनाच्च मातामहगोत्रापेक्षया । न तु स्वापेक्षया । अन्यथा पितुः पितामहदुहितुर्दौहित्रीपुत्री परिणेया स्यात् । वध्वा मातामहगोत्रापेक्षया तु त्रिगोत्रान्तर्गतेन विवाहप्रसंग इति संबन्धतत्त्वादयो गौडग्रन्थाः । सम्बन्धविवेके शूलपाणिरप्याह—पञ्चमात्सप्तमाच्चार्वागपि त्रिगोत्रान्तरिता विवाह्या । "असंबद्धा भवेन्मातुः पिण्डेनैवोदकेन वा ॥ सा विवाह्या द्विजातीनां त्रिगोत्रान्तरिता च या ॥" इति बृहन्मनूक्तेः । 'सन्निकर्षेऽपि कर्तव्यं त्रिगोत्रात्परतो यदि ।' इति देवलोक्तेश्चेति । एतच्च दाक्षिणात्या न मन्यन्ते । यत्तु वसिष्ठः—'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा ।' इति । यच्च विष्णुपुराणे—"पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् । गृहस्थ उद्वहेत्कन्यां न्याय्येन विधिना नृप ॥" इति । तत्पञ्चमीं सप्तमीमतीत्येति व्याख्ये-

---

गिनती वर और कन्यातक करे, स्मृतितत्त्वमें नारदने कहा है कि, पिता और माताके बन्धुओंसे सात और पांचवें तककी और अपने गोत्रकी और प्रवरकी कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। इस वाक्यमें 'बन्धुभ्यः' यह पंचमीका निर्देश (दिखाना) है, इससे पिताकी पितृष्वसा (फूफी) के पुत्रसे सातवीं और माताकी फूफीके पुत्रसे पांचवींको भी छोड़दे, इसी प्रकार और बन्धुओंमें जानना । उसमें भी तीन गोत्रके भेद होनेपर प्रथम पीढ़ियोंमें भी विवाह कर ले, कारण कि, ऐसा ही वचन आगे लिखेंगे, तीन गोत्रकी गिनती भी मातामहके गोत्रसे करनी चाहिये अपने गोत्रसे नहीं, अन्यथा पिताके पितामहकी पुत्रीकी जो दौहित्री वा पुत्री है वह भी विवाहने योग्य हो जायगी । यदि वधू मातामहके गोत्रकी अपेक्षासे तीन गोत्रके भीतर हो तो विवाह नहीं होता, यह सम्बन्धतत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें कहा है। संबन्धविवेकमें शूलपाणिने भी लिखा है कि, पांचवें और सातवेंसे प्रथम तीन गोत्रके बीचकी कन्या विवाहके योग्य है, कारण कि, बृहन्मनुने लिखा है कि, जो पिंड वा जलदानमें माताके संबन्धमें न हो चाहे वह तीन गोत्रके बीचमें भी हो तो भी द्विजातियोंका विवाह करनेके योग्य है। देवलने कहा है कि, तीन गोत्रसे आगे हो तो निकटम भी विवाह कर ले, इसको दाक्षिणात्य नहीं मानते । जो वसिष्ठने यह लिखा है कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवीं विवाहने योग्य है और जो विष्णुपुराणमें यह लिखा है कि हे नृप ! मातृपक्षसे पांचवीं और पितृपक्षसे सातवीं कन्याको गृहस्थी विवाहे और विधिस विवाह ले, यह दोनों वाक्य पांचवीं और सातवींको लंघकर विवाह करे, यह अर्थ करके लगाने, कारण कि, अपरार्कमें मरीचिने कहा

यम् । "पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया । क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः ॥" इत्यपरार्के मरीचिवचनात् । हारलतायां शंखलिखितौ—"सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी । पिण्डश्चोदकदानं च आशौचश्च तदानुगम् ॥" गोत्रं सन्तानम् । आशौचं तानभिव्याप्य गच्छतीत्यर्थः । शुद्धिविवेके शुद्धिचिन्तामणौ च ब्राह्मे—"सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी । सपिण्डता ततः पश्चात्समानोदकधर्मता ॥ ततः कालवशात्तत्र विस्मृतौ नामगोत्रतः । समानोदकसंज्ञा तु तावन्मात्रापि नश्यति ॥ २ ॥" सप्तोर्ध्वं त्रयः सोदकाः । ततो गोत्रजाः । तत्रैव ब्राह्मे—'अविभक्तधनास्त्वेते सापिण्डाः परिकीर्तिताः' तेन विभक्तधनाभावे विभक्तः सपिण्डो धनहारी नान्यथा इत्यर्थः । तेन विवाहे आशौचे धनग्रहणे च त्रिधा सापिण्डयम् । यत्तु—'पञ्चमीं मातृतः परिहरेत्सप्तमीं पितृतस्त्रीन्मातृतः पञ्च पितृतो वा' इति पैठीनसिस्मृतौ त्रीनित्यनुकल्प इति माधवोक्तेः ॥ "पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा । दशभिः पुरुषैः ख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ॥ उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् । पञ्चमीं तद-

---

है कि, पांचवें और सातवें जिनका विवाहकर्म होता है, कर्ममें तत्पर भी वे पतित और शूद्रभावको प्राप्त होते हैं। हारलतामें शंखलिखितका कथन है कि, सबकी सपिंडता गोत्रमें सात पुरुषतक होती है और पिंड जलदान अशौच भी वहांतक ही होते हैं, इस कथनसे गोत्रसे संतान लेनी, वहांतक अशौच लगता है यह अर्थ जानना। शुद्धिविवेक और शुद्धिचिंतामणिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, सब वर्णोंकी सपिंडतासात पुरुषतक जाननी चाहिये और उससे परे समानोदक धर्म प्राप्त होता है, अर्थात् सात पुरुषतक पिंड देनेका अधिकार है और उससे आगे केवल जलदान फिर कालवशसे आत्मगोत्रकी जब याद न रहे, तब उतनी भी समानोदक संज्ञाकी निवृत्ति हो जाती है, सातसे ऊपर तीन समानोदक, उससे परे फिर गोत्रज संज्ञा प्राप्त हो जाती ह । वहां ही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, जबतक इनके धनका विभाग न हो तबतक ये सपिंड कहाते हैं, इससे धनका विभाग न होनेपर भी पृथक् ( जुदे ) हुए असपिंडधनके भागी होते हैं अन्यथा नहीं, इससे विवाह अशौच धनके विभागमें तीन प्रकारकी सपिंडता सिद्ध होती है। जो किसीने यह लिखा है कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवीं वा मातासे तीसरी और पितासे पांचवीं लेनी इस पैठीनसीकी स्मृतिमें पांचवीं और सातवींके स्थानमें तीसरी और पांचवीं यह विकल्प है, इस माधवके वचनसे माता और पितासे पांचवीं और सातवीं उस कन्याको विवाहे जो दश पीढियोंतक विख्यात वेदपाठियोंके श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुई हों। सांतवींसे परे कन्याको विवाहे, वह न मिले तो सातवींको विवाहे और वह न

भावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः । सप्तमीं च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च । एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः ॥ ४ ॥" "यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् । नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते ॥" इति चतुर्विंशतिमतात् । "चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमोऽपि वा । पराशरमते षष्ठीं पञ्चमो न तु पंचमीम् ॥" इति पराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापदि पञ्चम्यादिपरिणयनं कार्यमिति प्रतीयते । अत्र हि तदभावे इति स्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम् । तत्र यथाश्रुतं ज्ञेयम् । पूर्वोक्तमरीचिवचोविरोधात् । वस्तुनि विकल्पसंभवात् । "पञ्चमात्सप्तमाद्धीनां यः कन्यामुद्वहेद्द्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्वहन् ॥" इति विष्णूक्तेः । पराशरस्य मूलाभावाच्च । तस्मान्मदनपारिजाताद्युक्तदिशा दत्तकसापत्न्यसम्बन्धाद्यनुप्रवेशे ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिसपिण्डविषये वा पूर्वोक्तानि ज्ञेयानि । न त्वनुकल्प इति भ्रमितव्यम् । यत्तु स्मृतिचन्द्रिकामाधवादय आहुः–तृतीये संगच्छावहै चतुर्थे संगच्छावहै' इति शतपथश्रुतेः । 'तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपामिव' इति । ' गर्भे नु नौ

---

मिले तो पांचवीको पितृपक्षमें भी विवाहे, यही विधि है कि, सातवी छठी पांचवी कन्याके विवाहनेमें दोष नहीं, यह शाकटायनका कथन है, दोनों पक्षोंमें तीसरी वा चौथीको विवाहै यह मनु पराशर अंगिरा और यमका कथन है । और जो देशके अनुसार और कुलमार्गसे विवाहित है वह सदैव व्यवहार ( सम्बन्ध ) करनेके योग्य होता है; कारण कि, वेदमें भी यही लिखा है, इस चतुर्विंशतिके मतसे चौथा पांचवां वर चौथी कन्यासे विवाह करे, पराशरके मतमें पांचवां छठीको विवाहे पांचवीको नहीं, इस पराशरके कथनसे पांचवीका विवाहना गौण है, इससे आपत्तिमें ही पांचवीका विवाह करे यह विदित होता ह और यहां छठी न मिले तो पांचवीको विवाहे यह प्रकट ही पांचवींका विवाहना गौण लिखा है, यह किसीका कहा हुआ विकल्प ठीक नहीं है; कारण कि, इसमें पूर्वोक्त मरीचिके वाक्यका विरोध है और वस्तुनः (यथार्थ) विकल्पका असम्भव भी प्राप्त होता है और यह विष्णुने भी कहा है कि, पांचवें और सातवेंसे प्रथम और अपने गोत्रकी कन्यासे जो द्विज विवाह करता है उसे गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला जानना चाहिये और पराशरके वाक्यमें कोई प्रमाण भी नहीं इससे यह भ्रम नहीं करना । मदनपारिजात आदिके कहे हुए मार्गसे दत्तकका और सौतेले भाईके सम्बन्धका प्रवेश जब ब्राह्मणादिकमें हो जाय तब उनमें वा क्षत्रिय आदिकोंके सापिंडमें पूर्वोक्त पाराशर आदिके वाक्य लगाने चाहिये, अनुकल्प नहीं मानना चाहिये । जो स्मृतिचन्द्रिका और माधव आदिका यह कथन है कि, तीसरेमें संग ( विवाह ) करते हैं वा चौथेमें करते हैं, मातुलकी पौत्रीको तुल्य विवाहमें पैतृष्वस्रेयी ( फूफीकी

जनिता दम्पतीकः' इति च मन्त्रवर्णात् ॥ मातुलकन्यापरिणयनिर्णयः । "मातृष्वसृसुतां केचित्पितृष्वसृसुतां तथा । विवहन्ति क्वचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्डताम्" इति शातातपोक्तेश्च । मातुलकन्योद्वाहोऽपि कार्यः। यद्यपि पितृष्वसृकन्योद्वाहोऽपि प्राप्तस्तथापि 'अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु' इति निषेधाद्वचनान्तरेण तदुद्वाहस्याविधानाच्च न कार्यः । अयं तु दाक्षिणात्यशिष्टाचारात् कार्य इति । नच पूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता । मानान्तरेणासिद्धौ-'उपरि हि देवेभ्यो धारयति' इतिवदनुवादानुपपत्त्या विधिकल्पनात् । यत्तु शातातपः-"मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ " यच्च मनुः-"पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान् ॥" यच्च व्यासः-'मातुः सपिण्डाद्यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः ।' इति तद्गान्धर्वादिविवाहोढमातृविषयम् । तत्र पितृगोत्रानिवृत्तेः । अत एव मार्कण्डेयपुराणे-' गान्धर्वादिविवाहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित् ।' इति । ब्राह्मादिविवाहे तु परिणेयैवेति । भट्टसोमेश्वरोऽपि तृतीयेऽध्याये वाक्यपादे मातुल-

---

लड़की ) को छोड़ दे । कारण कि, गर्भमें इस मन्त्रसे और वर्णसे स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं । कोई माताकी बहनकी पुत्री और कोई पिताकी बहनकी पुत्री सपिंडताके संकोचसे विवाहते हैं इस शातातपके कथनसे मातुलकी कन्याके संग विवाह करना, यद्यपि पिताकी बहिनी पुत्रीके संग भी विवाह प्राप्त है तो भी वह नरकका साधन और जगत्में निन्दित है, इस निषेधसे और किसी देशमें उसकी विधि भी नहीं है, इससे उसको नहीं करना, यह दाक्षिणके शिष्टाचारसे करना । यदि कोई कहे कि, पूर्वोक्त श्रुति अर्थवादरूप है विधि नहीं सो भी ठीक नहीं, प्रमाणान्तरसे सिद्ध न हो तो इसके तुल्य अनुवाद नहीं हो सकता, इससे विधिकी कल्पना है कि, परलोकका कर्म देवताओंके निमित्त करता है। जो शातातपने यह लिखा है कि, मामाकी और माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याके संग यदि विवाह हो जाय तो उसे छोड़कर चान्द्रायण करे । और जो मनुने कहा है कि, फूफीकी पुत्री भैनी माताकी बहिनकी पुत्री और माताके बड़े भ्राताकी पुत्रीके संग गमन करके चान्द्रायण करे, इन तीनोंको बुद्धिमान् मनुष्य स्त्रीत्वमें स्वीकार न करे । और जो व्यासने कहा है कि, द्विजाति मनुष्य माताके सपिंडकी कन्याको यत्नसे त्याग दें, ये पूर्वोक्त वाक्य उस माताके विषयमें हैं जो गान्धर्व आदि विवाहोंसे विवाही गयी हो; कारण कि, उन विवाहोंमें पिताका गोत्र निवृत्त नहीं होता, इससे ही यह मार्कण्डेयपुराणमें कहा है कि, गांधर्व आदि विवाहोंमें पिताके गोत्रसे ही धर्मयुक्त होता है, यदि ब्राह्म आदि विवाह हुआ हो तो विवाहने योग्य है। सोमेश्वरभट्टने भी वाक्यचरणके तीसरे अध्या-

कन्योद्वाहमुदाहृत्य स्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्य वार्तिकबाधोक्तावपि पूर्वोक्तश्रौतलिङ्गबलीयस्त्वादस्य कर्तव्यतामाह । तदेतद्दत्तकस्य पालकदत्रिममातृसोदरकन्याविषयत्वेनासवर्णमातुलकन्याविषयत्वेन युगान्तरपरत्वेन चोपपन्नमपि अविचारितरमणीयं यथा तथास्तु । तथापि कलौ तावन्निषिद्धमेव । 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ।' इत्यादित्यपुराणात् । माधवीये बौधायनोऽप्यस्य निन्दामाह-'पञ्चधा विप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरत ऊर्णाविक्रयोऽनुपेतेन स्त्रिया च सह भोजनं पर्युषितभोजनं मातुलपितृष्वसृदुहितृपरिणयनमिति । अथोत्तरतः सीधुपानादिकमुक्त्वा इतर इतरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति, इतर इतरस्मिन्निति भट्टसोमेश्वरेणापि स्मृतिविरुद्धानां मतुलकन्योद्वाहादीनामस्माद्वचनादप्रामाण्यमित्युक्तम्। बृहस्पतिरपि-"उद्वह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः । मत्स्यादाश्च नराः पूर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः ॥ उत्तरे मद्यपाश्चैव स्पृश्या नृणां रजस्वलाः" इत्यनाचारत्वमाह । अत एव हेमाद्रौ मात्स्ये कर्नाटकादीनां तत्कारिणां श्राद्धे निषेधः । बोपदेवेनापि लिखितं ब्राह्मम्-"यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृतं यच्च निरामिषम् ॥" इति । तस्मा-

---

यमें मामाकी कन्याका विवाह लिखकर आचारसे प्राप्त भी इसका स्मृतिके विरोधसे वार्तिकमें बाध भी लिखा है, परन्तु पूर्वकथित श्रुतिका प्रमाण अधिक बलवान् है, इससे यह करनेसे योग्य लिखा है इससे यह मामाकी लड़कीके संग विवाह उस कन्याके विषय जानना, जो दत्तकके पालनेवाले दत्तक ही माताके सगे भाईकी पुत्री है वा पृथक् वर्णके मातुलकी पुत्री अथवा ( अन्ययुग ) के विषयमें है, इससे शास्त्रसिद्ध भी मातुलकी कन्याको विवाहे, विना विचारे ही शोभित है, तो भी कलियुगमें निषिद्ध ही है, कारण कि, आदित्यपुराणमें यह कहा है कि, माताके गोत्र और सपिंडसे विवाह और गोविशसन ये कलिमें वर्जित हैं । माधवीयमें बौधायनने भी इसकी निन्दा लिखी है कि, विन्ध्याचलके उत्तर और दक्षिणमें पांच प्रकारका विवाह चलता है कि, यज्ञोपवीत रहितके और स्त्रीके संग भोजन, बासी भोजन, मामा फूफीकी कन्याके संग विवाह ये निषिद्ध हैं, फिर उत्तरमें मद्यपान आदि लिखकर अन्य अन्य देशमें करनेसे दूषित होता है और एक अन्यदेशमें करे तो दूषित नहीं होता है, इस कथनसे सोमेश्वर भट्टने भी धर्मशास्त्रके विरुद्ध मातुलकी कन्याके विवाह आदि इस वाक्यसे अप्रामाणिक लिखे हैं । बृहस्पतिने भी इनको अनाचार कहा है कि, द्विज मामाकी कन्याको विवाहते हैं, पूर्वके मनुष्य मत्स्यभक्षण करते हैं, उत्तरमें स्त्री मद्य पीती है और रजस्वलाको छू लेते हैं, इसीसे हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, उसके करनेवाले कर्णाटकोंका श्राद्धमें निषेध कहा है, बोपदेवने भी ब्रह्मपुराणका वाक्य लिखा है-हे विप्र ! जहां मामाकी कन्याके संग विवाह करनेवाला और शूद्राका पति रहता हो, वहांपर किया श्राद्ध और मांससे रहित श्राद्ध पितरोंको नहीं पहुँचता, इससे सिद्ध हुआ कि,

न्मातृतः पञ्च पितृतः सप्त त्यक्त्वोद्वहेदिति सिद्धम् ॥ सम्बन्धविवेके सुमन्तुः- "ब्राह्मणानामेकपिण्डस्वधानामादशमाद्धर्मविच्छित्तिर्भवति । आसप्तमाद्रिक्थविच्छित्तिर्भवति। आतृतीयात्पिण्डविच्छित्तिरन्यथा । पिण्डशौचाक्रियाविच्छेदाद्ब्रह्मतुल्यो भवति।" अस्यार्थमाह शूलपाणिः-जीवत्पित्रादित्रिकस्य वृद्धप्रपितामहादयस्त्रयः श्राद्धदेवतात्वात्पिण्डभाजो भवन्ति। तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यन्ता लेपभाजः। श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्ड्यनिवृत्तिः। दशमादित्युपलक्षणम्। तेन पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यंतं पितृजीवने चाष्टपुरुषपर्यन्तं सापिण्ड्यमिति ज्ञेयम् । अपुत्रधनग्रहणे संनिहिताभावे .सप्तपुरुषपर्यन्तमधिकारः। धनग्राहिणमारभ्य तृतीयः पौत्रः, तदूर्ध्वं श्राद्धविच्छेदः । अन्यथा धनहारित्वेऽपुत्रश्राद्धाकरणे ब्रह्महत्येत्यर्थः । आतृतीयादित्यनूढकन्याविषयम्। 'अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते' इति वासिष्ठोक्तेः । एतच्चाशौचविषयं सापिण्ड्यं न तु विवाहादौ । तत्र पूर्वोक्तवचनैः पञ्चमत्वसप्तमत्वनियमादिति मेधातिथिप्रमुखा दाक्षिणात्याः वाग्दानोत्तरमेतदिति शुद्धिविवेकः । मातृकुलविषयं कानीनकन्यकाविषयं चैतत् । अन्यथा-"अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापि-

---

मातासे और पितासे सात कुल छोड़कर विवाह करे। सम्बन्धविवेकमें सुमन्तुने यह कहा है कि, जिसका अर्थ शूलपाणिने ऐसा लिखा है कि, जिसका पिता जीवित हो उसके वृद्धप्रपितामह आदि तीन श्राद्धके देवताके होनेसे पिंडके भोगी होते हैं, उससे ऊपरके तीन नव ९ पुरुषतक लेपभागके भजनेवाले होते हैं, और दशवां श्राद्धका कर्ता, इन दशसे परे धर्मका सातवेंमें धनकी नष्टता और तीसरेमें पिण्डकी नष्टता इससे अन्यथा जो पिण्ड अशौचनाश और क्रियाका विच्छेद करता है वह ब्रह्महत्यारेके समान होता है। दशवेंसे परे सापिण्ड्यकी निवृत्ति होती है यहां दशमतक यह उपलक्षण है, इससे पिता पितामह जीवित हो तो नव पुरुष, पिता जीता हो तो आठ पुरुषतक सापिण्ड्य जानना, अपुत्र धनके ग्रहणमें निकटका न हो तो सात पुरुषतक अधिकार कहा है धनके ग्रहण करनेवालेसे लेकर तीसरा पोता होता है, उससे ऊपर श्राद्धका विच्छेद हो जाता है इससे अन्यथा धनको ग्रहण कर ले और अपुत्रके श्राद्ध आदिको न करे, तो ब्रह्महत्यारा होता है। तीन पर्यन्त ही सपिंड है, यह तो विना विवाही कन्याओंके विषयमें है, कारण कि, वसिष्ठने कहा है कि, विना विवाही कन्याओंका तीन पुरुषतक सापिंड्य माना जाता है । यह सापिंड्य भी अशौचके विषय है, विवाह आदिमें नहीं है, वहां पूर्वोक्त वाक्योंसे पांच और सातत‌कका नियम कहा है, यह मेधातिथि आदि दाक्षिणात्योंका कथन है कि, सगाईके पीछे यह सापिंड्य है यह शुद्धिविवेकका कथन है, माताके कुलके वा कानीनकी कन्याके विषय यह सापिंड्य कहा है, अन्यथा इस कूर्मपुराणके संग विरोध होगा कि, विना विवाही

ण्ड्यं सार्तपौरुषम्। प्रत्तानां भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः प्रजापतिः॥" इति कौर्मेण विरोधः स्यादिति रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थाः। युक्तं चैतत्। अन्यथा कन्योत्पत्तौ पुरुषत्रयपर्यन्तमेव सूतकं स्यात्। नोर्ध्वम्॥ सापत्नमातामहकुले निर्णयः। सापत्नमातामहकुले त्वाह मिताक्षरायां शंखः—"यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथग्जनाः। एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्तते त्रिषु॥" पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयस्त्रीषु जाताः। पृथग्जना सजातीयभिन्नमातृषु जाताः। अत्र त्रिपुरुषं सापिण्ड्यमिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये सापिण्ड्यदीपिकायां चैवम्। मदनपारिजाते तु पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमातृजाः पृथक्जनाः भिन्नजातीयाः। एतद्विजातीयसापत्नमातृकुले चतुःपुरुषं सापिण्ड्यम्। 'पञ्चमीं सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा।' इति वसिष्ठोक्तेः॥ सप्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयं चेत्युक्तम्॥ तत्स्वकपोलकल्पितत्वात् ग्रन्थान्तरविरोधाच्च निर्मूलम्॥ 'पितृपत्न्यः सर्वाः मातरः' इत्युक्त्वा, सुमन्तुना 'तदपत्यानि भागिनेयानि' इति पृथङ्निषेधाच्च। अन्यथा सपिण्डत्वेन निषेधात् सपत्नमातुलत्वादिनिर्देशो व्यर्थः। अत एव तेन स्मृतिकौमुद्यां सवर्णसापत्नमाता-

---

कन्याओंकी सपिंडता सात पुरुषतक होती है और विवाह की हुइयोंकी सपिंडता देव प्रजापतिने भर्ताके संग लिखी है, यह रत्नाकर स्मृतितत्त्वआदि गौडगन्थोंमें कहा है और युक्त भी यही है, नहीं तो कन्याकी उत्पत्तिमें तीन पुरुष पर्यन्त ही सूतक होगा, उससे ऊपर न होगा। सापत्नमातामहके वंशमें तो मिताक्षरामें शंखने यह लिखा है कि, यदि एकसे उत्पन्न हुए पृथक् २ जातिकी माताओंके पुत्र भिन्न २ हों तो वे सपिंड कहाते हैं, पर उनका अशौच भिन्न २ होता है और पिंड तो तीनको ही दिये जाते हैं। इसमें ( पृथक् जनाः ) इसका अर्थ यह है कि, विजातीय माताओंमें उत्पन्न हुए हों। यहां विज्ञानेश्वरने व्याख्यान किया है कि, तीन पुरुषतक सपिंडता रहती है, पृथ्वीचन्द्रोदय और सापिंडयदीपिकामें भी इसी प्रकार कहा है। मदनपारिजातमें तो यह लिखा है कि, पृथक् क्षेत्रका अर्थ पृथक् २ माताओंसे उत्पन्न हुए और ( पृथक् जनाः ) का अर्थ भिन्न २ जातिके हों, यह भी विजातीय सापत्नमाताके कुलमें समझना चाहिये। समान वर्ण सापत्नमाताके कुलमें तो चार पुरुषपर्यन्त सपिंडता होती है; कारण कि, वासिष्ठने यह लिखा है कि, मातासे पांचवीं और पितासे सातवींको विवाह करे और सातवीं यह भी उस कन्याके विषयमें है, जो ब्राह्मण आदिकोंमें क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें उत्पन्न हुई हो और पिताके वंशमें हो, यह सब कपोलकल्पित होनेसे तथा दूसरे ग्रन्थोंके विरोधसे अप्रमाण है; कारण कि, सुमंतुने पिताकी स्त्री सब माता कहकर उनकी पुत्रियोंके पुत्र भानजे कहे हैं, यह पृथक् निषेध किया है, अन्यथा सपिंड होनेसे निषेध हो जायगा, सपत्न मातुल आदिका निषेध व्यर्थ हो जाता, इसी कारणसे उसने स्मृतिकौमुदीमें शंखके वाक्यकी

महकुलपरत्वेन तथैव शंखवचनं व्याख्यातम् ॥ तेन वासिष्ठम्–'पञ्चमीं सप्तमीम-तीत्य' इति व्याख्येयम्। तस्मात् प्राच्येव व्याख्या युक्ता ॥ प्रयोगरत्ने भट्टैः–स्मृतितत्त्वादिगौडग्रन्थेषु च सपत्नमातामहकुले यावदुक्तं वाचनिकमेव साषिण्डच-मुक्तम् । यथाह सुमन्तुः–'मातृपितृसंबद्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति । आपञ्चमादन्येषां पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्व-सारस्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि । अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरेतदेव' इति । आपञ्चमादिति मातृकुले त्रिगोत्रान्तरितवि-षयं वेति प्राच्याः । मात्स्ये–"समानप्रवरा चैव शिष्यसन्ततिरेव च । ब्रह्मदातु-र्गुरोश्चैव सन्ततिः प्रतिषिध्यते ॥" तद्भगिन्यो मातृष्वसार इति तु आकरे न पठितम् । क्वचिद्वचनादविवाहः ॥ यथा गृह्यपरिशिष्टे–' अविरुद्धसंबन्धामुपग-च्छेत' इत्युक्त्वा विरुद्धसम्बन्धः स्वयमेवोक्तः । ' यथा भार्यास्वसुर्दुहिता पितृव्य-पत्नीस्वसा च ' इति ॥ बौधायनः–"मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्ज-येत् । पितृव्यपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ॥" अतो मातृष्वसुः साप-त्नपुत्रकन्याप्यविवाह्या । ' सापत्नमातृकुलजाम् ' इति मदनपारिजातोक्तेरिति केचित् । केचित्तु–'ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ' इति मनूक्तेस्तत्पत्न्या मातृत्वा-

---

व्याख्या सपत्नमातामहके वंशमें लगा ली है, इससे वसिष्ठके कथनका भी अर्थ पांचवीं सात-वींको उलंघकर विवाहे, यह करना चाहिये, इससे प्रयोगरत्नमें भट्टोंने प्राचोंकी व्याख्या ही यथार्थ लिखी है। स्मृतितत्त्वआदि गौडग्रंथोंमें सपत्न मातामहके वंशमें वचनयुक्त शास्त्रसे ही सब सापिंडय लिखा है। ऐसे ही सुमंतुने लिखा है कि, माता पिताके सम्बन्धी सात पुरुषतक और उनके आगे पांच पुरुषतक विवाह करनेके योग्य नहीं होते हैं। पिताकी सब पत्नी माता और उनके भ्राता मातुल और उनकी भगिनी मौसी और उनकी कन्या बहिन और उनके पुत्र भानजे होते हैं, इससे अन्यथा हो तो वर्णसंकरके कर्ता होते हैं और पढ़ानेवालेके वंशमें भी इसी प्रकार है। आपञ्चमात् ( पांचवींतक ) यह माताके कुलमें तीन गोत्रके अन्तरपर जानना, यह प्राच्योंका कथन है। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, एक प्रवरके, शिष्यकी सन्तान, वेद पढानेवाले गुरुकी संतान विवाह विरुद्ध है, उन ( माताओं ) की बहिन मौसी होती है, यह भाष्यमें नहीं लिखा, कहीं वाक्यसे भी विवाह नहीं होता। जैसे गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, जिसके सम्बंधमें विरोध न हो उसे विवाहे, यह कहकर विरुद्ध सम्बन्ध स्वयं ही लिखा है कि, जैसे भार्या की बहिनकी पुत्री, चाचीकी बहिन, बौधायनका कथन है कि, माताकी सौतकी भगिनी और पुत्रीको त्याग दे, चाचीकी बहिन और उसकी पुत्रीको त्याग दे, इससे मौसीके सापत्नपुत्रकी कन्या भी विवाहके अयोग्य है; कारण कि, मदनपारिजातमें भी यह लिखा है कि, सापत्नमाताके वंशमें उत्पन्न हुई को त्याग दे। कोई यह कहते हैं और किन्हींका यह कथन है कि, जेष्ठ भ्राता पितातुल्य होता है, इस मनुके कथनसे

त्पितुर्मातामहत्वात् । ज्येष्ठभ्रातृपत्नी भगिनी न विवाह्या । तथा—'उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ।' इति मनूक्तेर्गुरुणा त्रिपुरुषं सापिण्ड्यं सख्यापि निर्वाप्यः । अतस्तेषां कन्या नोद्वाह्याः—"गायत्र्या उपदेष्टुश्च कन्यां नैवोद्वहेद्द्विजः । गुरोश्च कन्यां शिष्यो वा तत्संतत्यापि नेष्यते ॥ पुरुषत्रयपर्यन्तं भ्रात्रादेर्नैतदिष्यते । वाक्सम्बन्धकृतानां तु स्नेहसम्बन्धभागिनाम् ॥ विवाहोऽत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते ॥ ३ ॥" इति वचनाच्चेत्याहुः । तत्र मूलं चिन्त्यम् । दत्तकस्य सापिण्ड्यनिर्णयः । दत्तकविषये तूच्यते । तत्र गौतमः—'ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो बीजिनश्च मातृबन्धुभ्यः ।' पंचमादिति बन्धुग्रहणान्न दत्तकमात्रपरमिदम् । किन्तु सन्तानेऽपि । एतत् क्षेत्रजादिसर्वद्व्यामुष्यायणपरमिति हरदत्तः । अत्र स्मृतिचन्द्रिका—'नियोगाद्य उत्पादयति तस्माद्बीजिनोऽप्यूर्ध्वं सप्तमादित्यर्थः' इति । दत्तकस्य जनकविषयमेतदिति सापिण्ड्यमीमांसायाम् । तेन दत्तकस्य जनककुले साप्तपौरुषं जननीकुले पञ्चपौरुषं सापिण्ड्यम् । "दत्तक्रीतादिपुत्राणां बीजवप्तुः सपिण्डता । सप्तमी पंचमी चैव गोत्रित्वं पालकस्य च ॥" इति बृहन्मनूक्तेः । 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेश्च । पालकपितृ-

---

उसकी भार्याको माता होनेसे उसके पिताको नाना होनेके कारण ज्येष्ठ भाईकी स्त्रीकी भगिनीसे भी विवाह न करना चाहिये । इसी प्रकार उत्पन्न करनेवाले और वेद पढ़ानेवाले पिताओंमें वेद देनेवाला पिता अत्यन्त उत्तम है, इस मनुके कथनसे गुरुके संग भी तीन पुरुषतक सापिंड्य कहा है, मित्र भी विवाहमें निषिद्ध है। इससे उनकी कन्यासे भी विवाह न करना और यह वाक्य भी है कि, गायत्री उपदेश करनेवालेकी कन्याको द्विज और गुरुकी कन्यासे शिष्य वा शिष्यकी सन्तान विवाह न करे और तीन पुरुषपर्यन्त भ्राताकी कन्याका विवाह भी इष्ट नहीं । जिनके यहां सगाई हो गयी हो अथवा जिनके संग स्नेहसम्बन्ध है, उनके यहां भी लोकनिन्दासे विवाह करना न चाहिये, इन वाक्योंमें प्रमाण नहीं है। दत्तकके विषयमें तो लिखते हैं—उसमें गौतमने लिखा है कि, पिताके और जिसका बीज हो उसके सात बन्धुओंसे आगे और माताके पांच बन्धुओंसे आगे दत्तक विवाह करे, इस कथनमें बन्धुके ग्रहणसे केवल दत्तक विषयमें नहीं किन्तु दत्तककी संतानके विषयमें भी लेख है । और यह हरदत्त लिखते हैं कि,ये क्षेत्रजआदि द्व्यामुष्यायणके विषयमें यह वाक्य है, इसमें स्मृतिचन्द्रिकाका यह कथन है कि, जो नियोगसे उत्पन्न करे उस बीजवालेसे ऊपर भी साततक विवाह न करे । सापिंड्यमीमांसामें यह कहा है कि,दत्तकके पिता जनक विषयमें यह कथन है, इससे दत्तकके जनककुलमें सात पुरुषतक और माताके कुलमें पांच पुरुषतक सापिंड्य है; कारण कि, बृहन्मनुने यह लिखा है कि, दत्तक आदि पुत्रोंमें बीज बोनेवालेकी सपिंडता सात और पांच पुरुषतक होती है और गोत्रमें तो पालन कर-

कुले तु पंचपुरुषम्। तथा चापरार्के पैठीनसिः-'त्रीन्मातृतः पंच पितृतः पुरुषानतीत्योद्वहेत्' इति। एतत्स एव व्याचख्यौ दत्तकादीन् पुत्रान् पितृपक्षतो निवृत्तपिण्डगोत्रार्षेयान् प्रत्येतदुच्यते पंच पितृत इति नान्यान् प्रतीति। यत्तु वृद्धगौतमः-"स्वगोत्रेषु कृता ये स्युर्दत्तक्रीतादयः सुताः। विधिना गोत्रमायान्ति न सापिण्ड्यं विधीयते ॥" यच्च वासिष्ठः-"अन्यशाखोद्भवो दत्तः पुत्रश्चैवोपनायितः। स्वगोत्रेण स्वशाखोक्तविधिना स्यात्स्वशाखभाक् ॥" इति। यच्च नारदः-"धर्मार्थं वर्धिताः पुत्रास्तत्तद्गोत्रेण पुत्रवत्। अंशपिण्डविभागित्वं तेषु केवलमीरितम् ॥" तत्पालककुले सप्तपौरुषं सापिण्ड्यं न इत्येवं परम्, न तु सर्वथा सापिण्ड्यनिषेधपरमिति सापिण्ड्यमीमांसायाम्। मदनपारिजातादपि दत्तकानुप्रवेशेऽल्पं सापिण्ड्यं प्रतिभाति। तथाहि-तेन त्रीनतीत्येत्युदाहृत्य यस्य माता दत्तपुत्री प्रतिग्रहीत्रा पुत्रीकृता तस्याः प्रतिग्रहीतृकुले त्रीनतीत्येति ॥ पंच पितृत इति यस्य दत्तपुत्रः पिता तस्य दत्तस्य यज्जनककुलं तद्विषयमित्युक्तम्। वस्तुतस्तु पूर्ववचसां महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भादपरार्कादिलेखना-

---

नेवालेके होती है और गौतमने भी बीजवालेकी सपिंडता लिखी है। पालक पिताके कुलमें पांच पुरुषतक और पालक माताके वंशमें तीन पुरुषतक दत्तकका सापिंड्य प्राप्त है, सोई अपरार्कमें पैठीनसिने कहा है कि, मातासे तीन और पितासे पांचपुरुषतक दत्तक विवाह करे और यह उसीने अर्थ कहा है कि, उन दत्तक आदि पुत्रोंके प्रति यह वाक्य है कि, पितासे पांच पुरुष लंघकर विवाह करना; अन्योंके प्रति नहीं। जिनकी पिताके पक्षसे पिंड, गोत्र, प्रवरकी निवृत्ति हो गयी है और जो वृद्धगौतमने यह लिखा है कि, अपने गोत्रके जो दत्तक क्रीतपुत्र किये हैं वे विधिसे गोत्रमें प्राप्त हो जाते हैं, उनमें सपिण्डका विधान नहीं है और जो वसिष्ठने यह लिखा है कि, और शाखासे उत्पन्न हुआ दत्तक पुत्र अपने गोत्र और अपनी शाखाकी विधिसे यज्ञोपवीत करनेसे अपनी शाखामें प्राप्त हो जाता है। और जो नारदने कहा है कि, धर्मके अर्थ पाले हुए पुत्र उस उस गोत्रमें पुत्रके तुल्य अंश और केवल पिण्डके भागी ही होते हैं। ये गौतम, वसिष्ठ, नारदके तीनों वाक्य इसके कहनेवाले हैं कि, दत्तकका सापिंड्य पालकके कुलमें सात पुरुषतक नहीं होता किंतु पांचतक होता है, कुछ सर्वथा सापिंड्यका निषेधक नहीं है यह सापिंड्यमीमांसामें लिखा है। मदनपारिजातसे भी दत्तकका अल्प ही सापिण्ड्य विदित होता है, सोई लिखते हैं, मातासे तीन पुरुष लंघकर विवाहे, यह कहकर यह अर्थ लिखा है कि, जिसकी माता दत्तककी पुत्री हो और लेनेवालेने अपनी पुत्री बना ली हो, उसके लेनेवालेके कुलमें तीन पुरुष लंघकर दत्तकको विवाह करना चाहिये और पितासे पांच यह तो उसके विषयमें है जिसका पिता दत्तकका पुत्र हो, उसके पिताके वंशमेंसे पांच पुरुषतक दत्तकको विवाह न करना चाहिये। सिद्धान्त यह है कि, पूर्वोक्त वाक्य बडे बडे

भावात् । पूर्वोक्तव्यवस्थायाश्च भ्रातिभज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतल्लिखितं तेषामेव शोभते । मम तु पालककुले एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपं साप्तपौरुषमेव सापिण्ड्यम् । 'बीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्जनककुलेऽपि तावदेव 'त्रीन् मातृतः' इत्यादि तु सवर्णसापत्नमातृकुलपरम् । 'यद्येकजाता बहवः' इति शाङ्खैकवाक्यत्वादिति युक्तं प्रतिभाति । अत एवास्य द्व्यामुष्यायणत्वं हेमाद्रिप्रवरमञ्जरीवृत्तिकृन्नारायणादिभिरुक्तम् । भट्टसोमेश्वरेणापि 'पृथायाः कुन्तिभोजस्य पालककन्यात्वेऽपि ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबन्धुबीजिनश्च' इति गौतमोक्तेर्दत्रिमायाः पृथायाः जनकस्य शूरसेनस्य कुलेऽपि साप्तपौरुषम् । पालककुलेऽपि तावदेव साापिण्ड्यमुक्तमपि वा कारणाग्रहणे इत्यत्र साापिण्ड्यदीपिकायां तु दत्तक्रीतादीनां जनकगोत्रेणोपनयने कृते जनककुले साप्तपौरुषं साापिण्ड्यम् । पालकमातापितृकुले त्रिपुरुषम् । पिण्डनिर्वापान्निर्वाप्यलक्षणम् । त्रिपुरुषसापिण्ड्यम् । पालकगोत्रेणोपनयने तत्कुले साप्तपौरुषमित्युक्तम् । तन्न । "चूडोपायनसंस्कारा निजगोत्रेण वै कृताः । दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥ " इति कालिकापुराणादुपनयनोत्तरं

---

ग्रन्थोंमें कहीं भी नहीं दीखते और अपरार्क आदिमें नहीं लिखे, इससे पूर्वोक्त व्यवस्था भ्रमसी प्रतीत होती है, इससे जिन्होंने यह वाक्य लिखे हैं उनको ही शोभा देते हैं, हमको तो यह युक्त प्रतीत होता है कि, एक पिंडदान क्रियामें सम्बन्धरूप सापिण्डय बीजवालेके सात पुरुषतक गौतमके वाक्यसे और उतना ही सापिंडय पालनेवाले वंशमें दत्तकको होता है और मातासे तीन पुरुषतक सापिंडय है, इत्यादि वाक्य तो सजातीय सपत्नी माताके विषयमें जानने चाहिये । कारण कि, एकसे उत्पन्न हुए बहुत इस शखक कथनके संग एकवाक्यता है, इसीसे हेमाद्रि प्रवरमंजरीवृत्तिकार नारायण आदिने दत्तकको द्व्यामुष्यायण लिखा है । सोमेश्वरभट्टने भी पृथा ( कुंती ) को भोजपालककी कन्या होनेपर भी पिता और बीजवालेके कुटुम्बियोंमें सात पुरुषतक सापिंडय रहता है, यह लिखा है । इस गौतमके वाक्यसे दत्तक पृथाका सापिंडय उत्पन्न करनेवाले शूरसेनके वंशमें और पालक भोजके कुलमें सात पुरुषतक बराबर सापिंडय (अपि वा कारणाग्रहणे) इस स्थलमें लिखा है । सापिंडयदीपिकामें तो यह लिखा है कि, दत्तक क्रीत आदि पुत्रोंका यदि उत्पन्न करनेवालेके गोत्रसे उपनयन हो जाय तो पिताके कुलमें सात पुरुषतक और पालनेवाले माता पिताके कुलमें तीन पुरुषतक पिंड देने और न देनेरूप सापिंडय होता है । पालकके कुलमें यज्ञोपवीत हो जाय तो उसके भी वंशमें सात पुरुषतक सापिंड्य होता है, सो यथार्थ नहीं । कारण कि, इस कालिकापुराणके वाक्यसे यज्ञोपवीतसे उपरान्त दत्तकपुत्रका निषेध है कि, जिन दत्तकआदि पुत्रोंका मुण्डन उपनयन संस्कार अपने गोत्रसे हुआ हो वे ही दत्तक पुत्र कहाते हैं, अन्यथा दास कहाते हैं । तीन पुरुषतक सापिण्ड्य लगता है इसमें भी प्रमाण नहीं मिलता । इति । बहुत न कहकर बस करते हैं । माता और पिताके द्वारा

दत्तकानिषेधात् । त्रिपुरुषमित्यत्रापि मूलं मृग्यमित्यलं बहुना । मातापितृद्वारकसापिण्ड्यवर्तीनां कन्यानामियं संख्या रामवाजपेयिनोक्ता–" उद्वोढुः पितरौ पितुश्च पितरौ तज्जन्मकृद्दम्पतिद्वंद्वं तस्य चतुष्कमष्ट च ततोऽप्यस्य क्रमात् षोडश । वंशारम्भकदम्पतिप्रमितिरित्यासप्तकक्षं रदा एकैकान्वयकन्यकाः पितृकुले त्वासप्तकक्षं ब्रुवे । यद्यप्येकस्य बहवः सुताः स्युस्तदपीह तु । सम्बन्धसाम्यादेकैकगणितेत्यवधार्यताम् । एकस्मान्मिथुनात्सुतोऽथ दुहिता द्वंद्वद्वयं तद्द्वयात्तस्माद्द्वंद्वचतुष्कमष्ट च ततोऽतः षोडशाऽतो रदाः । यावत्सप्तमकक्षमाग्निऋतवः कन्या इहैकान्वये ता दन्तैर्गुणिता रसैकसदृशो वंशे सपिण्डाः पितुः ॥ मातुर्जन्मददम्पती च मिथुनं द्वंद्वं तयोः सागरास्तस्याः पञ्चमकक्षमष्टमितिरित्येकान्वयः पुंसु ते । द्वन्द्वाद्वन्द्वयुगं भतोऽब्धय इतोऽष्टौ पञ्चकक्षं शरक्षोण्यः सप्तगुणाः शराभविधवो मातुः सपिण्डाः कुले ॥ कुलद्वयस्य कन्यकायुता मिथः सपिण्डकाः । हिमांशुदृग्धरादृशो विवाहकर्मवर्जिताः ॥ ९ ॥" इति । एतच्च सर्ववर्णसाधारणम् । सर्वत्र सापिण्ड्यसद्भावादिति विज्ञानेश्वरोक्तेः । "पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् ।

---

जिन कन्याओंका सापिंडय होता है उनकी गिनती रामवाजपेयीने इस प्रकार लिखी है कि, घरके माता पिता दो और उन दोनोंके जन्मदाता माता पिता चार और उन चारोंके माता पिता आठ और उन आठोंके माता पिता सोलह और उन सोलहके माता पिता बत्तीस ३२ इन बत्तीसोंमें एक एक कुलकी जो कन्या सात पुरुषतक हैं, उनको हम सपिंड लिखते हैं, यही कुलके आरम्भका प्रमाण है। यद्यपि एक एक के बहुत कन्या भी होती हैं तो भी सम्बन्धकी तुल्यतासे एक ही गिनी है, इस प्रकार निश्चय जानना चाहिये और एक ( स्त्रीपुरुषसे ) एक कन्या हुई उस कन्यासे दो कन्या हुईं, उन दोनों कन्याओंसे चार द्वंद्व ( आठ ) हुईं, इसी प्रकार उन ४ चार द्वंद्वोंसे आठ और आठसे सोलह और सोलहसे ३२ बत्तीस हुईं, इस प्रकार सात पीढीतक तिरसठ ६३ कन्या एक कुलमें होती हैं, उनको बत्तीससे गुणा करनेसे २०१६ दो सहस्र सोलह कन्या पिताके कुलमें सपिंड होती हैं, माताके जन्मदाता दंपती (स्त्री पुरुष) दो, और उन दोनोंके माता पिता दो ( मिथुन ४ ) और उन दोनों मिथुनोंके चार मिथुन उस माताकी चार पीढीतक सात मिथुन होंगे, यह पुरुषोंमें एक कुल होता है, और माताके वंशमें सपिंड ये होते हैं पहिले मिथुनसे दो मिथुन, उन दोके माता पिता चार मिथुन, चारके माता पिता आठ, इस प्रकार पांच कक्षातक पन्द्रह १५ होते हैं, उनको सात गुना करो तो १०५ एकसौ पांच होवे हैं, इन दोनोंकी कन्या परस्पर मिलानेसे २१२१ दो सहस्र एकसौ इक्कीस परस्पर सपिंड कहाती है और उनके संग विवाह करना निषिद्ध है । यह सापिण्ड्य सब वर्णोंमें साधारण है, कारण कि, सापिण्ड्य सब स्थानमें हो सकता है, यह विज्ञानेश्वरने लिखा है और हरनाथका लिखा देवलका यह वाक्य भी है कि,

सपिण्डता निवर्तेत सर्ववर्णेष्वयं विधिः " ॥ इति हरनाथधृतदेवलवचनात्त्र । सम्बन्धतत्त्वे सुमन्तुः-'पितृष्वसृसुतां मातृष्वसृसुतां मातुलसुतां मातृसगोत्रां समानार्षेयीं विवाह्य चान्द्रायणं चरेत्परित्यज्यैनां मातृवद्विभृयात् ।' इति दिक् । ऋषेरिदमार्षं प्रवरः । गोत्रं प्रसिद्धम् । समाने. आर्षे गोत्रे यस्य तस्माज्जाता या न भवति ताम् ॥ अथ संक्षेपेण गोत्रप्रवरनिर्णयः । तौ च भिन्नौ निषेधे निमित्तम् । 'सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत् ' इति आपस्तम्बोक्तेः ।' असमानप्रवरैर्विवाहः' इति गौतमोक्तेश्च । तत्र गोत्रलक्षणमाह प्रवरमञ्जर्यां बौधायनः-'विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः । अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः । सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रम्' इति ॥ यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु च हारीतादिषु च नैतत् । भृग्वंगिरसोरुक्तेष्वनन्तर्गतेः । तथाप्यत्रेष्टापत्तिरेवेति केचित् । अत एव स्मृत्यर्थसारे । प्रवरैक्यादेवात्राविवाह उक्तः । यद्यपि वासिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम् । तेषां सप्तर्षित्वेन तदपत्यत्वाभावात् । तथापि तत्पूर्वभाविवसिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम् । अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद्गोत्रम् । अत्र विशेषोऽस्मत्कृतप्रवरदर्पणे ज्ञेयः ।

---

मातासे पांचवें और पितासे सातवेंसे आगे सपिण्डता निवृत्त हो जाती है, यह सब वर्णोंमें विधि लिखी है । सम्बन्धतत्त्वमें सुमन्तुने कहा है कि, फूफी, मौसी, मामा इन तीनोंकी पुत्री माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याके साथ विवाह करलेनेसे चान्द्रायण व्रत करे और पीछेसे माताके तुल्य उनकी पालना करे, यह संक्षेपसे कहा । अब संक्षेपसे गोत्रप्रवरका निर्णय लिखते हैं-ये दोनों भिन्न २ निषेधके कारण हैं अर्थात् गोत्र और प्रवर दोनों ही विवाहमें निषिद्ध हैं, कारण कि, आपस्तम्बने यह लिखा है कि, सगोत्रीको कन्या न देनी चाहिये । और गौतमने यह लिखा है कि, जिसके संग प्रवर एक हो उसके संग विवाह न करना चाहिये । उन दोनोंमें गोत्रका लक्षण प्रवरमञ्जरीमें बौधायनजीने लिखा है कि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, वासिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, गौतम और आठवें अगस्त्य इनकी जो सन्तान उसको गोत्र कथन करते हैं । यद्यपि भार्गव, आर्ष्टिषेण और केवल आंगिरस तथा हारीत आदिकमें यह गोत्रका लक्षण नहीं घट सकता; कारण कि, भृगु और अंगिरा उक्त सातोंमें नहीं आये हैं तो भी कोई इसमें इष्टापत्ति लिखते हैं, अर्थात् वे गोत्र नहीं हैं । इसी कारण स्मृत्यर्थसारमें उनमें एक प्रवरमें ही विवाहका निषेध कहा है । यद्यपि वसिष्ठादिका गोत्र युक्त नहीं; कारण कि, वे सप्तऋषि हैं ऋषियोंके सन्तान नहीं हैं, तो भी उनके सप्तर्षि होनेसे प्रथम जो सन्तान उससे गोत्र मानना युक्त है । इस कारणसे पिछले और प्रथमवालेको गोत्र कहते हैं । इसकी विशेषता मेरे बनाये प्रवरदर्पणमें जाननी चाहिये । प्रवर तो उनको लिखते हैं कि, भले प्रकार

प्रवरास्तु प्रवरणानि प्रवराः। कल्पकारा हि वासिष्ठेति होता वसिष्ठवदित्यध्वर्युरित्यादिना येषां प्रवरणमामनन्ति ते प्रवराः। तच्च वरणं यद्यपि क्वचिद्दृश्यते। तथापि पूर्ववदृषिभेदो द्रष्टव्यः। अन्यथा तेषां त्र्यार्षेये एकार्षे इत्यादिनिर्देशानुपपत्तेः। अन्ये तु तद्गोत्राणां त्र्यार्षेय इति भेदमाहुरिति दिक्। तत्त्वं तु गोत्रभूतस्य पितृपितामहप्रपितामहा एव प्रवराः। 'पितैवाग्रेऽथ पुत्रोऽथ पौत्रः' इति शतपथश्रुतेः। 'परं परं प्रथमम्' इत्याश्वलायनोक्तेश्च। अत्र विशेषमाह बौधायनः-"एक एव ऋषिर्यावत् प्रवरेष्वनुवर्तते। तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वंगिरसां गणात्॥" इति। स्मृत्यर्थसारे-"प्रीयमाणा तया वापि सत्तया वानुवर्तनम्।। एकस्य दृश्यते यत्र तद्गोत्रं तस्य कथ्यते॥" भृग्वंगिरोगणेषु तु माधवीये स्मृत्यन्तरे-"पञ्चार्षे त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः। भृग्वंगिरोगणेष्वेव शेषेष्वेकोऽपि वारयेत्॥" शेषगोत्रेषु एकोऽपि समानः प्रवरो विवाहं वारयेदित्यर्थः। बौधायनोऽपि-'भृग्वङ्गिरसावधिकृत्यद्व्यर्षेयसन्निपाते विवाहात्र्यार्षेयसन्निपाते विवाहः पञ्चार्षेयाणाम्' इति। भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वासगोत्रत्वादेवाविवाह इति दिक्। गोत्रप्रवर-

---

यज्ञमें वरणको प्रवर कहते हैं; कारण कि, कल्पकार होता अध्वर्युके नामसे जिनका वरण किया जाय उनको ही प्रवर कहते हैं। वह वरण यद्यपि कहीं गोत्रका भी होता है, तो भी पूर्वके तुल्य ऋषिका भेद जानना,अन्यथा उनमें किसीके तीन प्रवर और किसीका एक प्रवर यह निर्देश न होगा। और तो यह कहते हैं-कि, उन गोत्रोंके ही तीन आदि भेदको प्रवर लिखते हैं, सिद्धान्त तो यह है कि, गोत्र रूपके पिता, पितामह, प्रपितामह तीन प्रवर होते हैं। कारण कि, शतपथ श्रुतिमें कहा है कि, प्रथम पिता, दूसरा पुत्र, तीसरा पौत्र ये तीन प्रवर होते हैं। आश्वलायनने भी लिखा है कि, परला २ प्रथम होता है। इससे विशेष बौधायनने लिखा है कि, प्रवरोंमें जहांतक एक ऋषिका नाम हो वहांतक भृगु अंगिराको त्यागकर एक गोत्र होता है। स्मृत्यर्थसारमें कहा है कि, वरण करनेसे वा नामसे जहां एक एकका नाम चला जाय उसे वहां एक गोत्र कहते हैं। भृगु और अंगिराओंके गणोंमें तो माधवीय और स्मृत्यन्तरमें यह कहा है कि, पांच प्रवरवालोंकी तीनमें और तीन प्रवरवालोंकी दोमें एकता प्राप्त हो जाय तो विवाह नहीं होता, यह बात भृगु और अंगिराओंमें है, और तो एक भी प्रवर विवाहको निषेध कर देता है। बौधायनने भी कहा ह कि, भृगु और अंगिरा गोत्रियोंमें दो प्रवरवालोंके और दो प्रवर और तीन प्रवरवालोंके तीन प्रवर मिल जाँय तो विवाह नहीं होता, यह बात पञ्चार्षेये (पांच प्रवरवाले) में है। भृगु और अंगिराओंके समूहमें है और शेषगोत्रोंसे एक भी प्रवर विवाहको निषेध करता है। भृगु और अंगिराओंमें भी जमदग्नि, गौतम, भरद्वाज एक प्रवरके मिलनेमें और प्रवर नहीं भी मिले, केवल गोत्रके ही मिलनेमें विवाह नहीं होता, यह संक्षेप है।

संख्यानिर्णयः। अथ गोत्राणि प्रवराश्चोच्यन्ते। तत्र बौधायनः-"गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। ऊनपञ्चाशदेवैषां प्रवरा ऋषिदर्शनात् ॥" तत्र सप्त भृगवः। वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनका इति। वत्सानां भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति । भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । भार्गवच्यावनाप्नवानेति वा। गोत्रप्रवरनिर्णयः। विदानां-पञ्च, भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वबैदेति। भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा । एतौ द्वौ जामदग्न्यसंज्ञौ । आर्ष्टिषेणानां-भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति । भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति वा। एषां त्रयाणां परस्परमविवाहः। वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति । वत्सपुरोधसयोः पञ्च । भार्गवच्यावनाप्नवानवात्सपौरोधसेति ।·बैजवानिमथितयोः पञ्च, भार्गवच्यावनाप्नवानबैजवनिमथिनेति । एते त्रयः क्वचित्। एषामपि पूर्वैरविवाहः। अत्र तत्तद्गणस्था ऋषयोऽन्यश्च विशेषो मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयः । यस्कानां-भार्गववैतहव्यसावेतसेति। मित्रयुवानां-भार्गववाध्यश्वदिवोदासेति । भार्गवच्यावनदिवोदासेति वा। वाध्यश्वेत्येको वा। वैन्यानां भार्गववैन्यपार्थेति । एत एव श्वेताः। शुनकानां शुनकेति वा। गार्त्समदेति द्वौ वा । भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति। त्रयो वा। वेदाविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति । शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति । एतौ द्वौ क्वचित्। यस्कादीनां स्वगणं त्यक्त्वा सर्वैर्विवाहः । तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे-'यस्का मित्रयुवा वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः। स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः

---

अब गोत्र और प्रवरोंको लिखते हैं-उसमें बौधायनने यह लिखा है कि, गोत्र सहस्र दशसहस्र वा अर्बुद हैं और उनके प्रवर ऊनपञ्चाशत् ( उनंच्यास ) हैं। कारण कि, इतने ही ऋषि दीखते हैं, उनमें ये सात भृगु हैं-वत्स, विद, आर्ष्टिषेण, यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक। वत्सोंके भार्गव; च्यावन, आप्रवान, और्व, जामदग्न्य वा भार्गव, और्व, जामदग्न्य वा भार्गव च्यावन, आप्रवान हैं। बिदोंके भार्गव, च्यावन, आप्रवान, और्व, बैद ये पांच प्रवर हैं, वा भार्गव, और्व, जामदग्न्य ये दो जामदग्न्य कहाते हैं, आर्ष्टिषेणोंके भार्गव, च्यावन, आप्रवान, आर्ष्टिषेण, अनूप वा भार्गव, आर्ष्टिषेण, अनूप हैं। इन तीनोंका परस्पर विवाह नहीं होता। वत्सोंके भार्गव, च्यावन, आप्रवान प्रवर हैं, वत्स और पुरोधा इन दोनोंके भार्गव, च्यावन, आप्रवान, वात्स, पौरोधस पांच हैं, और कहीं बैजवनि, मथितके ये पांच लिखे हैं, इनका भी प्रथमोंके संग विवाह नहीं होता। यहां इस इस गणके ऋषि और दूसरे विशेष मेरे निर्मित प्रवरदर्पणमें देख लेने। यस्कोंके भार्गव, वैतहव्य, सावेतस हैं, मित्रयुवोंके भार्गव वा वाध्यश्व, दिवोदास वा भार्गवच्यावन दिवोदास हैं वा वाध्यश्व एक ही प्रवर है, वैन्योंके भार्गव, वैन्य, पार्थ हैं इनको ही श्वेत भी कहते हैं, शुनकोंका शुनक वा गार्त्समद ये दो, वा भार्गव शौनहोत्र गार्त्समद ये तीन प्रवर हैं। वेदविश्व ज्योतिषियोंके भार्गव वेदविश्व ज्योतिष प्रवर हैं। शाठर माठरोंके भार्गव शाठर,माठर, ये दोही लिखे हैं। यस्क आदिकोंका अपने गणको त्यागकर सब संगके विवाह होता है, यही स्मृत्यर्थसारमें लिखा है

-परावरैः ॥" इति । आङ्गिरोगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथांगिरसः । ते गौतमा भरद्वाजाः केवलांगिरसश्चेति त्रिधा । अत्र गौतमा दश । आयास्याः । शरद्वताः । कौमण्डाः । दीर्घतमसः । औशनसः । कारेणुपालेयः । राहूगणाः । सोमराजकाः । वामदेवाः । बृहदुक्थाश्चेति । तत्रायास्यानाम्—आंगिरसायास्यगौतमेति । शरद्वतानाम्—आंगिरसगौतमशारद्वतेति । कौमण्डानाम्—आंगिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमाण्डेति वा । आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा । आंगिरसौतथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति वा । आंगिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रयो वा । दीर्घतमसाम्—आंगिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति । आंगिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा । औशनसाम्—आंगिरसगौतमौशनसेति त्रयः । कारेणुपालेयानाम्—आंगिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः । राहूगणानाम्—आंगिरसराहूगणगौतमेति । सोमराजकानाम्—आंगिरससोमराजकगौतमेति । वामदेवानाम्—आंगिरसवामदेव्यगौतमेति । बृहदुक्थानाम्—आंगिरसबार्हदुक्थगौतमेति । आंगिरसवामदेवबार्हदुक्थेति वा । उतथ्यानाम्—आंगिरसौतथ्यगौतमेति । औशिजानाम्—आंगिरसौशिजकाक्षीवतेत्यापस्तम्बः । आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति कात्यायनः । एतौ द्वौ क्वचित् । रघुवानाम्—आंगिरसराघुवगौतमेति केचित् । तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ एषां सर्वेषां गौतमानामविवाहः ॥ भरद्वाजगोत्रप्रवरनिर्णयः ।

---

कि, यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक ये एक प्रवर होनेसे अपने अपने गणको त्यागकर और प्रवरोंमें विवाह करे । अब आंगिरसोंके गोत्र प्रवर कहते हैं—वे गौतम, भरद्वाज, केवलांगिरस तीन हैं । उनमें गौतम दश हैं कि, आयास्य, शरद्वत, कौमण्ड, दीर्घतमस्, औशनस्, करेणुपालेय, राहुगण, सोमराजक, वामदेव, बृहदुक्थ । इन दशोंमें आयास्योंके आंगिरस, आयास्य, गौतम तीन प्रवर हैं, शरद्वतोंके आङ्गिरस, गौतम, शारद्वत तीन प्रवर हैं । कौमण्डोंके आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, कौमाण्ड ये पाँच प्रवर हैं, वा आंगिरस, आयास्य, औशिज्य, गौतम, काक्षीवत, अथवा आङ्गिरस, औतथ्य, गौतम, औशिज, काक्षीवत ये पांच प्रवर हैं, वा आंगिरस, औशिज, काक्षीवत ये तीन प्रवर हैं । दीर्घतमसोंके आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, दैर्घतमस, ये पांच हैं वा आंगिरस, औतथ्य, दैर्घतमस ये तीन प्रवर हैं । औशनसोंके आंगिरस, गौतम, औशनस ये तीन प्रवर हैं । कारेणुपालोंके आंगिरस, गौतम, कारेणुपाल तीन प्रवर हैं । राहूगणोंके आंगिरस, राहूगण, गौतम तीन प्रवर हैं । सोमराजकोंके आंगिरस, सोमराजक, गौतम, ये तीन प्रवर हैं । वामदेवोंके आंगिरस, वामदेव्य, गौतम, ये तीन प्रवर हैं । बृहदुक्थोंके आंगिरस, बार्हदुक्थ, गौतम, वा आंगिरस, वामदेव, बार्हदुक्थ प्रवर हैं, उतथ्योंके आंगिरस, औतथ्य, गौतम ये तीन प्रवर हैं । औशिजोंको आंगिरस, औशिज, काक्षीवत ये तीन प्रवर हैं । आपस्तम्बने और आंगिरस, आयास्य, औशिज, गौतम; काक्षीवत ये पांच कात्यायनने लिखे हैं, ये दो गोत्र कहीं कहीं लिखे हैं । रघुवोंके आंगिरस, राघुव, गौतम ये तीन प्रवर हैं; यह किन्हींका कथन है, उसमें प्रमाण नहीं है । इन सब गौतमोंका परस्पर विवाह नहीं होता । अब भरद्वाजोंके गोत्र

अथ भरद्वाजाः । ते चत्वारः । भरद्वाजा गर्गा ऋक्षाः कपय इति । भरद्वाजानाम्-आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः । गर्गाणामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजसैन्यगार्ग्येति पञ्च । आङ्गिरससैन्यगार्ग्येति वा अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । भारद्वाजगार्ग्यसैन्येति वा । गर्गभेदानाम्-आङ्गिरसतैत्तिरकापिभुवेति । ऋक्षाणां कपिलानां चाङ्गिरसबार्हस्पत्यभरद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च । आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा । कपिलानाम्-आङ्गिरसामहीयवोरुक्षयसेति । आत्मभुवाम्-आङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमन्त्रवरात्मभुवेति पञ्च । अयं क्वचित् । भरद्वाजानां सर्वेषामविवाहः । केवलाङ्गिरोगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ केवलाङ्गिरसः । हारीतानाम्-आङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वेति । आद्यो मान्धाता वा । कुत्सानाम्-आंगिरसमान्धातृकौत्सेति । कण्वानामाङ्गिरसाजमीढकाण्वेति । आङ्गिरसघोरकाण्वेति वा । रथीतराणामाङ्गिरसवैरूपराथीतरेति । आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा । अष्टादंष्ट्रपार्षदश्ववैरूपेति वा । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । मुद्गलानामाङ्गिरसभार्म्याश्वमौद्गल्येति । आद्यस्तार्क्ष्यो वा । आङ्गिरसतार्क्ष्यमौद्गल्येति वा । विष्णुवृद्धानामाङ्गिरसपौरुकुत्सत्रासदस्यवेति । एषां स्वगणं विहाय सर्वैर्विवाहो भवति । हारीतकुत्सयोस्तु न भवति । अत्रिगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथात्रयः । ते चत्वारः । आत्रेयाः । वाद्भुतकाः । गविष्ठिराः । मुद्गला इति । आद्यानामात्रे-

---

प्रवर कहते हैं। वे चार हैं भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष, कपय। भरद्वाजोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भरद्वाज ये तीन प्रवर हैं। गर्गोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, सैन्य, गार्ग्य ये पांच हैं, वा आंगिरस सैन्य गार्ग्य हैं, वा पिछले दोनोंके व्यत्ययसे आंगिरस गार्ग्य सैन्य हैं। गर्गोंके दूसरे जो भेद हैं उनके आंगिरस, तैत्तिर, कापिभुव प्रवर हैं। ऋक्षोंके और कपिलोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भरद्वाज, वांदन, मातवचस, ये पांच प्रवर हैं, वा आंगिरस, वान्दन, मातवचस ये तीन हैं। कपिलोंके आंगिरस, महीयव, ऋक्षयस, ये तीन प्रवर हैं। आत्मभुवोंके आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य, मन्त्रवर, आत्मभुव ये पांच प्रवर है, ये गोत्र क्वचित् हैं, इन सब भरद्वाजोंका परस्पर विवाह नहीं होता। अब केवल आंगिरसोंके गोत्र और प्रवर कथन करते हैं-हारीतोंके अंगिरस, अम्बरीष यौनवाश्व प्रवर हैं अथवा इनमें प्रथम मांधाता है। कुत्सोंके आंगिरस मांधाता, कौत्स हैं। कण्वोंके, आंगिरस, आजमीढ, काण्व हैं वा आंगिरस, घोर, काण्व कहे हैं। रथीतरोंके आंगिरस, वैरूप, रथीतर हैं, वा आंगिरस, वैरूप, पार्षदश्व हैं, वा अष्टादंष्ट्र पार्षदश्व, वैरूप हैं। अन्त्य दोनोंके व्यत्ययसे अष्टादंष्ट्र, वैरूप, पार्षदश्व हैं। मुद्गलोंके अङ्गिरस, भार्म्याश्व, मौद्गल्य ये तीन प्रवर हैं, अथवा पहिले तार्क्ष्यको लेनेसे तार्क्ष्य, भार्म्याश्व, मौद्गल्य ये तीन हैं, अथवा आङ्गिरस, तार्क्ष्य, मौद्गल्य प्रवर हैं। विष्णुवृद्धोंके आंगिरस, पौरुकुत्स, त्रासदस्यव, इन सबका अपने २ गणको त्यागकर सबके संग विवाह होता है, हारीत कुत्सोंका प्रवर है ही नहीं। अब आत्रेयोंके गोत्र और प्रवर लिखते हैं-वे चार हैं, आत्रेय, वाद्भुतक, गविष्ठिर, मुद्गल, प्रथमोंके आत्रेय

यार्चनानसश्यावाश्वेति । वाद्भुतकानाम्—आत्रेयार्चनानशवाद्भुतकेति । धनञ्जयानाम्—आत्रेयार्चनानशधानञ्जयेति क्वचित् । गविष्ठिराणामात्रेयार्चनानशगविष्ठिरेति । आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा ॥ मुद्गलानामात्रेयार्चनानशपौर्वातिथेति । वामरथ्यसुमङ्गलबैजवापानामात्रेयार्चनानशातिथेति । आत्रेयार्चनानशगाविष्ठिरेति वा ॥ सुमङ्गलानाम्—अत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति केचित् । अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाम्—आत्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति । अत्रीणां सर्वेषामविवाहः ॥ विश्वामित्रगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ विश्वामित्राः ते दश । कुशिकाः । लोहिताः । रौक्षकाः । कामकायनाः । अजाः । अघमर्षणाः । पूरणाः । इन्द्रकौशिकाः । धनंजयाः । क्षीकता इति । कुशिकानां—विश्वामित्रदेवरातौदलेति । लोहितानां—विश्वामित्राष्टकलौहितेति । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा । विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा । रौक्षकाणां—वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति । वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा । कामकायनानां—वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति । अजानां—वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति । वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति वा । अघमर्षणानां—वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति । पूरणानां—वैश्वामित्रपौरणेति द्वौ । वैश्वामित्रदेवरातपूरणेति वा । इन्द्रकौशिकानां—वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ । धनञ्जयानां—विश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानंजयेति । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा । क्षीकतानां-वैश्वामित्रका-

---

आर्चनानस श्यावाश्व प्रवर हैं, वाद्भुतकोंके आत्रेय आर्चनानश वाद्भुतक हैं, धनंजयोंके आत्रेय आर्चनानश, धानंजय हैं ये भी गोत्र कहीं हैं। गविष्ठिरोंके आत्रेय, आर्चनानश, गविष्ठिर हैं, वा आत्रेय गविष्ठिर पौर्वातिथ हैं। मुद्गलोंके आत्रेय आर्चनानश पौर्वातिथ हैं, वामरथ्य और सुमंगल और वैजवापोंके आत्रेय, आर्चनानश' आतिथ हैं वा आत्रेय, आर्चनानश गाविष्ठिर हैं। सुमंगलोंके अत्रि, सुमंगल, श्यावाश्व हैं, यह कोई कथन करते हैं। अत्रिकी पुत्री और पुत्रोंके आत्रेय, वामरथ्य पौत्रिक प्रवर हैं। इन सब अत्रियोंका विवाह परस्पर नहीं होता। अब विश्वामित्रोंके गोत्र और प्रवर लिखते है—वे दश हैं कि, कुशिक लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, अघमर्षण, पूरण, इन्द्रकौशिक, धनञ्जय, क्षकित। कुशिकोंके विश्वामित्र, देवरात, औदल प्रवर हैं। लोहितोंके विश्वामित्र, अष्टक लौहित है वा अन्त्यके दो प्रवरोंके व्यत्ययसे हैं, वा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अष्टक हैं, वा विश्वामित्र, अष्टक दो प्रवर हैं, रौक्षकोंके विश्वामित्र, गाविथिन रैवण हैं वा वैश्वामित्र रौक्षक रैवण हैं, कामकायनोंके वैश्वामित्र, देवश्रवस, दैवतरस हैं, अजोंके विश्वामित्र, मधुच्छन्दस, अज हैं, वा वैश्वामित्र, वामरथ अश्मरथ वाधूल हैं, अघमर्षणोंके वैश्वामित्र अघमर्षण कौशिक हैं, पूरणोंके वैश्वामित्र, पौरण ये दो हैं वा वैश्वामित्र, देवरात, पूरण ये तीन हैं, इन्द्रकौशिकोंके वैश्वामित्र, इन्द्रकौशिक ये दो हैं, धनंजयोंके विश्वामित्र, माधुच्छन्दस, धानंजय हैं वा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अघमर्षण हैं क्षीकतोंके वैश्वा-

त्यकीलेति। एते बौधायनोक्ताः । रोहिणानाम्-वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति। रेणूनां-वैश्वामित्रगाथिनरैणवेति । वेणूनां-वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति । जह्नूनां-वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति । आश्मरथ्यानां-वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति। उद्वेणूनां-वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति । एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः । अन्यैस्त्वन्येऽपि षड्गणा उक्ताः। तेऽन्यत्र मत्कृतौ ज्ञेयाः। एषां विश्वामित्राणामविवाहः। काश्यपगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ काश्यपाः ते पञ्च । निध्रुवाः। कश्यपाः। रेभाः । शाण्डिलाः। लौगाक्षयश्च। निध्रुवाणां-काश्यपावत्सारनैध्रुवेति । कश्यपानां-काश्यपावत्सारासितेति । रेभाणां-काश्यपावत्साररैभ्येति ॥ शाण्डिलानां-काश्यपशाण्डिल्येति । अन्त्यस्थाने देवलो वा, सितो वा, शाण्डिलासितदेवलेति वा, कश्यपासितदेवलेति वा, अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा, देवलासितेति द्वौ वा। लौगाक्षीन् वक्ष्यामः एषां काश्यपानामविवाहः । वसिष्ठगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथ वसिष्ठा ते पञ्च । वसिष्ठाः। कुण्डिनाः । उपमन्यवः । पराशराः। जातूकर्ण्याश्चेति ॥ वसिष्ठानां-वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति । वासिष्ठेत्येको वा। कुण्डिनानां-वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति । उपमन्यूनां-वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वसव्येति। वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा । आद्ययोर्व्यत्ययो वा । पराशराणां-वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति । जातूकर्ण्यानां-वासिष्ठात्रिजातूकर्ण्येति ॥ वासिष्ठानां सर्वेषाम-

---

मित्र, कात्यकील हैं, यह बौधायनने लिखे हैं। रोहिणोंके वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, रौहिण हैं। वेणुओंके वैश्वामित्र, गाथिन, वैणव हैं। जह्नुओंके वैश्वामित्र, शालंकायन, कौशिक हैं। आश्मरथ्योंके वैश्वामित्र, अश्मरथ, वाधूल हैं। उद्वेणुओंके वैश्वामित्र, गाथिन, वैणव हैं, ये आश्वलायन सूत्र और मत्स्यपुराणमें लिखे हैं, औरोंने तो और भी छः गण लिखे हैं, वे मेरे बनाये दूसरे ग्रंथोंमें जानने, इन विश्वामित्रोंका परस्पर विवाह नहीं है। अब कश्यपोंके गोत्र और प्रवर कहते हैं-वे पांच हैं, निध्रुव, कश्यप, शांडिल, रभ, लौगाक्षि। निध्रुवोंके कश्यप, अवत्सार नैध्रुव हैं, कश्यपोंके काश्यप, अवत्सार, आसित हैं, रेभोंके काश्यप, अवत्सार, रैभ हैं, शांडिलोंके काश्यप अवत्सार शांडिल्य हैं, वा अन्तके स्थानमें देवल आसित हैं वा शांडिल्य असित देवल हैं, वा काश्यप असित देवल हैं, वा अन्त्यके दोका व्यत्यय वा देवल असित दो हैं। लौगाक्षियोंको लिखेंगे। इन कश्यपोंका परस्पर विवाह नहीं होता। अब वसिष्ठोंके गोत्र प्रवर लिखते हैं। वे पांच हैं-वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु, पराशर, जातूकर्ण्य। वसिष्ठोंके वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, आभरद्वसु हैं वा वसिष्ट एक प्रवर है। कुण्डिनोंके वासिष्ठ, मैत्रावरुण, कौडिन्य हैं, उपमन्युओंके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद, आभरद्वसव्य है वा वसिष्ठ, आभरद्वसु इन्द्रप्रमद हैं वा पहिले दोका व्यत्यय है। पराशरोंके वासिष्ठ, शाक्य, पाराशर्य हैं। जातूकर्ण्योंके वासिष्ठ, अत्रि, जातूकर्ण हैं। सम्पूर्ण वसिष्ठोंका परस्पर विवाह नहीं होता और पिछले कहे हुए अत्रियोंके संग भी विवाह नहीं होता। अब अगस्त्योंके गोत्र और प्रवर लिखते

विवाहः । अन्त्यस्यात्रिभिश्च ॥ अगस्त्यगोत्रप्रवरनिर्णयः । अथागस्त्याः ते चत्वारः ॥ इध्मवाहाः । सोमवाहाः । साम्भवाहाः । यज्ञवाहाश्चेति ॥ आद्यानाम्-आगस्त्यदाढर्च्यच्युतेध्मवाहेति आगस्त्येत्येको वा ॥ सोमवाहानाम्-आगस्त्यदाढर्च्यच्युतसोमवाहेति ॥ साम्भवाहानां-साम्भवाहोऽन्त्यः । यज्ञवाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः ॥ आद्यौ पूर्वोक्तावेव ॥ सारवाहानां तदन्तास्त्रयः ॥ दर्भवाहानां-तदन्तास्त्रयः । अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति ॥ पूर्णमासानाम्-आगस्त्यपौर्णमासपारणेति ॥ हिमोदकानाम्-आगस्त्यहैमचर्चिहैमोदकेति ॥ पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति । एते षट् क्वचित् । आगस्त्यानां सर्वेषामविवाहः ॥ अथ द्विगोत्राः । शौङ्गशैशिरीणाम्-आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याक्षीलेति पञ्च । कात्याक्षीलयोः स्थाने शौङ्गशैशिरी वा । आङ्गिरसकात्याक्षीलेति त्रयो वा एषां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः ॥ एवं कपिलानां क्षीकतानां च संकृतिपूतिमाषादीनाम्-आङ्गिरसगौरिवीतसांकृत्येति । शाक्त्यगौरिवीतसाङ्कृत्येति वा ॥ एषां स्वगणस्थैर्वसिष्ठैः शौङ्गशैशिरैर्लौगाक्षिभिश्चाविवाहः ॥ काश्यपैरपीति प्रयोगपारिजाते ॥ लौगाक्षीणां-काश्यपावत्सारवासिष्ठेति । काश्यपावत्सारासितेति वा । एतेऽह्नर्वसिष्ठाः नक्तं कश्यपाः । एषां वसिष्ठैः कश्यपैः संकृताद्यैश्चाविवाहः ॥

---

है, वे चार हैं-इध्मवाह, सोमवाह, साम्भवाह, यज्ञवाह । इध्मवाहोंके आगस्त्य, दाढर्च्यच्युत, इध्मवाह हैं, वा एक अगस्त्य है; सोमवाहोंके आगस्त्य, दाढर्च्यच्युत, सोमवाह हैं । साम्भवाहोंका सांभवाह, पिछला है, यज्ञवाहोंका यज्ञवाह पिछला है, और पहिले दो पूर्वोक्त हैं, सारवाहोंके सारवाहांत तीन और दर्भवाहोंके दर्भवाहांत तीन हैं । अगस्त्योंके आगस्त्य, माहेन्द्र, मायोभुव हैं, पूर्णमासोंके आगस्त्य, पौर्णमास, पारण हैं, हिमोदकोंके आगस्त्य, हैमचर्चि हैमोदक हैं, पाणिकोंके आगस्त्य, पैनायक, पाणिक हैं, ये छः भी कहीं लिखे हैं, इन सब अगस्त्योंका परस्पर विवाह नहीं होता । अब दो गोत्रवालोंको लिखते हैं-शौंग शिशिरोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, कात्य, आक्षील ये पांच हैं, वा कात्याक्षीलोंके स्थानमें शौंग शैशिरि हैं वा आंगिरस, कात्य, आक्षील ये तीन हैं, इनका भरद्वाज और विश्वामित्रोंका परस्पर विवाह नहीं होता । इसी प्रकार कपिल और क्षीकतोंका परस्पर विवाह नहीं होता और संकृति पूतिमाष आदिकोंके आंगिरस, गौरिवीत, सांकृत्य हैं, वा शाक्त्य, गौरिवीत, सांकृत्य हैं, इन सबका अपने गणोंमें और वसिष्ठ शौंग शिशिरोंके संग और लौगाक्षियोंके संग विवाह नहीं होता । प्रयोगपारिजातमें काश्यपोंके संग भी नहीं होता, यह कहा है । लौगाक्षियोंके काश्यप, आवत्सार, वासिष्ठ हैं, वा काश्यप, आवत्सार, असित हैं ये दिनमें वसिष्ठ और रात्रिमें काश्यप हैं, इनका विवाह वसिष्ठ, कश्यप, संकृतिआदिकोंके

देवरातस्य जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाह इति प्रयोगपारिजाते । तदयुक्तम् । बह्वृचश्रुतौ-"यथैवांगिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् । आंगिरसो जन्मनास्याजीगर्तिः श्रुतः कविः" इत्यंगिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदग्न्यत्वस्मृतेर्बाधात् । तेन प्रत्यक्षश्रुत्या हरिवंशादिस्मृतेश्च बाधात् । तेन द्वौ देवरातौ । एक आङ्गिरसः श्रुत्युक्तः। अन्यो भार्गवः । तयोः कल्पभेदेऽप्यांगिरसेन देवरातेन जामदग्न्यैर्भवत्येव विवाहः । भार्गवेण तु नेति तत्त्वम् । धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः । जातूकर्ण्यानां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः । एवं दत्तक्रीतकृत्रिमस्वयंदत्तपुत्रिकापुत्रादीनाम्-उत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरा वर्ज्या इति प्रवरमञ्जरीनारायणवृत्तिप्रयोगपारिजाताद्यः अत्र सर्वत्रोपपत्तयः, मूलं च मत्कृते प्रवरदर्पणे ज्ञेयमिति दिक् । क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धान्तः । यद्यपि बह्वृचपरिशिष्टे कपिभारद्वाजयोर्विवाह उक्तः । तथापि-"भरद्वाजाश्च कपयो गर्गा रौक्षांयणा इति । चत्वारोऽपि भरद्वाजगोत्रैक्यान्नान्वयुर्मिथः ॥ कपिगर्गभरद्वाजा मिथो रौक्षायणा द्विजाः । नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्प्रवरैक्याच्च कुत्रचित्" ॥२॥ इति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति प्रवरमञ्जर्यां यद्यपीदमुक्तं तथापि भृग्वंगिरोगणेषु भवत्येव । तथा बह्वृचपरिशिष्टे बौधायनः-" एक एव ऋषिर्याव-

---

संग नहीं होता । प्रयोगपारिजातमें यह कहा है कि, देवरातका जामदग्न्य और वैश्वामित्रोंके संग विवाह नहीं होता सो उचित नहीं; कारण कि, जैसे आंगिरस भी मैं तेरा पुत्र हूंगा, जन्मसे आंगिरस अजीगर्त श्रुतिके बलसे कविनामसे अंगिराओंके गणमें लिखे हैं, इससे भार्गव और जामदग्न्य है, इस स्मृतिका बाध है, उससे प्रत्यक्ष श्रुतिसे हरिवंश आदि स्मृतिका भी बाध है, इससे दो देवरात हैं । एक श्रुतिमें लिखा हुआ आंगिरस देवरात और दूसरा भार्गव, कल्पभेदसे भी अंगिरस देवरातके संग जमदग्नि देवरातका विवाह हो ही सकता है, भार्गवके संग नहीं होता, यही सिद्धान्त है । धनंजयोंका विवाह विश्वामित्र और अत्रियोंके संग नहीं होता । जातूकर्ण्योंका वसिष्ठ और अत्रियोंके संग विवाह नहीं होता । इसी प्रकार दत्तकको क्रीत, कृत्रिम, स्वयंदत्त, पुत्रिकापुत्र आदिकोंके उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले मातापिताके गोत्रोंमें और प्रवरोंमें विवाह करनेका निषेध है । यह प्रवरमंजरी, नारायणवृत्ति, प्रयोगपारिजात आदि लिखते हैं, इन सबकी उपपत्ति और मूल मेरे निर्मित किये प्रवरदर्पणमें देख लेने, यह संक्षेपसे कहा है । क्षत्रिय और वैश्योंके तो गोत्र प्रवर पुरोहितोंके होते हैं यह सबहीका सिद्धान्त है । यद्यपि बह्वृच परिशिष्टमें कपि और भरद्वाजोंका परस्पर विवाह लिखा है तथापि इस स्मृत्यर्थसार आदिके कथनसे विवाह नहीं होता और कपि गर्ग रौक्षायण इन चारोंको भरद्वाज गोत्रके संग एक होनेसे इनका परस्पर विवाह नहीं होता और कपि, गर्ग, भरद्वाज, रौक्षायण द्विज ये विवाह कहीं भी प्रवर और गोत्रके एकसे परस्पर विवाह न करें । यद्यपि यह प्रवरमंजरीमें लिखा है तथापि भृगु और

ह्मवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥" माधवीये स्मृत्यन्तरे-"पञ्चानां तु त्रिसामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः । भृग्वंगिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत् ॥" इति देशाचाराच्च । सोऽप्याभीरदेशे प्रसिद्धः । चतुर्विंशतिमते-"यस्तु देशानुरूपेण कुलमार्गेण चोद्वहेत् ॥ नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रदृश्यते" इति दिक् । तथा च भृगुः-"यस्मिन्देशे पुरे ग्रामे त्रैविद्ये नगरेऽपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचालयेत्" इति । पुनश्चतुर्विंशतिमते-"यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां किल सर्वेषां सदाचारः स उच्यते ॥" स्वगोत्राद्यज्ञाने सत्याषाढः-'अथाज्ञातबन्धो पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वेति ॥ "आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् । दत्त्वात्मानं तु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् ॥ यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जमदग्निजः । विवाहं च न तेनैव गोत्रेण तु समाचरेत् ॥ २ ॥ इति काश्चित् । दिवोदासीयेऽपि-'स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत् ॥' अथ मातृगोत्रनिर्णयः । शातातपः-"मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" यद्यपि-"सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्वाहकर्मणि ।

---

अंगिरागणोंमें तो परस्पर विवाह होता ही है। इसी प्रकार बह्वृचपरिशिष्टमें बौधायनका वाक्य है कि, जहांतक प्रवरोंमें एक ही ऋषि चला जाय वहांतक वे सब भृगु और अंगिरागणोंको त्यागकर समान गोत्री रहते हैं। माधवीयमें स्मृत्यंतरका कथन है-कि, पांचकी तीन प्रवरोंमें समानता प्राप्त होनेसे विवाह नहीं होता, यह बात भृगु और अंगिरागणोंमें जाननी। शेष गोत्रोंमें तो एक ही योग विवाहको निषेध देता है, यह देशका आचार है वह भी आभीर देशमें ही प्रसिद्ध है। चतुर्विंशतिका कथन है कि, जो मनुष्य देशरीतिके अनुसार वा कुलमार्गके अनुकूल विवाह करता है वह निरन्तर व्यवहार करने योग्य है। कारण कि, वेदसे भी यही बात दीखती है ( इति संक्षेपः ) सोई। भृगुने लिखा है कि, जिस देश, पुर, ग्राम, तीन विद्यावाले नगरमें जो धर्म कर रक्खा है उनको न डिगावे, फिर चतुर्विंशतिका मत है कि, जिस देशमें जो आचार परंपरासे चला आया है, वही सब वर्णोंका सदाचार लिखा है। अपने गोत्र आदिका ज्ञान न हो तो सत्याषाढने यह लिखा है, कि जिसमें बन्धुओंका ज्ञान न हो, उसका विवाह पुरोहित वा आचार्यके प्रवरसे होता है और जिस द्विजको आचार्यके गोत्रका ज्ञान न हो वह अपनेको किसीको देकर उसीके गोत्र प्रवरोंको स्वीकार कर ले, अथवा अपने गोत्र और प्रवरोंसे रहित परशुराम थे उनके ही गोत्रसे वह विवाह करे, यह किन्हीका मत है। दिवोदासीयमें अपने गोत्रप्रवरके अज्ञानमें जमदग्निका आश्रय करे। अब माताके गोत्रका निर्णय लिखते हैं-शातातपने कहा है कि, मामाकी पुत्री और माताके गोत्रकी कन्याका और अपने प्रवरकी कन्याका संग करके चान्द्रायण व्रत करे। यद्यपि कोई विवाहमें माताके गोत्रको भी इच्छा नहीं करते, यदि जन्म और नामका जहां ज्ञान न हो तो

जन्मनाम्नोरविज्ञातेऽप्युद्वहेदविशंकितः ॥" इति व्यासोक्तेरज्ञातनामत्वेन सगोत्रत्वा-दोषस्तथापि नेदं कलौ प्रवर्तते । 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा ।' इति कलिवर्जेत्वोक्तेः । इदं मातृगोत्रवर्जनं माध्यन्दिनी-यानामेव । 'मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामपुत्रायाश्च' इति सत्याषाढोक्तेरिति कश्चित् । महाराष्ट्रकल्पितं तन्निर्मूलम् । अन्यथा गुर्जरादेः कातीयस्य कुतो न निषेधः । अत एव प्रवरमञ्जरीकारः-'दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां मातृगोत्रं वर्ज्यम्' इति । यत्तु गुर्जरादीनां माध्यन्दिनीयानामप्याचरणाच्च-" एकस्मिन् प्रवरे तुल्ये मातृगोत्रे वरस्य च । तमुद्वाहं न कुर्वीत सा कन्या भगिनी स्मृता ॥" इति मातृकुले प्रवरचिन्तनमुक्तम् । तदासुरादिविवाहोढापरमिति दिक् । विस्तरस्तु ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयः । सगोत्राविवाहे प्रायश्चित्तम् । सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे-"इत्थं सगोत्रसंबन्धाविवाहविषये स्थिते । यदि कश्चि-ज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढ्वोपगच्छति ॥ गुरुतल्पव्रताच्छुद्धचेद्गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत् । भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ॥ अज्ञानादैन्दवैः शुद्धचेत्त्रिभिर्गर्भस्तु कश्यपः ॥ २ ॥" एवं सापिंडयेऽपि-'सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते ।'

---

शंकाको त्यागकर विवाह कर ले, इस व्यासके कथनसे नामका ज्ञान न हो तो समान गोत्रका दोष नहीं, तथापि यह प्रचार कलियुगमें नहीं चलता । कारण कि, कलियुगमें जिनका निषेध है उनमें माताके गोत्र और सपिंडकी कन्या भी वर्जितोंमें गिनी है । यह माताके गोत्रका त्याग माध्यंदिनी शाखावालोंके निमित्त ही है । कारण कि, सत्याषाढने यह लिखा है कि, माध्यंदिनियोंको माताका गोत्र निषिद्ध है । यह किसी महाराष्ट्रकी कल्पना की हुई निर्मूल है, अन्यथा गुर्जर आदि और कातियोंका निषेध क्यों न होता ? इसीसे प्रवरमंजरीकारने लिखा है कि, अत्यन्त ( भारी ) दोष होनेसे माताका गोत्र त्यागने योग्य है, जो किसीने गुर्जर आदि माध्यंदिनियोंके किये आचारसे वरके एक प्रवरकी समानता और वरकी माताका गोत्र हो तो उस कन्याको विवाहमें अंगीकार न करे, कारण कि, वह कन्या बहन लिखी है । इस कथनसे जो माताके गोत्र और प्रवरका विचार लिखा है वह उस कन्याके विषयमें जानना है, जो आसुर आदि विवाहोंसे विवाही गयी हो, यह संक्षेपसे कहा है, विस्तार तो दूसरे ग्रन्थोंमें जानना चाहिये । अपने गोत्र आदिकी कन्याके विवाहमें प्रायश्चित्त स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, इसी प्रकार अपने गोत्रकी कन्याके सम्बन्ध और विवाहके विषयमें जो कोई उस कन्याको विवाह करके गमन करता है उसको गुरुशय्याके गमन करनेके व्रत करनेसे शुद्धि होती है और उससे उत्पन्न हुआ गर्भ चाण्डाल होता है, उस कन्याके संग भोगको छोड़कर माताके तुल्य उसकी पालना करे और अज्ञानसे विवाही हो तो तीन ऐन्दवव्रतोंके करनेसे उसका गर्भ-शुद्ध होता है, इसी प्रकार सपिंड कन्याके विवाहमें जानना चाहिये, कारण कि, बृहद्यमने

इति बृहद्यमोक्तेः । तिथितत्त्वे बौधायनः-'सपिण्डां सगोत्रां चेदमत्योपयच्छे-न्मातृवेदेनां बिभृयात् ' । कन्याविवाहे कालः । कन्याविवाहकाल उक्तो ज्योतिर्निबन्धे-"षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्यावर्षद्वयं यतः । सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च तथाऽनलः ॥ " राजमार्त्तण्डः-"अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे तु विधवा भवेत् । तस्माद्गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षे युग्मेऽपि मासत्रयमेव यावत् । विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सन्तो वात्स्यादयः स्त्रीजनिजन्ममासात् ॥ २ ॥" पराशरमाधवीये तु-"जन्मतो गर्भाधानाद्वा पञ्चमाब्दात्परं शुभम् । कुमारीवरणं दानं मेखलाबन्धनं तथा ॥" इत्युक्तम् । सम्बन्धतत्त्वे यमः-"कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे । ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥' भारते-"त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम् । दशवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत् ॥" तत्रैव-"सप्तसंवत्सरादूर्ध्वं विवाहः सार्ववर्णिकः । कन्यायाः शस्यते राजन्नन्यथा धर्मगर्हितः ॥" राजमार्तण्डः-"राहुग्रस्ते तथा युद्धे पितॄणां प्राण-

---

यह लिखा है कि, अपने सपिंडकी सन्तान और स्त्री हो तो प्राण त्याग दे । तिथितत्त्वमें बौधायनने लिखा है कि, यदि अज्ञानसे सपिंड और गोत्रकी कन्यासे विवाह हो जाय तो माताके तुल्य उसकी पालना करे । कन्याके विवाहका काल ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है कि, छः वर्षकी कन्याके संगमें विवाह न करे, कारण कि, उसको दो दो संवत्सर चन्द्रमा गन्धर्व और अग्नि भोगते हैं, राजमार्तण्डमें कहा है कि, अयुग्मवर्षमें विवाही कन्या दुर्भागिन और युग्ममें विधवा होती है । इससे गर्भसे युक्त युग्म वर्षमें विवाह होनेसे वह कन्या पतिपरायण होती है, स्त्रीके जन्ममहीनेसे अयुग्म वर्षोंमें तनि महीनेसे पीछे और युग्मवर्षोंमें तीन महीनेतक विवाहकी शुद्धिको वात्स्य आदि सन्त लिखते हैं । पराशरमाधवीयमें यह लिखा है कि, जन्म वा गर्भाधानसे पांच वर्षसे उपरान्त कन्याकी सगाई दान और यज्ञोपवीत करना शुभ है । संबन्धतत्त्वमें यमने कहा है कि, बारह वर्षतक विना दी हुई कन्याके घरमें रहनेसे उस कन्याके पिताको ब्रह्महत्या लगती है, वह कन्या स्वयं वर ले । भारतमें कहा है कि, तीस वर्षका मनुष्य सोलह वर्षकी और सोलह वर्षका मनुष्य आठ वर्षकी कन्याको अग्निकी साक्षीसे विवाहे, शीघ्रता करनेसे धर्मसे पतित होता है, इससे पिताको चाहिये कि, रजोधर्म न होनेसे प्रथम कन्याको देदे । भारतमें भी कहा है कि, हे राजन् ! सात वर्षसे उपरान्त कन्याका विवाह सब वर्णोंमें उत्तम है अन्यथा हे नृप ! धर्मसे निन्दित है । राजमार्तण्डमें कहा है कि, ग्रहण, युद्ध, पितरोंके प्राणोंका संशय हो

---

१ "व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नै सोमो भुञ्जीत कन्यकाम् । पयोधरैस्तु गन्धर्वो रजसाग्निः प्रकीर्तितः । तस्माद्व्यञ्जनोपेतामरजामपयोधराम् । अभुक्ता चैव सोमाद्यैः कन्यका तु प्रशस्यते । तुरीयस्ते मनुष्यजः । इति श्रुतेः ॥" अर्थात्-गृह्यसंग्रहमें लिखा है कि, चिह्न प्रगट होनेसे चन्द्रमा, पयोधर होनेसे गंधर्व, रज होनेसे अग्नि कन्याको भोगते हैं, इससे इन देवताओंसे अभुक्तकन्याका दान करे ॥

संशये । अतिप्रौढा च या कन्या चन्द्रलग्नबलेन तु ॥" चकारादतिबाला । प्राणसंशय इत्युक्तेः । मनुः—"त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् । द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥" यद्यपि—'विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्यते बुधैः ।' इति संवर्त्तोक्तेः 'अत ऊर्ध्वं रजस्वला' इत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वं विवाहो निषिद्धः । तथापि दातुरभावे द्वादशषोडशाब्दे ज्ञेये—'त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्' इति पराशरमाधवीये बौधायनोक्तेश्च । मनुः—"स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् । हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम् ॥ २ ॥" यमः—'तस्मादुद्वाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।' तथा मूलजादीनां फलं प्रागुक्तम् । तथा वर्णवश्यग्रहमैत्र्यादिघटितविचारो ज्योतिर्विद्भ्यो ज्ञेयः । विस्तरात्तु नोच्यते । गुर्वर्कबलम् । अथ गुर्वर्कबलं ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—"स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम् । तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण भाषितम् ॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो

---

तो अत्यन्त बड़ी कन्या चन्द्रके बलसे दे देनी चाहिये, विवाहको उत्तम नहीं लिखते । चकारसे प्राणके संशयमें अत्यन्त बालिकाका विवाह भी कर दे, पर उत्तम नहीं है । मनुने कहा है कि, तीस वर्षका मनुष्य बारह वर्षकी और सोलह वर्षका आठ वर्षकी कन्यासे विवाह करे और शीघ्रता करे तो धर्मसे पतित होता है । यद्यपि आठ वर्षकी कन्याका विवाह पंडितोंने उत्तम लिखा है इस संवर्तके कथनसे और इससे आगे कन्या रजस्वला हो जाती है इत्यादि वाक्योंसे दश वर्षके उपरान्त विवाह करना निषिद्ध है, तथापि दाताके अभावमें बारह और सोलह वर्ष जानने चाहिये । कारण कि, पराशरमाधवीयमें बौधायनने यह लिखा है कि, ऋतुमती कन्या तीन वर्षतक पिताकी आज्ञाकी बाट देखे । मनुने कहा है कि, स्त्रीके सम्बन्धमें इन दश कुलोंको छोड़ दे, कि, क्रियासे हीन, पुरुषत्व रहित, वेदहीन, जिन पुरुषोंके शरीर पर बहुत रोम हों, अर्श ( बवासिर ) रोगवाली, क्षयीरोग, मन्दाग्नि, गरमी, दाद, कुष्ठ रोगवाली उस कन्याको न विवाहे तथा जिसका नक्षत्र वृक्ष वा नदीका वा पर्वतोंपर नाम वा भयानक नाम हो उसे न विवाहे । यमने कहा है कि,इससे तबतक कन्याको विवाह ले जबतक ऋतुमती न हो । इसी प्रकार मूल आदिमें उत्पन्न हुई कन्याओंका फल प्रथम कह आये हैं । इसी प्रकार वर्ण वश्य ग्रहोंकी मित्रता आदिसे युक्त विचार ज्योतिषियोंसे जानना चाहिये, विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखते । अब बृहस्पति और सूर्यका बल लिखते हैं—ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने यह लिखा है कि, स्त्रियोंको बृहस्पतिका बल और पुरुषोंको सूर्यका बल और दोनोंको चंद्रमाका बल देखना चाहिये और जन्मका, तीसरा, छठा, बृहस्पति पूजासे अच्छा होता है और चौथा, आठवां, बारहवां निन्दित

गुरुः । विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः ॥ २ ॥" देवलः–"नष्टात्मजा धनवती विधवा कुशीला पुत्रान्विता हतधवा सुभगा विपुत्रा । स्वामिप्रिया विगतपुत्रधवा धनाढ्या वन्ध्या भवेत्सुरगुरौ क्रमशोऽभिजन्मा ॥" बृहस्पतिः– "झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु॥ " लल्लः–"द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टमे तृतीये च । प्राप्ते पाणिग्रहणे जीवे वैधव्यमाप्नोति ॥" गर्गः–"सर्वत्रापि शुभं दद्याद्द्वादशाब्दात्परं गुरुः । पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥ सप्तमात्पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि । अशुभोऽपि शुभं दद्याच्छुभर्क्षेषु किं पुनः ॥ रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत् । अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता । कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बला ॥ अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ५ ॥" अथ बृहस्पतिशांतिः । शौनकः–"कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते । ब्राह्मणस्योपनयने गुरौ विधिरुदाहृतः ॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् । ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च ॥ दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान् ।

---

मृत्यु करता है । देवलने कहा है कि, जन्मसे बृहस्पतिसे बारहवेंतक क्रमसे यह फल होता है कि, संतानका नाश, धनवाली, विधवा, कुशीला, पुत्रोंसे युक्त, पतिमृत्यु, सुहागिन, पुत्रोंसे हीन, पतिकी प्यारी, पुत्र और पतिसे हीन, धनसे युक्त और वन्ध्या होती है । बृहस्पतिने कहा है कि, मीन, धन, कर्कका बृहस्पति अशुभ भी हो तो विवाह और यज्ञोपवीतमें श्रेष्ठताको करता है । लल्लने कहा है कि, विवाहमें बृहस्पति बारहवां, दशवां, चौथा, जन्मका, छठा, आठवां, तीसरा हो तो वह कन्या विधवा होती है । गर्गने कहा है कि, बारह वर्षकी अवस्थासे आगे बृहस्पति सब स्थानोंका शुभदायी है, पांचवें और छठे वर्षमें ही शुभ गोचर देखना कहा है । सातवर्षसे पांच वर्षतक अशुभ भी बृहस्पति अपने उच्च और अपनी राशिका हो तो मंगल देता है और अच्छी राशिका हो तो फिर क्या कहना है ? रजस्वलाकन्याके गुरु शुद्धि करनेकी चिन्ता न करे । आठवें बृहस्पतिमें भी तिगुना पूजन कर विवाह कर ले । गौरी कन्याको सूर्य गुरुका बल, रोहिणी कन्याको सूर्यका बल और कन्याको चन्द्रमाका बल और रजस्वलाको लग्नका बल देख लेना चाहिये । आठ वर्षकी कन्या गौरी, नौवर्षकी रोहिणी और दशवर्षकी कन्या और इससे आगे रजस्वला होती है ॥ अब बृहस्पतिकी शान्ति लिखते हैं–शौनकने कहा है कि, कन्याके विवाह और ब्राह्मणके यज्ञोपवीतमें बृहस्पति श्रेष्ठ न हो तो यह विधि लिखी है कि, सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति बनाकर पीले वस्त्रसे लपेटे और ईशान दिशामें श्वेत घट धान्यके ऊपर रखकर दमन, मधुपुष्प, पलाश, सर्षप, मांसी, गुडूची, अपामार्ग,

मांसी गुडूच्यपामार्गी विडङ्गी शंखिनी वचा ॥ सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिशतावरी । बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च ॥ कृत्वाज्यभागपर्यंतं स्वशाखोक्तविधानतः । ग्रहोक्तमण्डलेऽभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः ॥ देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम् । अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम् ॥ यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः । अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत् ॥ पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् । कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः ॥ प्रतिमाकुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः ॥ ९ ॥" इति बृहस्पतिशांतिः । सिंहस्थगुरौ निर्णयः । शौनकः-"गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ । नष्टे शशिनि शुक्रे वा बाले वृद्धेऽथवा गुरौ ॥ पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शरद्यधिकमासके । केतूद्गमे निरंशेऽर्के सिंहस्थेऽमरमन्त्रिणि ॥ विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकम् । क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥" मदनपारिजाते ज्योतिःसागरे-"बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे । बाले जीवे जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये ॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे । वापीकूपविवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥" लल्लः-

---

विडंग, शंखपुष्पी, वच, सहदेवी, विष्णुक्रांता, सर्वौषधी, शतावरी, बला, दोनों हलदी इन सबको एकत्र करके आज्यभाग आहुति पर्यन्त अपनी शाखामें लिखी हुई विधिसे नवग्रहोंके मण्डलमें पीले फूल और अक्षतोंसे बृहस्पतिका पूजन करके देवपूजाके उपरान्त घटकी प्रार्थना करे और ढाककी समिधा, घी और घीसहित खीर और जौ, चावल, तिलमें घी मिलाकर बृहस्पतिके मन्त्रसे एकसौ आठ आहुति देकर शेष होमकी पूर्ति करे । पुत्र और स्त्रीसहित यजमानका अभिषेक करे। कुम्भकी प्रार्थनाके मन्त्र 'समुद्रज्येष्ठा' इस मन्त्रको अभिषेकमें पढे। वह बृहस्पतिकी प्रतिमा घट और वस्त्र आचार्यको देने चाहिये, पीछेसे ब्राह्मणोंको जिमावे। इस विधिके करनेसे बृहस्पति मंगलदायी होता है, इसमें सन्देह नहीं। इति बृहस्पतिशांतिः। अब सिंहस्थगुरुके निर्णय कहते हैं-शौनकने कहा है कि, गुर्वादित्य, व्यतीपात, बृहस्पतिका वक्र और अतिचार, नष्ट चन्द्र, शुक्र और बृहस्पतिका बाल्य और वृद्धत्व इनमें और पौष, चैत्र, वर्षा, शरद् और आधिक मास, केतु तारेका निकलना, निरंशसूर्यमें, सिंहके बृहस्पतिमें विवाह, व्रत, यात्रा आदि पुर और महल निर्माण, क्षौर, विद्या और उपविद्याको यत्नसे त्याग दे। मदनपारिजातमें ज्योतिस्सागरका कथन है कि, शुक्र और बृहस्पति बालक हों वा वृद्ध हों, सिंहका बृहस्पति हो वा सूर्य हो, वा गुर्वादित्य हो, मलमास बृहस्पतिके अतिचारमें पूर्वोक्त वापी, कूप, विवाह आदि कर्म न करे। सिंह और मकरके बृहस्पतिको यत्नसे त्याग दे । लल्लने कहा है कि, अतिचारमें प्राप्त हुआ बृहस्पति फिर

"अतिचारगतो जीवस्तं राशिं न व्रजेत् पुनः । लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥" सिंहस्थगुरोरपवादमाह पराशरः—"गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ । मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ ॥" वसिष्ठोऽपि—"विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु । भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा ॥ विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ।" कन्यादातारः । कन्यादातृक्रममाह याज्ञवल्क्यः—"पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ अप्रयच्छन् समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् ॥ २ ॥" भ्रातॄणां संस्कृतानामेवाधिकारमाह स एव याज्ञवल्क्यः—"असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः । भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम् ॥" अत्र चकारेण पूर्वसंस्कृतैरित्यस्यानुवृत्तेर्विवाहपर्याप्तद्रव्यदाने स्वांशसमांशचतुर्थभागदाने वा संस्कृतग्रहणं व्यर्थं स्यात् । अतः कर्तृनियमोऽयम् । तेनानुपनीतभ्रातृमात्रादिसत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न भ्रातुरित्युक्तं सम्बन्धतत्त्वादौ । कन्यास्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम् । तत्र च स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वाऽन्यब्राह्मणद्वारा कारयेदिति

---

यदि उस राशिपर न आवे तो वह वर्ष लुप्त हुआ जानना, वह सब कर्मोंमें छोड़ने योग्य है। सिंहके बृहस्पतिका अपवाद पराशरने लिखा है कि, गोदावरी और भागीरथीके बीचमें सिंहके बृहस्पतिमें विवाह न करे और मकरके बृहस्पति और सिंहके सूर्यमें सब देशोंमें विवाह त्याग दे । वसिष्ठने कहा है कि, गौतमीके दक्षिण तटमें विवाह होता है और स्थानमें नहीं । भागीरथीके उत्तर और गौतमीके दक्षिणतटमें, सिंहके गुरुमें विवाह और यज्ञोपवीत करनेका दोष नहीं है। कन्याके दाताओंका क्रम याज्ञवल्क्यने यह लिखा है कि, पिता, पितामह, भाई, कुलका मनुष्य, माता इनमें पूर्व पूर्व के अभावमें अगला अगला सावधानीसे कन्याका देनेवाला होता है । यदि कन्याका दान न करे तो ऋतु ऋतु में भ्रूणहत्या लगती है। यदि कोई दाता न हो तो अपने गमन करने योग्य बरको कन्याको स्वयं वर लेना चाहिये, उन्हीं भ्राताओंका कन्यादानमें अधिकार है जिनका संस्कार हो चुका हो, कारण कि, याज्ञवल्क्यने कहा है कि, जिन भाइयोंका संस्कार न हुआ हो उनका संस्कार प्रथम संस्कृत भाई करे और भगिनियोंका भी विवाह अपने अंशमेंसे चतुर्थ अंशको देकर करे। इस श्लोकमें चकारसे पूर्वसंस्कृत पदकी अनुवृत्तिसे विवाहने योग्य द्रव्य देनेमें या अपने अंशके तुल्य वा चौथाई द्रव्य देनेमें संस्कृतका ग्रहण व्यर्थ हो तो माताओंका कन्यादानमें अधिकार है भाइयोंका नहीं, यह सम्बन्धतत्त्वआदिमें लिखा है । जहां कन्या स्वयं वरे और माता कन्यादान करे वहां दोनोंको ही नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये और वहां प्रधान संकल्पमात्रको करके

प्रयोगपारिजाते । वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यान्न माता। 'पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत्स्वधाम्' इति निषधात् । उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति पृथ्वीचन्द्रोदयः । माधवीयेऽपरार्के च नारदः-"पिता दद्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वानुमते पितुः । मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा ॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः ॥ सकुल्यः पितृपक्षीयो बान्धवो मातृवंशज ॥ ३ ॥" मदनपारिजाते कात्यायनः-"स्वयमेवौरसीं दद्यात्पित्रभावे स्वबान्धवः। मातामहस्ततोऽन्यां हि माता वा धर्मजां सुताम् ॥ " ततोऽन्यामौरसीभिन्नां धर्मजां नियोगात् क्षेत्रजां मातामहो माता मातुलो वा दद्यात् । तेनौरसीदाने पितृबन्धुषु सत्सु मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिं विना । अस्यापवादस्तत्रैव-"दीर्घप्रवासयुक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु । माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम् ॥ " मनुः-"यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् । ' परकीयकन्यादाने विशेषो मदनरत्ने स्कान्दे-"आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् । धर्मेण विधिना दानमसगोत्रोऽपि

---

दूसरे श्राद्ध ब्राह्मणसे करावे, यह प्रयोगपारिजातमें लिखा है। वर तो संस्कृत भाइयोंके न होनेपर स्वयं नान्दीमुख श्राद्ध करे, वरकी माता न करे। पुत्रोंके विद्यमान होते औरसे स्वधा न करावे, इस त्यागसे और यज्ञोपवीतसे पुत्रोंको कर्मका अधिकार होनेसे माताका अधिकार नहीं है, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है । माधवीय और अपरार्कमें नारदके वाक्य इस प्रकार लिखे हैं कि, पिता स्वयं कन्यादान करे वा पिताकी अनुमतिसे भाई करे नाना, मामा, सकुल्या वा बांधव करे, इन सबके अभावमें सावधान हो तो माता करे, यदि वह सावधान न हो तो सजातीय मनुष्यको कन्यादान करना चाहिये। पिताके वंशीको सकुल्य और माताके वंशीको बांधव लिखा है । मदनपारिजातमें कात्यायनने कहा है कि, अपनेसे उत्पन्न हुई कन्याको पिता स्वयं दे और पिता न हो तो अपने बांधव दें, यदि वे भी न हों तो नाना विवाह अथवा धर्मसे उत्पन्न हुई कन्याको माता दे और औरसीसे भिन्न नियोगधर्मसे उत्पन्न क्षेत्रज कन्याको मातामह वा मामा दे, इससे औरसी कन्याके दानमें पिताआदिके होते अनुमतिके विना औरका अधिकार नहीं है। इसका अपवाद भी वहां ही कहा है कि,यदि बन्धु बहुत दिनसे परदेशमें हों वा पौगंड अवस्थाके हुए हों तो औरसी कन्याको स्वयं माता भी दे। मनु कहते हैं कि, जब कोई देनेवाला न हो तो कन्या राजाके निकट चली जाय । परायी कन्याके दानमें मदनपारिजातमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखा है कि, सुवर्ण देकर दूसरेकी कन्याको अपनी करके धर्मकी विधिसे

युज्यते ॥" अत्र प्रकृतिग्रहणादप्रकृतिस्थेन कृतमकृतमेव । "स्वतन्त्रो यदि तत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिं गतः । तदप्यकृतमेव स्यादस्वातन्त्र्यस्य हेतुतः ॥" इत्यपरार्के नारदोक्तेः । यदि तु सप्तपदीविवाहहोमादिप्रधानं जातं तदङ्गवैकल्येऽपि नावृत्तिर्विवाहस्य । गौडा अप्येवमाहुः । तत्रैव मरीचिः—"गौरीं ददन्नाकपृष्ठे वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् । कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम् ॥" अथ विवाहे मासनिर्णयः । तत्र जन्ममासे विशेषः प्रागुक्तः । ज्योतिःप्रकाशे व्यासः—"माघफाल्गुनवैशाखे यद्यूढा मार्गशीर्षके । ज्येष्ठे चाषाढमासे च सुभगा वित्तसंयुता ॥ श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्रपदे तथा । चैत्राश्वयुक्कार्त्तिकेषु याति वैधव्यतां लघु ॥ २ ॥" नारदः—"माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे ॥" वसिष्ठः—"पौषेऽपि कुर्यान्मकरस्थितेऽर्के चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात् । प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनास्थितेऽर्के ॥" आचार्यचूडामणौ ज्योतिर्गर्गराजमार्तण्डौ—"माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च । दशमासा प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः ॥" आपस्तम्बः—

---

अपने गोत्रमें भी कन्याका दान हो सकता है । वहां प्रकृतिस्थ( सावधान ) के ग्रहणसे विना सावधानीमें किया न किया जानना, कारण कि, अपरार्कमें नारदने यह कहा है कि, असावधान मनुष्य स्वतन्त्र होके उस कार्यको करे तो उसको अस्वतन्त्र हेतुसे विना किया जानना । यदि सप्तपदी होम आदि प्रधान कार्य हो गये हों तो किसी अंगकी न्यूनतामें भी विवाह फिर नहीं हो सकता । गौड़ोंने भी इसी प्रकार कहा है । वहां ही मरीचिने कहा है कि, गौरीका देनेवाला स्वर्गलोकमें, रोहिणीका दाता वैकुण्ठमें, कन्याका दाता ब्रह्मलोकमें तथा रजस्वलाका दाता रौरव नरकमें गमन करता है । विवाहमें मासको लिखते हैं—वहां जन्ममहीनेमें विशेष निर्णय पूर्व लिख आये हैं । ज्योतिःप्रकाशमें व्यासने कहा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशिर, ज्येष्ठ, आषाढमें विवाही हुई कन्या सौभाग्यवती तथा धनवती होती है और श्रावण, पौष, भाद्रपद, चत्र, आश्विन तथा कार्त्तिकमें विवाही कन्या शीघ्र ही विधवा हो जाती है । नारदने कहा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख तथा ज्येष्ठ मास ये विवाहमें श्रेष्ठ हैं और कार्त्तिक मार्गशिर मध्यम हैं, शेष सम्पूर्ण मास विवाहमें निन्दित हैं । वसिष्ठने भी कहा है कि, यदि मकरकी संक्रान्ति पौषमें हो तो पौषमें और मेषकी संक्रान्ति चैत्रमें होजाय तो चैत्रमें भी विवाह करनेमें दोष नहीं है । आषाढ तथा मिथुनकी संक्रान्तिमें किया हुआ विवाह उत्तम होता है, यह गर्गका कथन है । आचार्यचूडामणि, ज्योतिर्गर्ग और राजमार्तण्डने कहा है कि, मंगलके सब कर्मोंमें और विवाह और कन्याके सम्बन्धमें चैत्र और पौषको छोड़कर दश मासोंकी बड़ाई करते हैं । आपस्तम्बने कहा है कि, विवाहकी

'सर्वेऋतवो विवाहस्य। शैशिरौ मासौ परिहार्य्योत्तमं च नैदाघम् ।' अत्र-"माघफाल्गुनाषाढवर्जे नव मासा मुख्यः कालः" इति सुदर्शनभाष्ये इडविलायां ब्रह्मतीर्थैश्चोक्तम्। बौधायनसूत्रेऽपि-'सर्वे मासा विवाहस्य शुचितपस्तपस्यवर्जम्' इत्येके। तेन 'पूर्वोत्तरौ शिशिरसंबन्धिनौ मासौ पौषचैत्रौ विहाय' इति निर्णयामृतव्याख्यानं मौर्ख्यकृतमित्युपेक्ष्यम्। 'निशि चेत्सर्वेषु द्वादशस्वपि मासेषूद्वहेत्' इति कालादर्शः। ये तु ज्योतिषे माघादिविधयस्ते गृह्यसूत्राणां द्विजपरत्वेन प्राबल्याच्छूद्रादिपराः। ज्योतिषे-"वात्स्यो वर्षमनूनमिच्छति तथा रैभ्योऽयनं चोत्तरं श्रीवासन्तमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः। चैत्रं प्रोज्झ्य पराशरः परिणयेत्पौषं च दौर्भाग्यदं ह्याषाढादिचतुष्टयं न निनदं कैश्चित् प्रदिष्टं बुधैः ॥" चण्डेश्वरः-'मार्गे मासि तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम्। ज्येष्ठपुत्रदुहित्र्योस्तु यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत्। उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत् ॥ २ ॥' रत्नकोशे-"जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत्। ज्येष्ठे मासाद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि ॥ " पराशरः-"अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो

---

सब ऋतु हैं, शिशिरके दो मास पौषको छोड़कर श्रेष्ठ हैं और यहां माघ फाल्गुन आषाढको छोड़कर नौ महीने मुख्यकाल है, यह सुदर्शनभाष्य और इडाविडामें ब्रह्मविद्यातीर्थोंने लिखा हैं। बौधायनसूत्रमें कहा है कि, विवाहके सब महीने हैं और कोई यह लिखते हैं कि, आषाढ, माघ, फाल्गुन हैं, इससे शिशिरसम्बन्धी प्रथम और पिछलें पौष और चैत्रको विवाहमें त्याग दे। यह निर्णयामृतकी व्याख्या मूर्खतायुक्त है, इससे छोड़ने योग्य है। कालादर्शमें यह कहा है कि, रात्रिमें लग्न हो तो द्वादश महीनेमें विवाह करे और जो ज्योतिषमें माघ आदि महीनोंकी विधि है वह शूद्रोंके निमित्त है, इससे गृह्यसूत्र द्विजोंको मानने योग्य है। ज्योतिषमें कहा है कि, वात्स्यमुनि सम्पूर्ण वर्षको और रैभ्यमुनि उत्तरायणको और माण्डव्यके शिष्य मुनि वसन्तको त्यागकर शुभ कहते हैं और पराशर चैत्रको त्यागकर सब महीनोंको विवाहमें उत्तम कहते हैं। दुर्भाग्यके देनेवाले पौष और आषाढ आदि चार महीने किसी भी विद्वान्ने नहीं लिखे। चण्डेश्वरने कहा है कि, मार्गशिर और ज्येष्ठ मासमें क्षौर, विवाह और व्रतको और ज्येष्ठमें ज्येष्ठ पुत्र और ज्येठी कन्याके विवाहको यत्नसे त्याग दे। कृत्तिकाके सूर्यको त्यागकर ज्येष्ठमें ज्येष्ठ पुत्रका विवाह कर लेना चाहिये और उत्सवके कार्योंमें ज्येष्ठके दश दिन त्याग दे। रत्नकोशमें कहा है कि, जन्मके नक्षत्र जन्मके महीने जन्मके दिनमें शुभ कर्म छोड़ दे और ज्येष्ठ पुत्र और ज्येठी कन्याका शुभ कार्य ज्येष्ठमें न करे। पराशरने कहा है कि, यदि कन्या ज्येठी न हो और वर ज्येठा हो अथवा वर ज्येठा न

यदि । व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः ॥" मिहिरः–"ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया विवाहो न प्रशस्यते । तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते ॥ द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्येष्ठं शुभावहम् । ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ॥ २ ॥" यत्तु–'सार्वकालमेके विवाहम्' इति, तदासुरादिविषयम् । 'धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु' इति गृह्यपरिशिष्टात् । रत्नमालायामप्येवम् । तेनासुरादयो माघचैत्रादिनिषिद्धकालेष्वपि भवन्ति । मासाः सौराः । 'सौरो मासो विवाहादौ' इत्युक्तेः । 'झषो न निन्द्यो यदि फाल्गुने स्यादजस्तु वैशाखगतो न निन्द्यः' इति त्वपवादः । अथ दश दोषाः । व्यवहारोच्चये–"वेधश्च लत्ता च तथैव पातः खर्जूरवेधो दशयोगचक्रम् । युतिश्च जामित्रमुपग्रहश्च बाणाख्यवज्रे च दशैव दोषाः ॥" एषां लक्षणं ज्योतिषे ज्ञेयम् । अतिचारगे गुरौ तु वसिष्ठः–"अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । विवाहादिषु कार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥" रत्नमालायाम्–"एकपञ्चनवयुग्मषड्दशत्रीणिसप्तचतुरष्टलाभगः । द्वादशाजवृषभादिराशितो घातचन्द्र इति कीर्तितो बुधैः ॥" नारदः–भूबाणनन्दहस्ताश्च रसदिग्वह्निशैलजाः ॥ वेदा वसुशिवा-

---

हो और कन्या ज्येठी हो तो ज्येष्ठमास श्रेष्ठ है । मिहिरने कहा है कि, ज्येठेका ज्येठी कन्याके संग ज्येष्ठमें विवाह श्रेष्ठ नहीं है उनमें एक ज्येष्ठ हो तो ज्येष्ठ मास उत्तम है, दो ज्येष्ठ मध्यम लिखे हैं और एक ज्येष्ठ सुखदाता है । विवाहमें तीन ज्येष्ठ न करे, इस बातमें सबकी एक सम्मति है । जो किसीने यह कहा है कि, कोई सब कालमें विवाहकी इच्छा करते हैं, वह आसुरआदि विवाहके विषयमें है । कारण कि, गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, धर्मके विवाहोंमें समयकी परीक्षा है अधर्म विवाहोंमें नहीं । रत्नमालामें भी इसी प्रकार कहा है, इससे आसुर आदि विवाह माघ चैत्र आदि निषिद्ध मासोंमें भी होते हैं, यह सौर मास है, विवाहादिमें सौर मास लेने ऐसा कहा है । फाल्गुनमें हो तो मीन निंद्य नहीं है और वैशाखमें हो तो मेष निंद्य नहीं है ऐसा अपवाद है । अब दश दोषोंको कहते हैं–व्यवहारोच्चयमें कहा है कि, वेध, लत्ता, पात, खर्जूरवेध, ( एकार्गल ) दश योगचक्र, युति, जामित्र, उपग्रह, बाण और वज्र ये दश दोष हैं, इनके लक्षण ज्योतिष ग्रन्थोंमें देख लेने चाहिये । अतिचारके बृहस्पतिमें वसिष्ठने कहा है कि, अतिचारका बृहस्पति हो तो विवाह आदि कार्योंमें अट्ठाईस २८ दिन छोड़ दे । रत्नमालामें कहा है कि, मेषआदि राशिसे पण्डितोंने घात चन्द्र क्रमसे यह कहा है कि, एक १ पांच ५ नौ ९ दो २ छः ६ दश १० तीन ३ सात ७ चार ४ आठ ८ ग्यारह ११ बारह १२ । नारदने भी कहा है कि, मेष आदि राशिके क्रमसे यह घातचन्द्र समझना कि, भू १ बाण ५ नन्द ९ हस्त २ रस ६ दिक् १० वह्नि ३

दित्या घातचन्द्रो यथाक्रमम् ॥ यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् । विवाहे सर्वमांगल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥ घातचन्द्रो नैव चिन्त्य इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २ ॥" ज्योतिर्निबन्धे-"विवाहचौलव्रतबन्धयज्ञे पट्टाभिषेके च तथैव राज्ञाम् । सीमन्तयात्रासु तथैव जाते नो चिन्तनीयः खलु घातचन्द्रः ॥" नारदः-"अकालजा भवेयुश्चेद्विद्युन्नीहारवृष्टयः । प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाभ्रध्वनयो यदि ॥ दोषाय मंगले नूनं न दोषायैव कालजाः ॥" अकालवृष्टिस्वरूपमाह लल्लः-'पौषादिचतुरो मासाः प्रोक्ता वृष्टिरकालजा' इति ॥ शार्ङ्गधरः-"निर्घाते क्षितिचलने ग्रहयुद्धे राहुदर्शने चैव । आपञ्चदिनात्कन्या परिणीता नाशमुपयाति॥ उल्कापातेन्द्रचापप्रबलघनरजोधूमनिर्घातविद्युद्वृष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्याज्यमेवैकरात्रम् । दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनोर्भ्रान्तबुद्धौ चौले मौञ्जीनिवन्धे परिणयनविधौ सर्वदा त्याज्यमेव ॥ २ ॥" ज्योतिःप्रकाशे-" अर्वाक्पृष्ठे षोडशनाड्यः संक्रान्तेः पुण्यदाः परतः । उपनयनव्रतयात्रापरिणयनादौ विवर्ज्यास्ताः ॥" गर्गः-"दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्तादिनानि तु । भूकम्पे च समुत्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापाते त्रींदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च । वज्रपाते

---

मातृका ७, वेद ४, वसु८, रुद्र ११, आदित्य १२यात्रा, युद्ध आदि कार्योंमें घातचन्द्रमाको छोड़दे अर्थात् घात चन्द्रमामें न करे और विवाह, सब मङ्गल कर्म, चूडा आदि तथा व्रतबन्धन ( यज्ञोपवीत ) इनमें घातचंद्रमाका विचार नहीं करना, यह पराशरने लिखा है । ज्योतिर्निबन्धमें भी कहा है कि, विवाह, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, राज्याभिषेक, सीमन्त, यात्रा तथा जातकर्ममें घातचंद्रमाका विचार नहीं करना चाहिये । बिजली, नीहार ( कौल ), वृष्टि, सूर्यके चारोंओरका मण्डल, इन्द्रधनुष, मेघध्वनि ये मंगलमें दूषित हैं ऐसा नारद कहते हैं और समयमें दूषित नहीं है । अकालवृष्टिका स्वरूप लल्लने यह लिखा है कि, पौष आदि चार महीनोंमें हुई वृष्टिको अकालवृष्टि कहते हैं । शार्ङ्गधरने कहा है कि, वज्रपात, भूमिकम्प, ग्रहोंका युद्ध, राहुदर्शन इनमें पांच दिनतक विवाह न करना चाहिये । कारण कि, इनमें विवाही हुई कन्या मृत्युको प्राप्त होती है । उल्काका पात, इन्द्रधनुष, प्रबल घनकी धूरि तथा धूमदर्शन, वज्रपात, विद्युत्पात, वृष्टि, सूर्यका मण्डल इत्यादि दोषोंमें एक रात वर्ज दे । दुष्ट स्वप्न, दुष्ट हेतु, अशुभ फलका दर्शन, दुष्ट मन तथा चित्त भ्रान्त ये चूडाकर्म,, मौंजीबन्धन, विवाह आदिमें निरन्तर त्यागने योग्य हैं । ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि, संक्रान्तिकी आदिकी सोलह घड़ी यज्ञोपवीत, व्रत, यात्रा, विवाह आदिमें पुण्यदायक होती हैं और सम्पूर्ण घड़ी वार्जित हैं । गर्गने कहा है कि, दिशाओंके दाहमें तो एक दिन, ग्रहोंके युद्धमें सात दिन, भूकम्प हो तो तीन दिन, उल्काका पात हो तो तीन दिन, धूम दर्शनमें पांच दिन, वज्रपातमें एक दिन,

चैकादिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ दर्शनादर्शनाद्राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् । यावत्केत्वोद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ॥ ३ ॥" अस्यापवादोऽद्भुतसागरे-"अथ दिवसत्रयमध्ये मृदु पानीयं यदा भवति ॥ उत्पातदोषशमनं तदेव संप्राहुराचार्याः ॥" सम्बन्धतत्त्वे-'भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति।' दुष्टयोगे कुम्भाविवाहः। अथापरिहार्ये कन्यावैधव्ययोगे विशेष उच्यते। मार्कण्डेयपुराणे-"बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुमप्रतिमादिभिः। कृत्वा लग्नं ततः पश्चात्कन्योद्वाहेति चापरे॥" अत्र पुनर्दोषाभाव उक्तो विधानखण्डे-"स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी। तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते ॥" सूर्यारुणसंवादे-"विवाहात्पूर्वकाले च चन्द्रताराबलान्विते। विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत् ॥ सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः। कुंकुमालंकृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे॥ ततः कुम्भं च निःसार्य प्रभज्य सलिलाशये। ततोऽभिषेचनं कुर्यात्पञ्चपल्लववारिभिः ॥" कुम्भप्रार्थना तत्रैव-"वरुणांगस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय । पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः । ततोऽलंकारवस्त्राढ्यां वराय प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥" इति कुम्भाविवाहः ॥ मूर्तिदानमपि तत्रैवोक्तम्-'ब्राह्मणं

---

सब कर्मोंमें त्यागा है। राहुकेतुका दर्शन हो वा न हो तो भी सात दिन त्याग दे; कारण कि, जबतक केतु उदय हो तबतक अशुभ समय होता है। अद्भुतसागरमें इसका अपवाद यह लिखा है कि, तीन दिनके बीचमें जब जलमें स्वच्छता हो जाय तब ही उत्पात दोषकी शान्ति होती है यह आचार्यजन कहते हैं। सम्बन्धतत्त्वमें कहा है कि, वृद्धिश्राद्धके करनेपर भूकम्प आदिका दोष नहीं होता है। दुष्टयोगमें कुम्भ विवाह करना चाहिये, अनिवार्य कन्याके वैधव्य योगमें मार्कण्डेय पुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखते हैं कि, यदि कन्याका बालवैधव्य योग हो तो कुम्भ वा वृक्षकी प्रतिमा आदिसे लग्नको करके पीछे कन्याका विवाह करे, यह कोई कहते हैं। यहां पुनर्भू ( दुबारा विवाही ) दोषकी शांति विधानखण्डमें यह कहा है कि, सुवर्णका जल पिप्पलकी विष्णुकी प्रतिमा निर्माण कर फिर उसके संग विवाह करनेसे पुनर्भू दोष नहीं लगता। सूर्यारुणसंवादमें कहा है कि, चन्द्रताराके बलसे युक्त विवाहसे पूर्व कालमें कन्याका घड़ेके संग विवाह करे, विधिसे एकान्त गृहमें उसके अंगको कुंकुम आदिसे शोभित करके दश तन्तुओंसे वेष्टित करे, फिर उस कुम्भको घरसे निकालकर किसी जलाशयमें उसको भग्न करके पञ्चपल्लवोंसे उसका अभिषेक करे। वहां ही कुम्भकी प्रार्थनाके मन्त्र ये लिखे हैं कि, वरुणके अंगका स्वरूप जलोंसे आश्रयवान् तुम इस कन्याके पतिको चिरकालतक जीवित करो तथा चिरकालतक पुत्रके सुखको करो, विष्णुरूपी वरको दे, दुःखसे इस कन्याकी रक्षा करो, इस प्रकार घटका विवाह कर भूषण, वस्त्र आदिकोंसे युक्त कन्याको वरके निमित्त निवेदन करे। इति कुम्भविवाहः। मूर्तिका दान भी वहां ही

साधुमामन्त्र्य संपूज्य विविधार्हणैः । तस्मै दद्याद्विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम् ॥ शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याथवा पुनः ॥ निर्मितां रुचिरां शंखगदाचक्राब्जसंयुताम् ॥ दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम् । सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेनमुदीरयेत् । यन्मया प्राश्चि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम् । विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वातिविरक्तया ॥ प्राप्यमानं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् । वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय शुभलब्धये ॥ बहुसौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम् । सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज । अनघाद्याहमस्मीति त्रिवारं प्रजपेदिति । .एवमस्त्विति तस्योक्तिं गृहीत्वा स्वगृहं विशेत् ॥ ततो वैवाहिकं कुर्याद्विधिं दाता मृगीदृशः ॥" अन्येऽप्यश्वत्थविवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैव ज्ञेयाः । विस्तरभयान्नोच्यते । अथ प्रतिकूलादिनिर्णयः । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः-"कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित् । तदा न मंगलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥" ज्योतिर्मेधातिथिः-"वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहेऽप्यथ कन्यकायाः । मृत्युर्यदि स्यान्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु मङ्गलं बुधैः ॥" मङ्गलं विवाहः । स्मृतिचन्द्रिकायाम्-"कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्मर्त्यस्य

---

लिखा है, श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रयुक्त करके उसकी अनेक प्रकारोंसे पूजा करके विधिसे दक्षिणा सहित इस प्रकारकी विष्णुकी मूर्तिदान करे कि, जिसके चार भुजा हों, अतिशुद्ध वर्णवाले सुवर्णसे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार धनसे निर्मित की हो, सुन्दर शंख, गदा, चक्र, कमल, पीत वस्त्र, कमलके फूलोंकी मालाको धारण कर रही हो और इस मन्त्रको उच्चारण करे कि, जो मैंने पूर्वजन्ममें विष उपविष तथा शस्त्र आदिसे समागममें पतिको मारा है, उससे प्राप्त होनेवाला दुःख और धनके नाश करनेवाले महाघोर अपयशके तथा वैधव्यआदि अत्यन्त दुःखोंके समूहके नाशके निमित्त तथा सुखके प्राप्तिके निमित्त बहुत सौभाग्यकी प्राप्तिके निमित्त इस सुवर्णसे निर्मित हुई महाविष्णुकी प्रतिमाको हे ब्राह्मण! शक्तिके अनुसार देती हूं, इस दिनसे अब मैं पापोंसे छूटती हूं, इस मंत्रको तीन बार जप करे, फिर एवमस्तु ( इसी प्रकार हो ) इस प्रकार ब्राह्मणके प्रत्यभिवादको स्वीकार करके अपने घरमें प्रविष्ट हो मृगलोचनी कन्याका दाता विधिसे वैवाहिक कर्मको करे, और भी पीपल आदिका विवाह, वृक्षसेचन आदि विधि इस स्थलमें जाननी, विस्तारके भयसे हम नहीं लिखते ॥ अब प्रतिकूलादि निर्णय कहते हैं-ज्योतिर्निबन्धमें गर्गने कहा है कि, निश्चय करने पर यदि किसीकी मृत्यु हो जाय तो विवाह न करे, करनेसे कन्या विधवा होती है । ज्योतिर्मेधातिथिका कथन है कि, वधू और वरके विवाहका निश्चय किये उपरान्त वधू अथवा वरके घर किसी मनुष्यकी मृत्यु होजाय तो उस समय बुद्धिमान् विवाह न करे । स्मृतिचन्द्रिकामें कहा है कि, वाग्दान ( सगाई ) के निश्चय होनेपर पीछे किसी सगोत्री मनुष्यकी मृत्यु हो जाय तो

गोत्रिणः । तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम् ॥" भृगुः–"वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदो यतः ॥" शौनकः–"वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही । पितृव्यस्त्रीसुतो भ्राता भगिनी चाविवाहिता ॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत् ॥ २ ॥" माण्डव्यः–"वाग्दानानन्तरं माता पिता भ्राता विपद्यते । विवाहो नैव कर्तव्यः स्ववंशस्थितिमिच्छता ॥" संकटे तु मेधातिथिः–"वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदा संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ॥" स्मृतिरत्नावल्याम्–"पितुरब्दमशौचं स्यात्तदर्धं मातुरेव च । मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्येषां तु सापिण्डानामाशौचं मासमीरितम् । तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥" ज्योतिःप्रकाशे–"प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परः । शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत् पुनः ॥" शान्तिं विनायकशान्तिम् । तथा च मेधातिथिः–"संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्" इति ॥ "प्रतिकूले न कर्तव्यो गच्छेद्यावदृतुत्रयम् । प्रतिकूलेऽपि कर्तव्य-

---

विवाह न करे; कारण कि, वह विवाह निश्चय स्त्रीवैधव्यकारी होता है । भृगुने कहा है कि, वाग्दानके उपरान्त कन्या वा वरके कुलमें मृत्यु होजाय तो उस समय मंगलको न करे, कारण कि; वह कुलका नाशक होता है, शौनकने कहा है कि, वर वा वधूका पिता, मामा, चाचा, सगा भाई, चाची, चाचाका पुत्र, विवाहित भगिनीकी मृत्यु विवाहमें प्रतिकूल समझनी और कोई औरोंके मरनेको भी प्रतिकूल कहते हैं, इससे इसमें विवाह न करना । माण्डव्यने कहा है कि, वाग्दानके पीछे माता वा भाईकी मृत्यु होजाय तो अपने वंशके हितकी इच्छावाला विवाह न करे । संकट हो तो मेधातिथिने यह लिखा है कि, वाग्दानके पीछे जहां दोनों कुलोंमें किसीकी मृत्यु होगयी हो तो एक वर्षसे उपरान्त विवाह शुभदायी होता है । स्मृतिरत्नावलीमें कहा है कि, पिताके मरण उपरान्त एक वर्षतक अशौच होता है और माता की मृत्युमें छः महीने, स्त्रीकी मृत्युमें तीन महीने और भाई और पुत्रकी मृत्युमें डेढ़ मासतक अशौच होता है और दूसरे सपिंड मनुष्योंका अशौच एक महीनेतक कहा है । उसके पीछे शांतिको करके फिर लग्न(विवाह )को करे । ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि, प्रतिकूल (मरण) के होने पर भी एक महीनेके उपरान्त विवाह करना और गणेश, विनायकशान्ति तथा गोदान करके फिर वाग्दान आदि करना चाहिये । इसी प्रकार मेधातिथिने लिखा है कि, कोई संकट प्राप्त हो तो याज्ञवल्क्य मुनिने गणेशकी शांति लिखी है, उसको करके फिर मंगल कार्यको करे तथा प्रतिकूल हो जाय तो तीन ऋतुतक मंगल न करे, यदि बहुतसे उपद्रव उठें तो

मित्याहुर्बहुविप्लवे ॥ प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् ॥" ज्योतिः-सारे-"दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते ॥ " मेधातिथिः-"पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम् । प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने ॥ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥ २ ॥" अथ रजोदोषे निर्णयः । माधवीये-"प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला । निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहस्रश्रुतिचोदनात् ॥" आरम्भात् नान्दीश्राद्धात् ।'नान्दीमुखं विवाहादौ' इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः ॥ मेधातिथिः-"चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि । भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥ वधूवरान्यतमयोर्जननी चेद्रजस्वला । तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत् ॥ २ ॥ " वृद्धमनुः-"विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ॥ तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः ॥ " गर्गः-"यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला । तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥" नान्दीश्राद्धोत्तरं रजोदोषे तु कपर्दिकारिकासु-"सूतिकोदक्ययोः शुद्ध्यै गां दद्याद्धोमपूर्वकम् । हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनार्चयेत् ॥ प्रत्यृचं पायसं हुत्वा

---

प्रतिकूलमें भी करे और सपिंडके प्रतिकूलमें एक महीना त्याग दे । ज्योतिःसारमें कहा है कि, दुर्भिक्ष राष्ट्रभंग माता पिताके प्राणसंशयमें प्रौढा कन्याके विवाहमें भी अनुकूलता नहीं प्राप्त होती । मेधातिथिने कहा है कि, तीन पुरुषपर्यन्त सगोत्रियोंको प्रतिकूल होता है, इसी प्रकार प्रवेश निष्क्रमण तथा मुण्डन मण्डन ( मण्डप ) में भी प्रतिकूलता समझनी चाहिये । चतुर्थ मनुष्य पर्यन्तके प्रतिकूलमें प्रेतकर्म ( पिण्डदान आदि ) के किये विना अभ्युदय कर्मको न करना चाहिये । इससे पांचवेंका प्रतिकूल दोष चौथेतक जानना, पांचवेमें निवृत्त होजाता है । अब रजोदर्शनके दोषका निर्णय कहते हैं-माधवीयमें लिखा है कि, यदि विवाहके प्रारम्भसे पहिले माता रजस्वला होजाय तो उसकी शांति सहस्र श्रुतिकी प्रेरणासे करनी चाहिये । यह विवाहके आरम्भमें नान्दीमुख श्राद्ध करना, इत्यादि वाक्योंसे प्रारम्भशब्दसे नान्दीमुखका ग्रहण करते हैं । मेधातिथिने कहा है कि, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, विवाह, यज्ञकर्ममें जिसकी स्त्री रजस्वला होजाय उसको शुभ नहीं जानना, वधू वा वरकी माता रजस्वला होजाय तो उसकी शुद्धिके होनेपर मंगलकार्य करे, यह मनुने लिखा है । वृद्धमनु कहते हैं कि, विवाह, यज्ञोपवीत, चूडाकर्ममें यदि माता रजस्वला हो जाय तो जिसके विवाह आदि मंगलकार्यके कल्याणकी इच्छावाले शुद्धि होनेपर करे । गर्गने कहा है कि, जिसके विवाह आदि मंगलकार्योंमें यदि माता रजवाली होजाय तो वह कार्य आयुको क्षीण करता है, इससे उसको उस समय न करे । नान्दीमुख श्राद्धके उपरान्त रजोदर्शनमें कपर्दिकारिकाओंके अनुसार यह लिखा है कि, सूतिका तथा

अभिषेकं समाचरेत् ॥ " इति । सूतकादिसंकटे तु—"कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा पयस्विनीं गां च दत्त्वा विवाहादि कुर्यात् " इति च प्रागुक्तम् ॥ अथैकक्रियानिर्णयः ॥ ज्योतिर्निबन्धे वृद्धमनुः—"एकमातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः । न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥ " एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं मातृभेदाभावात् ॥ नारदः—"पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मण्डनादपि मुण्डनम् ॥ " वराहः—"विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥ " मदनरत्ने वसिष्ठः—"न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेऽपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् । न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः । एकोदरभ्रातृविवाहकृत्यं स्वसुर्न पाणिग्रहणं विधेयम् । षण्मासमध्ये मुनयः समूचुर्न मण्डनं मुण्डनतोऽपि कार्यम् ॥ २ ॥" एतदपवादस्तत्रैव—ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम् । तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥ " सारावल्याम्—"फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहो-

---

( रजस्वला ) की शुद्धिके निमित्त होमपूर्वक गौ दान करे, इससे प्राप्त हुए कर्मके निमित्त शुद्धि उनकी होती है दूसरोंके निमित्त नहीं । यदि अच्छा मुहूर्त न मिले और रजोदर्शन होजाय तो लक्ष्मीका पूजन करके विवाहरूप मंगल करे, मासेभर सोनेकी बनायी हुई लक्ष्मीका पूजन लक्ष्मीसूक्तसे विधिपूर्वक करे तथा ऋचा २ के प्रति खीरकी आहुतियोंसे होम करके अभिषेक करे । यदि सूतकआदि संकट प्राप्त हों तो कूष्माण्डों ( ऋचा विशेषों ) से घीका होम कर दूध देती हुई गौको दे, फिर विवाह आदि कर्म करे, यह पूर्व कह आये हैं । अब एकके कर्मका निर्णय लिखते हैं—ज्योतिर्निबंधमें वृद्धमनुका कथन है कि, एक मातासे उत्पन्न हुए पुरुष स्त्रीका एक वर्षमें तुल्य कर्मको न करे, यदि माताका भेद न हो तो । इससे एक मनुष्यके एक दिनमें दो विवाह न होने चाहिये । कारण कि, यहां माताका भेद नहीं है । नारदने कहा है कि, पुत्रके विवाहके उपरान्त तीन ऋतुतक पुत्रीका विवाह तथा व्रत तथा मण्डन ( मण्डप ) किये उपरान्त मुण्डनको न करे । वाराहने कहा है कि, एकसे उत्पन्न हुई सन्ततिका छः महीनेके भीतर यदि विवाह होजाय तो उनमें एक कन्या तीन वर्षके भीतर वैधव्यको प्राप्त होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं । मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि, पुरुषके विवाह उपरान्त सगोत्री कन्याका विवाह तथा मण्डन करनेपर मुण्डनको तीन ऋतुतक न करे । यदि वर्षका भेद न हो तो सगे भाईके विवाहकर्ममें भगिनीका विवाह तथा मण्डन करनेपर मुण्डन छः महीनोंके भीतर न करे, यह मुनियोंका कथन है । इसका अपवाद भी वहां ही यह लिखा है कि, यदि तीन ऋतुके मध्यमें द्वितीय वर्ष लग जाय तो एक पेटसे पैदा हुएका भी विवाह उत्तम है । सारावलीमें कहा है कि, फाल्गुन चैत्रमासमें सहोदरका विवाह होजाय तो उसके पीछे वर्षके भेदसे विवाह करना चाहिये । तीन ऋतुओंका

पनायने । भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंघनम् ॥ " संहिताप्रदीपे-"ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्धम् ॥ अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं च वधूः प्रवेश्या स्वगृहं च नादौ ॥" मदनरत्ने वासिष्ठः-"द्विशोभनं त्वेकगृहेऽपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु । आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेऽथवाचार्यविभेदतो वा ॥ एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत् । भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २ ॥" ज्योतिर्निबन्धे कात्यायनः-" कुले ऋतुत्रयादर्वाङ्मण्डनान्न तु मुण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् ॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु । लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः । मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मंगलम् ॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम् । मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥ अभिन्नवत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत् । अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे ॥" संकटे तु कपर्दिकारिकासु वराहमिहिरश्च-"उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्र्यन्तरस्योद्वहनं कदाचित् । यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात् ॥" कश्यपः-"मौञ्जीबन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेऽपि वा । पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत

---

विलम्ब न जानना । संहिताप्रदीपमें कहा है कि, पुत्रके विवाह होनेपर छः मासतक पुत्रीका विवाह नहीं करना, कन्याको पूर्व ( पहिले ) श्वशुरके घर भेजकर फिर अपने घर लावे, विना भेजे पूर्व अपने घरमें न लावे । मदनरत्नमें वसिष्ठने कहा है कि, एक घरमें दो शोभन कार्य उत्तम नहीं होते, किन्तु एकको करके फिर नौ दिन पीछे शोभन कार्य उत्तम है । यदि आवश्यक कोई श्रेष्ठ कार्य तथा उत्सव हो तो द्वारपर वा भिन्न भिन्न आचार्योंसे करावे, अर्थात् दोनों कार्य एकसे ही न करावे । एक उदरसे उत्पन्न हुए मनुष्योंके तीन अग्निकार्योंको एक साथ न करे, भिन्न उदरसे उत्पन्न हुओंको दोष नहीं, यह शातातपने लिखा है । ज्योतिर्निबन्धमें कात्यायनका कथन है कि, एक कुलमें मण्डनसे उपरान्त मुंडन तथा प्रवेशसे उपरान्त निर्गम ये तीन ऋतुसे प्रथम इष्ट नहीं । तथा तीन मंगलोंको न करे, और कोई मुनि तो भिन्न वर्षमें लघुकार्यको कर लेना कहते हैं । लघु वा गुरु कार्य हो, जिसका निमित्त प्राप्त हो उस पुत्रके विवाह और प्रवेशको कन्याके विवाहके निर्गम और चूडाकर्मको मुण्डन तथा व्रत और विवाहको मंगल लिखते हैं । मुण्डनको मण्डन उपरान्त न करे, मौंजीबन्धनको दोनों ( मण्डन मुण्डन ) से पीछे करे, किन्तु इन दोनोंमें वर्षके भेद नहीं लेना किन्तु दिनका भेद लेते हैं । कारण कि, दिनका भेद न हो अथवा एक मण्डपमें करनेसे नाश होता है । संकटमें तो कपर्दिकारिकाओंमें वराहमिहिरने यह लिखा है कि, पिता पुत्रीका विवाह करके दूसरे पुत्रका फिर कभी भी विवाह न करे । चौथे दिनतक प्रथम विवाहको पूर्ण करके दूसरे विवाहको कर ले तो कुछ दोष नहीं । कश्यपने कहा है कि, मौंजीबन्धन, विवाह, पुत्रीका विवाह यह छः महीनेके भीतर न करे और जो विभक्त हों

विभक्तानां न दोषकृत् ॥ ” ज्योतिर्निबन्धे-“विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात् । वैधव्यमाप्नोति तदाशु कन्या जीवेत्पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥ तथा-“विवाहमध्ये यदि चेत्क्षयाहस्तत्र स्वमुख्याः पितरो न यान्ति । वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धं स्वधाभिर्नतु दूषयन्ति ॥ ” 'स्वधाभिः' इति श्रुतेश्च ॥ मासिकविषये कालहेमाद्रौ शाट्यायने-“प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा । अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुर्नान्दीमुखं द्विजः ॥ ” वृद्धिं विनापकर्षे दोषमाह तत्रैवोशनाः-“वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥” इति । मेधातिथिः-“प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयाक्रियाम् । आचतुर्थे ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत् ॥” स्मृत्यन्तरे-“सापिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि । पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्ध्युत्तरनिषेधनात् ॥” स्मृतिसारावल्याम्-“भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा । एकस्मिन्मण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम् ॥ ” सोदरविषयमेतत् । यमः-“एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन् वासरे पुनः । विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम् ॥” गार्ग्यः-“भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा । न कुर्यान्मंगलं किंचिदेकस्मिन्मण्डपेऽहनि ॥

---

उनको दोष नहीं लगता । ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, विवाहसे लेकर चतुर्थीकर्मके मध्यमें श्राद्धका दिन वा अमावस्याका दिन प्राप्त हो जाय तो कन्याको शीघ्र ही विधवापन प्राप्त होता है । यदि पति जीवे तो संतति नहीं चलती, तथा विवाहके बीचमें यदि क्षयी ( श्राद्धविशेष ) का दिन आ पड़े तो उसमें स्वतन्त्र पितर नहीं आते, इससे विवाहके बीतनेपर स्वधाओंसे श्राद्ध करे, स्वधाओंसे उस विवाहको दूषित न करना चाहिये । कारण कि, श्रुतिमें कहा है कि, जो कि स्वधाओंसे मंगलकार्यको दूषित करते हैं इत्यादि । मासिकश्राद्ध विषयमें हेमाद्रिमें शाट्यायनका यह कथन है कि, प्रेतश्राद्ध तथा सपिण्डीकी विधिको वह द्विज अपकर्ष ( भिन्नकालमें ) करके भी करे, जो नान्दीमुख करनेको उद्यत हुआ हो । वृद्धिके विना श्राद्धके अपकर्षमें वहां हीं उशनाने यह दोष कथन किया है कि, जो वृद्धिश्राद्धसे रहित पितृश्राद्धोंको करता है वह श्राद्धकर्ता पितरों सहित नरकमें पड़ता है । मेधातिथिने कहा है कि, प्रेतकर्मके किये विना आभ्युदयिक कर्म न करे, यह चौथे गोत्रापत्यमें जानना, पांचवेंमें तो उत्तम होता है । स्मृत्यंतरमें भी कहा है कि, सपिण्डीकरणसे प्रथम जो अपकर्षसे श्राद्ध किये गये हैं उनको फिर अपकर्ष करके करना । कारण कि, वृद्धिश्राद्धके किये उपरान्त निषेध है । स्मृतिसारावलीमें कहा है कि, दो भाई, दो बहन, तथा भाई बहन एक मंडपमें दो मण्डन न करे, यह वाक्य सहोदरोंके विषयमें हैं; कारण कि, यमने कहा है कि, एक उदरसे उत्पन्न हुओंका विवाह तथा मुण्डनके पीछे मण्डन ये एक दिन न करने चाहिये । गार्ग्यने कहा है कि, दो भाई, दो बहन तथा दो भाई बहनका एक मण्डपमें तथा एक दिनमें कोई मंगल कार्य

एकस्मिन्वासरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः । क्षौरं चैव विवाहे च मौञ्जीबन्धनमेव च ॥ २ ॥ " ज्योतिर्विवरणे–"एकोदरयोरेकदिनोद्वहने भवेन्नाशः । नद्यन्तर एकदिने केऽप्याहुः संकटे शुभम् ॥ ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात् । नारीविवाहात्तदहेऽपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः ॥ २ ॥ " भिन्नमातृजयोर्निर्णयः । भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह मेधातिथिः– 'पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे । एकस्मिन्मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा ॥ पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरस्थयोः । भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी भवेत् ॥ २ ॥ " यमयोस्तु विशेषः । भट्टकारिकायाम्–'एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा । कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्त्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥ " ज्योतिर्निबन्धे नारदः–"प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । नैवैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥ नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् । नैकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोरेकजन्ययोः ॥ न पुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन ॥ ॥ २ ॥" इति । कन्यारजोदर्शने निर्णयः । कन्याया रजोदर्शने तु अपरार्के संवर्तः–"माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा

---

न करना और जो कि, एकवार ही उत्पन्न हुए हों उनका क्षौर, विवाह, यज्ञोपवीत ये एक दिनमें ही कर ले । ज्योतिर्विवरणमें कहा है कि, एक उदरसे उत्पन्न हुए दोका विवाह एक दिनमें हो तो नाश होता है और कोई तो अन्यनदीके विषे तथा संकटमें उत्तम मानते हैं। पुरुषके विवाह करनेपर स्त्रीका विवाह तीन ऋतुतक अच्छा नहीं होता, स्त्रीके विवाहसे पुरुषका विवाह तो उस दिनमें भी उत्तम होता है, यह आय कहते हैं । भिन्न मातासे उत्पन्न हुओंका एक दिनमें भी विवाह होता है, यह मेधातिथि लिखते हैं कि, पृथक् २ माताओंसे उत्पन्न हुओंका विवाह एक दिन तथा एक मण्डप तथा पृथक् पृथक् वेदिकाओंपर करे और दो बहन जबतक सप्तपदी हो तबतक शिरपर रक्खी हुई फूलपाट्टिकों[1] ( जाल ) ओंको न देखे । यमके जन्म ( जो कि एक संग उत्पन्न हुए हों ) को तो भट्टकारिकामें यह विशेष लिखा है कि, एक वर्ष एक दिन तथा एकमंडपमें ही साथ उत्पन्न हुई बहन तथा भाइयोंका मंगल करे। ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, प्रतिविवाह ( अदला बदलीसे ) तथा एकके संग दो कन्याओंका तथा एकसे उत्पन्न हुए दो लडकोंका एकसे उत्पन्न हुई दो कन्याओंका विवाह न करे तथा इस प्रकार ( बदला देकर ) विवाह तथा एक बार दो मुण्डन तथा एकसे उत्पन्न हुए दो पुत्रोंको एकसे उत्पन्न हुई दो पुत्री तथा एकके निमित्त दो पुत्री कदाचित् भी न दे । यदि कन्याका रजोदर्शन हो जाय तो अपरार्कमें संवर्तने यह कहा है कि, माता पिता तथा जेठा भाई

---

१ फूलोंका सेरा–और छोटा वस्त्र एक विलस्तका ॥

कन्यां रजस्वलाम् ॥" हारीतः–"पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ॥" देवलात्रिकश्यपाः पूर्वार्धं तदेव । "भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वृषली स्मृता । यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अश्राद्धेयमपांक्तेयं तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥" माधवीये बौधायनः–'त्रीणि वर्षाण्यृतुमती कांक्षेत पितृशासनम् ।' विष्णुः–'ऋतुत्रयमुपास्यैव कन्या कुर्यात्स्वयं वरम् । ' अत्र वरस्य दोषाभावमाह यमः–"कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद्गृहे । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥ एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत्कदाचन । न तु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥" मनुः–"अलंकारं नाददीत पितृदत्तं स्वयंवरे । पितृदत्तं मातृदत्तं स्तेयी स्याद्यदि संहरेत् ॥" वरं प्रत्याह–"पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् । स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिबोधनात् ॥" तत्र प्रायश्चित्तनिर्णयः । अथ प्रायश्चित्तमुक्तमाश्वलायनेन–"कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः । शुद्धिं च कारयित्वा तामुद्वहेदानृशंस्यधीः ॥ पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः । दानावधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोवतीम् ॥ दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्या-

---

ये तीनों रजस्वला कन्याको देखकर नरकमें जाते हैं । हारीतने कहा है कि, जो क्वारी कन्या अपने रक्तको देखती है वह वृषलीवत् होती है और उसका पति भी वृषलीपति कहाता है । देवल, अत्रि तथा कश्यपने कहा है कि, जो क्वारी कन्या अपने रुधिरको देखती है उसके पिताको गर्भहत्या होती है और वह वृषली होती है । जो ब्राह्मण अज्ञानी होकर उस कन्याको विवाहता है वह श्राद्धकर्मसे रहित वृषलीपति तथा पंक्तिबाह्य होता है । माधवीय ग्रन्थमें बौधायनने लिखा है कि, रजस्वला कन्या तीन वर्षतक पिताकी आज्ञामें स्थित रहे । विष्णुने कहा है कि, तीन ऋतुकी उपासना करके कन्या स्वयं पति वरण करे, इसमें पतिको दोषाभाव है । यम कहते हैं कि, कन्या जो बारह वर्षतक दाता ( पिता ) के घरमें रहती है, उसके पिताको गर्भहत्या होती है, वह कन्या स्वयं पतिको वर ले । वह पति भी कभी उस कन्याका तिरस्कार न करे । वह कन्या बन्धकी ( नीच व्यभिचारिणी ) न जानती यह स्वायम्भूमनुने लिखा है । मनुने कहा है कि, यदि कन्या स्वयंवरको वरण करे तो पिताके दिये हुए भूषण आदिको ग्रहण न करे । कारण कि, पिता वा माताके दिये हुए धनको यदि ग्रहण करे तो वह चोरिणी होती है । वरके प्रति भी इस प्रकारका वाक्य है कि, रजस्वला कन्याको विवाह करता हुआ वर उसके पिताको धन दे, वह अपने स्वाम्यसे उस उसको उलंघ दे । इसमें प्रायश्चित्त आश्वलायनने लिखा है कि, रजस्वला कन्याको शुद्ध करके तथा अपनी प्रायश्चित्तसे शुद्धि करके उस कन्याके साथ विवाह करना चाहिये । पिता उस अपनी कन्याके ऋतुधर्मोंको प्रथमसे लेकर गिने तथा दान पर्यंत उस रजस्वला कन्याकी पोषणता करे और विवाहके समय जितने उस कन्याके ऋतुधर्म

पिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥ दद्याद्वा ब्राह्मणेभ्योऽन्नम-तिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीतर्तुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥ उपोष्य त्रिदिनं कन्यां रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् ॥ तामुद्वहन्वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद्विजः ॥ ६ ॥" इति । मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः-'विवाहे वितते यज्ञे होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि । युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ॥ २ ॥" बौधायनसूत्रम्-"अथ यदि कन्योपसाद्यमाना चोह्यमाना वा रजस्वला स्यात्तामनुमन्त्रयेत्"। "पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ। पुमानिन्द्रश्च सूर्यश्च पुमांसं च दधात्वियम्" इति । अथ द्वादशरात्रमलंकृत्य प्राशयेत्पञ्चगव्यमथ शुद्धां कृत्वा विवहेत् । विवाहभेदाः । अत्र गान्धर्वाद्यष्टौ विवाहास्तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया । मनुः-"षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥" चतुरः-आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचान् । तान्-राक्षसवर्ज्यान् । वैश्यशूद्रयोः स एव-'आसुरं वैश्यशूद्रयोः ।' हेमाद्रौ पैठीनसिः-'राक्षसो वैश्यस्य पैशाचः शूद्रस्य ।' प्रचेताः-'पैशाचो संस्कृतप्रसूतानां प्रतिलोमजानां च ।' मनुः-

---

हुए हों उतनी गौओंका संकल्प करे । यदि निर्धन हो तो एक गौ विधिपूर्वक दान करे और यदि अत्यन्त निर्धन हो तो ब्राह्मणोंको दक्षिणा सहित अन्न दे, फिर जिसका ऋतुधर्म व्यतीत हो गया हो ऐसी कन्या वरको दे । कन्या रात्रिमें केवल गौका दुग्ध पान करके तीन दिनतक व्रत करती हुई रहे । रजोदर्शनसे रहित कन्याको रत्नोंके आभूषण दे, उस कन्याको विवाहते हुए द्विजपतिको भी कूष्मांडी ऋचा विशेषसे होम करना चाहिये । मदनपारिजातमें यज्ञपार्श्वने कहा है कि, विवाहमें यज्ञमें जब होम समय हो तब उस ऋतुमती कन्याको देखकर यज्ञ करनेवाला इस प्रकार करे कि उस कन्याको नहवाय विधिपूर्वक पूजन करे, फिर चौंटलियोंकी आहुति देकर विवाहका होम करे । बौधायनसूत्रमें कहा है कि, यदि कन्या विवाहके समयमें वा पतिके घर जानेके समयमें रजोवती हो जाय तो उसके निमित्त यह मंत्र पढ़े कि, मित्र और वरुण दोनों पुरुष हैं, इंद्र सूर्य भी दोनों पुरुष हैं, इससे यह स्त्री पुरुषको धारण करे, फिर बारह राततक स्त्रीको अलंकृत कर पंचगव्य पिलावे, फिर शुद्ध करके उसके संग विवाह कर ले । यहां गांधर्व आदि आठों विवाह हैं, उनकी व्यवस्था बड़े बड़े दूसरे ग्रंथोंसे जाननी चाहिये । मनुने कहा है कि, ब्राह्मणको क्रमसे छः विवाह उत्तम हैं और क्षत्रीको पिछले चार ( आसुर, गांधर्व, राक्षस, पैशाच ) उत्तम कहे हैं और ये ही चारों राक्षसको त्यागकर वैश्य और शूद्रको भी श्रेष्ठ हैं । मनुने कहा है कि, वैश्य शूद्रको आसुरविवाह उत्तम है । हेमाद्रिमें पैठीनसिस्मृतिमें कहा है कि, वैश्यको राक्षस, शूद्रको पैशाच विवाह उत्तम है । प्रचेताने कहा है कि, जिनका संस्कार नहीं होता ऐसी प्रतिलोम जातिको पैशाचविवाह उत्तम है । मनुने कहा है कि, क्षत्रियके

'राक्षसस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः। क्षत्रियादेः संकटे पैशाचमाह माधवीये वत्सः–"सर्वोपायैरसाध्या स्यात्सुकन्या पुरुषस्य या। चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहः स्थिता॥" गान्धर्वादिविवाहेष्वप्युदकपूर्वकं दानमाह। तत्रैव यमः–"नोदकेन न वा वाचा कन्यायाः पतिरुच्यते। पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं सप्तमे पदे॥" पराशरमाधवीये देवलोऽपि–" गान्धर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः। कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थेनाग्निसाक्षिकः॥" त्रैवर्णोक्तेर्गान्धर्वादौ विप्रवर्जमधिकार उक्तः। तत्रैव परिशिष्टे–"गान्धर्वासुरपैशाचा विवाहा राक्षसश्च यः। पूर्वं परिश्रयस्तेषु पश्चाद्धोमो विधीयते॥" अतो होमादावकृते भार्यात्वाभावाद्वरान्तराय देया। तथाच तत्रैव वसिष्ठबौधायनौ–"बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता। अन्यस्मै विधिवद्देया तथा कन्या तथैव सा॥" इति। अत्र मन्त्रसंस्काराभावेऽन्यस्मै दानस्य सर्वविवाहेषु साम्याद्बलादपहारे राक्षसपैशाचयोर्विशेषवचनं व्यर्थम्। तेन तयोर्यदि न संस्कृता संस्कृता वेत्यावृत्त्य कन्यानुमत्यभावेऽन्यस्मै देयेति व्याख्येयम्। मदनपारिजाते नारदः–"पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्। तेषां च निष्ठा

---

आसुर, वैश्य और शूद्रको पैशाच विवाह निंदित है और संकटमें क्षत्री आदिकोंको भी पैशाच विवाह माधवीयमें वात्सऋषिके वाक्योंसे लिखा है, जो सुंदर कन्या संपूर्ण उपायोंसे पुरुषको न प्राप्त हो सके तो एकांतमें स्थित हुई उस कन्याको चोरीसे भी विवाह लेना, गान्धर्व आदि विवाहोंमें भी संकल्पपूर्वक दान माधवीय आदि ग्रन्थोंमें लिखा है। जल वा वाणीके दानसे कन्याका पति नहीं हो सकता, किन्तु विवाहके संस्कारसे सप्तपदीपर ही पति होता है, ऐसा यमका कथन है। पराशर माधवीयमें देवलने कहा है कि, गान्धर्व आदि विवाहोंमें भी तीनों वर्ण समर्थवान् हों तो विवाहकी विधिको अग्निकी साक्षीसे सम्पादन करें। इस वाक्यमें तीन वर्णोंके कथनसे गान्धर्व आदि विवाहोंमें ब्राह्मणसे भिन्नका ही अधिकार लिखा है। वहां ही परिशिष्टमें कहा है कि, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस जो विवाहमें कन्या प्रथम पतिका आश्रय ले पीछे हवन करे, इससे होम आदिके विना किये वह पतिके आश्रयमात्रसे भार्या नहीं हो सकती। इससे दूसरे वरको दे देनी चाहिये, सोई वहां ही वसिष्ठ और बौधायनके वाक्य हैं कि, बलसे हरी हुई कन्याका यदि मंत्रोंसे संस्कार न हुआ हो तो दूसरे वरको विधिपूर्वक दे देनी। कारण कि, जैसे कन्या है वैसी ही वह है, ( यहांपर ) मंत्रोंसे संस्कारके अभावमें दूसरे वरको कन्याका दान सब विवाहमें तुल्य है। इससे बलसे हरण करनेमें और राक्षस पैशाचमें यह विशेष वाक्य प्राप्त हो जाता है। इससे राक्षस और पैशाच विवाहमें संस्कार की हुई वा न की हुई कन्याकी सम्मतिके विना औरको दे देनी, यही अर्थ करना। मदनपारिजातमें नारदने कहा है कि, विवाहके मंत्र ही नियमसे स्त्री बननेके लक्षण हैं

विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥ " स्मृतिचन्द्रिकायामपरार्के चैवम् ॥ आशौचे तु याज्ञवल्क्यः-" दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ॥ आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥" केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तम्-" दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत् । विवाहविष्णोः कन्याया लाजहोमादिकर्मणि ॥ " इति ॥ " व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ " इति विष्णुवचनाच्च । प्रारम्भस्तेनैवोक्तः-"प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥" इति ॥ वरणमिति मधुपर्कपरम् ॥ "गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः । पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः ॥" इति ब्राह्मोक्तेः॥मधुपर्कात्पूर्वं तु भवत्येवाशौचामिति शुद्धिविवेकः॥ रामाण्डारभाष्येऽप्येवम् ॥ नान्दीमुखदिनावधिः । नान्दीमुखावधिश्च स्मृत्यन्तरे-"एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः । त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥" आरम्भाभावेऽपि लग्नान्तराभावे गद्यविष्णुः-'न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपि।' इति ॥ अन्तरासूतके निर्णयः । अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः-" अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् । गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुध्यति

---

और उनकी पूर्ति विद्वानोंको विवाहके सातवें पदमें जाननी चाहिये । स्मृतिचन्द्रिका और अपरार्कमें भी इसी प्रकार लिखा है । विवाहकालमें अशौच हो जाय तो याज्ञवल्क्यने यह कहा है कि, दान, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशका उपद्रव और महाकठिन आपत्तिमें उसी समय शुद्धि लिखी है, यह अपेक्षा हो तो ब्रह्मपुराणमें यह कहा है कि, कन्याके दानमें दाताकी और ( वर ) की और विवाहके लाजाहोम आदिकर्ममें कन्याकी उसी कालमें शुद्धि होती है । और विष्णुने यह कहा है कि, व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम,पूजन, जपके प्रारम्भ करनेपर सूतक नहीं होता और आरम्भसे प्रथम सूतक होता है । प्रारम्भ भी विष्णुने यह लिखा है कि, यज्ञमें वरण व्रत और सत्रका संकल्प विवाह आदिमें नान्दीमुख श्राद्धमें पाक हो जाना इनको प्रारंभ कहते हैं। यहां वरणसे मधुपर्क लेना चाहिये । ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, जिस ऋत्विजने यजमानसे मधुपर्क ग्रहण किया हो और पीछेसे अशौच हो जाय तो वह अशौच नहीं प्राप्त होता और मधुपर्कसे प्रथम तो अशौच लगता है, यह शुद्धिविवेकमें कहा है। रामाण्डार भाष्यमें भी इसी प्रकार लिखा है । नांदीमुख श्राद्धकी अवधि दूसरी स्मृतिमें यह कही है कि, यज्ञमें २१ दिन, विवाहमें १० दिन, मुण्डनमें तीन ३ दिन, यज्ञोपवीतमें छः ६ दिन प्रथम नान्दीमुख करना कहा है । प्रारम्भके अभावमें विष्णुने जो यह कहा है कि, पहिले प्रारम्भ किये हुए देवप्रतिष्ठा और विवाहमें अशौच नहीं लगता । इसमें मदनपारिजात ग्रन्थमें विष्णुने यह प्रायश्चित्त कहा है कि, प्रारम्भ किये कर्मकी शुद्धिके निमित्त कूष्माण्ड ( काशीफल ) और घृतसे हवन करे

सूतकी ॥" संग्रहेऽपि-" संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम् । चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् ॥ यदैव सूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया ॥ २ ॥ " अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते-" विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके ॥ परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥ " परैरसगोत्रैः ॥ " भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरामृतसूतके । अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे तु शुचयः स्मृताः ॥" एतदाशौचात्पूर्वमपृथक्कृतान्नविषयम् ॥ तत्र शेषमन्नं त्याज्यमित्यर्थः । पृथक् कृतेषु तु बृहस्पतिराह-'विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके । पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः ॥ " इति ॥ धर्मार्थविवाहः । धर्मार्थं विवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते-"ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यादिकं चोद्वाहयेद्द्विजम् । तेनाप्याप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम् ॥ " अपरार्के दक्षः-" मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः । यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ " मदनरत्ने भविष्ये-" विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणम् । यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥" कन्यागृहे भोजननिषेधः। कन्यागृहे भोजननिषेधोऽपि तत्रैव-

---

और गोदान करे और पञ्चगव्यको पान करे, फिर सूतकवाला पवित्र होता है । संग्रहमें भी कहा है कि, यदि संकटकी प्राप्तिमें सूतक हो जाय तो कूष्माण्डी ऋचाओंसे घृतका हवन करके दूध देती हुई गौका दान करे । मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा आदि करनेके समय यदि एक सूतक हो जाय तो नान्दीमुख श्राद्ध करे । अन्न आदिके स्पर्शमें षट्त्रिंशत्के मतसे यह विशेष लिखा है कि, विवाह उत्सव और यज्ञके मध्यमें यदि मरण और सूतक हो जाय तो सूतकवालोंसे अन्य पुरुष, अन्नको दे तो ब्राह्मणोंके भोजन करनेमें दोष नहीं है । यदि ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समय ही मरण और सूतककी प्राप्ति हो जाय तो दूसरेके घरके जलसे भोजनके उपरान्त आचमन करनेसे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है, यह भी तब है, जब अशौचसे प्रथम अन्न पृथक् न किया हो । उस समय वहां शेष अन्न त्यागने योग्य है और पृथक् करनेमें तो बृहस्पतिने यह कहा है कि, विवाह उत्सव यज्ञके मध्यमें यदि मरणसूतक हो जाय तो प्रथम संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं । धर्मार्थ विवाह करनेमें तो महाभारतमें यह फल लिखा है कि, अपने धनकी शक्ति जानकर जो एक भी ब्राह्मणका विवाह कर दे तो शिवजीका भक्त मनुष्य वैकुण्ठको जाता है । अपरार्कमें दक्षने कहा है कि, माता पितासे हीन बालकका जो संस्कार और विवाह करता है उसका पुण्य प्रमाण नहीं कहा जा सकता । मदनरत्नमें भविष्यपुराणका कथन है कि, विवाह आदि कर्म समयमें उसके सिद्ध होनेके निमित्त जो धर्मिष्ठ धन आदि देता है उसको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है । कन्याके घरमें भोजन करनेका निषेध भी वहां ही कहा है कि, जिस कन्याके संतान न हो उस कन्याके

"अप्रजायां तु कन्यायां न भुञ्जीत कदाचन । दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचति ॥" अपरार्के आदित्यपुराणे–"विष्णुं जामातरं मन्ये तस्य कोपं न कारयेत् । अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ॥ ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वाश्नीयात्कदाचन । अथ भुञ्जीत मोहाच्चेत्पूयाख्ये नरके वसेत् ॥" तत्रैव कश्यपः–"अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा । शस्तं तन्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ॥"यन्त्रनिर्मुक्तं नूतनम् । विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे गालवः-"विवाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले । असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं द्विजन्मभिः ॥ एकयानसमारोहमेकपात्रे च भोजनम् । विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् ॥ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३ ॥" मिताक्षरायामप्येवम् ॥ रत्नमालायाम्–"मूलमैत्रमृगरोहिणीकरैः पौष्णमारुतमघोत्तरान्वितैः । भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनविधिर्विधीयते ॥" अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ज्योतिषे–"विपत्तारे गुडं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम् । प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागं दद्यात्रिजन्मसु ॥ चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तन्दुलांश्च । धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं प्रदे-

---

घर भोजन कभी न करे, दौहित्रके मुखको देखकर तो किस निमित्त शौच करे । अपरार्कमें आदित्यपुराणका कथन है कि, जामाता ( जमाई ) को मैं विष्णु मानता हूं, उसको कभी क्रोध न करावे और जिस कन्याके संतान न हो उस कन्याके घर भोजन न करे । वेदके मंत्रोंसे कन्याका दान करके उसके घर भोजन न करे, जो मोहसे भोजन करता है उसको पूय नाम नरकमें जाना होता है । वहां ही कश्यपने कहा है कि, विना फटा नवीन वस्त्र ब्रह्माने मंगलके कार्योंमें कार्यके समयतक पवित्र लिखा है, सदैव नहीं । विवाहके मध्यमें स्त्रीके संग भोजन करनेमें दोष नहीं, यही हेमाद्रिके प्रायश्चित्त खंडमें गालवने लिखा है कि, विवाहके समय, यात्रामें, मार्गमें और चोरोंकी व्याकुलतामें ब्राह्मण असहाय ( अकेला ) हो तो द्विजातिको इस कृत्यमें दोष नहीं यह करे, एक यान ( सवारी ) में स्थिति, एक पात्रमें भोजन करनेमें विवाह मार्ग और यात्रामें ब्राह्मण दोषभागी नहीं होता है, अन्यथा करे तो दोष लगता है और चान्द्रायण करनेसे पवित्र होता है । मिताक्षरामें भी इसी प्रकार लिखा है । रत्नमालामें कहा है कि, मूल, अनुराधा, मृगशिर, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, उत्तरा इन नक्षत्रोंमें, मंगल शनैश्चर सूर्य इनसे भिन्नवारोंमें विवाहका विधान किया है । अनिष्ट नक्षत्र आदिमें दान ज्योतिषमें लिखा है कि, विपत्तारा हो तो गुड, निधन हो तो तिल और सोना, प्रत्यरि हो तो लवण, तिथि विरुद्ध हो तो चावल, करण विरुद्ध हो तो धान्य ( गेहू आदि ), वार योग विरुद्ध हो तो सुवर्ण देना चाहिये । विवाहमें मण्डप

यम् ॥ २ ॥ " विवाहमंडपनिर्णयः । विवाहमण्डपमाह वसिष्ठः-"षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् । मण्डपं तोरणैर्युक्तं तत्र वेदिं प्रकल्पयेत् ॥ अष्टहस्तं तु रचयेन्मण्डपं वा द्विषट्ककरम् ॥" दैवज्ञमनोहरः-"चित्रा विशाखा शततारकाश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ॥" हेमाद्रौ व्यासः-"कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् । तत्संबन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥ " यावरकं 'चिकसा' इति प्रसिद्धम् ॥ "वैवाहिके तु दिवसे शुभे वाथ तिथौ शुभे ॥ चातुर्थिके प्रकुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥" वेदिमाह नारदः-"हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णां वामभागे तु सद्मनि ॥ समां तथा चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भहंसशुकादिभिः ॥ एवंविधामारुरुक्षेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥ २ ॥ " इति । सप्तर्षिमते-"मंगलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्व्यूनहस्तो दशावधि ॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता ॥ " हस्तो वध्वाः । सोपानं पश्चिमतः उपरिभागे उक्तपरिमाणाद्भिन्नम् ॥ अथ मृदाहरणम् । ज्योतिर्निबन्धे नारदः-"कर्तव्यमङ्ग-

---

वसिष्ठने यह लिखा है कि, १६ सोलह हाथका मण्डप रचे, चार द्वार और वन्दनवारसे शोभित करे, उसमें वेदी निर्माण करे, अथवा ८ वा १२ हाथका मण्डप रचे । दैवज्ञमनोहरने कहा है कि, चित्रा, विशाखा, शतभिषा, अश्विनी, ज्येष्ठा, भरणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा नक्षत्रोंको त्यागकर शेष नक्षत्रोंमें तल, वेदी, दान, कण्डन, मंडप निर्माण करना उत्तम है । हेमाद्रिमें व्यासने कहा है कि, छड़ना दलना ( जौ काण्डवटना ) मण्डप मृत्तिकाकी वेदी गृहके चित्राम और विवाह सम्बन्धी अन्यत्र जाना वा आना ये सब विवाहके नक्षत्रमें करे । विवाहके योग्य दिनमें शुभतिथि और शुभ मुहूर्त्तमें शास्त्रोंके अनुसार चतुर्थीकर्म करे । नारदमुनिने वेदी इस प्रकार लिखी है कि, एक हाथ ऊंची और चार हाथ लम्बी व चौड़ी चारों ओरसे चौकोर सुंदर चार स्तंभोंसे युक्त गृहके वामभागमें वेदी निर्माण करे; जो ऊपरसे तुल्य हो, जिसकी चारों दिशाओंमें सीढी हों और जो पूर्व वा उत्तरकी ओरको ढलती हो, जिसमें केलेके स्तम्भ हों, चित्रामके हंस और शुक आदि चर्चित किये हों, अग्निस्थापित की हुई उस वेदीपर कन्या और वर बैठे । सप्तर्षिके मतमें यह कहा है कि, सम्पूर्ण मंगल कर्मोंमें घरके प्रमाण ( अनुसार ) मंडप निर्माण करे । १६ सोलह हाथका वा दो २ हाथ कम दश हाथ पर्यंत मण्डपको निर्माण करना चाहिये, जिसके मध्यमें चार स्तम्भोंसहित वेदी निर्माण करे । और प्रमाणमें हाथ लड़कीका ले, पश्चिमकी ओर सीढी बनावे, वह ऊपरके परिमाणसे भिन्न है । अब मृत्तिकानयन कहते हैं-ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, सम्पूर्ण मंगल कार्योंमें प्रथम

लेष्वादौ मंगलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा ॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये । सम्यग्गृहाण्यलंकृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् । तत्र मृत्तिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः ॥ मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत् । अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम् ॥" शौनकः-"आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च । हित्वान्यत्र विधातव्यं मङ्गलेऽङ्कुरवापनम् ॥" बृहस्पतिः-"आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम् ॥" तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं च कार्यम् । ज्योतिःप्रकाशे-"चतुर्थो मण्डपः श्रेष्ठः सप्तमः पञ्चमस्तथा । नवमैकादशौ श्रेष्ठौ नेष्टौ षष्ठतृतीयकौ ॥ विवाहभे स्वोदये वा कन्यावरणमाचरेत् ॥" वरस्यापि वरणनिर्णयः । वरस्यापि वरणमाह चण्डेश्वरः-"उपवीतं फलं पुष्पं वासांसि विविधानि च । देयं वराय वरणे कन्याभ्रात्रा द्विजेन वा ॥" इति ॥ वाग्दानात्तरं वरमरणे । वाग्दानोत्तरं वरमरणेऽपरार्कस्मृतिचन्द्रिकायां वसिष्ठः-"अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि । न च मन्त्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥" यत्तु नारदः-"उद्वाहितापि सा कन्या न चेत्संप्राप्तमैथुना । पुनः संस्कारमर्हेत यथा कन्या तथैव

---

मंगलके निमित्त जौको बोवै । नौवें सातवें पांचवें तीसरे दिन बीजके नक्षत्र और अच्छे दिन और श्रेष्ठ लग्नके उदयमें चन्दोवा, ध्वजा, बन्दनवारसे घरको अलंकृत करके बाजे और नृत्यसहित पूर्व वा उत्तरदिशामें जाकर रेतली चिकनी मृत्तिकाको लेकर फिर घरपर लौट आवे, मिट्टी वा बांसके पात्रमें उसे स्थित करे, अनेक बीज जल और फूल उसमें डाले । शौनकने कहा है कि, गर्भाधान, पुंसवन आदि गर्भके संस्कार जातकर्म नामकर्मको त्यागकर मंगलके संपूर्ण कर्मोंमें अंकुर बोवे । बृहस्पतिने कहा है कि, आवश्यक कार्योंमें उसी काल अंकुरोंको बोवे और इस पूर्वोक्त मुहूर्तमें ही सगाई और हलदी लेपन करे । ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि, चौथा सातवां पांचवां नववां ग्यारहवां मंडप[1] श्रेष्ठ है, छठा तीसरा उत्तम नहीं, विवाहके नक्षत्रमें वा उसके नक्षत्र उदयमें कन्याका वरण करे । वरका भी वरण चण्डेश्वरने यह लिखा है कि, यज्ञोपवीत फल फूल अनेक प्रकारोंके वस्त्र वरके वरण ( सगाई ) में कन्याका भ्राता वा ब्राह्मण वरको दे । वाग्दानके उपरान्त वर मरजाय तो अपरार्कस्मृतिचंद्रिकामें वसिष्ठने यह कहा है कि, जल वा वाणीसे वाग्दान करनेपर वर मरजाय तो वह कन्या मंत्रोंसे नहीं विवाही गयी, इससे यह पिताकी कुमारी है । जो नारदने कहा है कि, विवाही गयी कन्याके संग मैथुन ( पतिका संग ) न हुआ हो तो वह फिर संस्कारके योग्य है । कारण कि, जैसी वह कन्या थी वैसे ही वह है और जो कात्यायनने यह कहा

---

१ आठ हाथसे लेकर बीस हाथ तक सात, पच्चीस हाथ, पचास हाथ, सौ हाथ, सहस्र हाथक ऐसे ग्यारह मण्डप होते हैं, चौथा चौदह हाथका, पहले दोनों, और आठवां न विहित है न निषिद्ध है ॥

सा ॥" इति ॥ यत्र कात्यायनः-"वरो यद्यन्यजातीयः पतितः क्लीब एव च । विकर्मस्थः सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोऽपि वा ॥ ऊढापि देया सान्यस्मै सहावरणभूषणा ॥ " इति ॥ इदं कलौ निषिद्धम् । 'देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते ' इत्यादिपुराणे कलौ निषेधात् दत्ताशब्द ऊढापरः । 'ऊढायाः पुनरुद्वाहम्'इति हेमाद्रावुक्तेः ॥ अत एव सगोत्रसपिंडादिविवाहेऽपि-'भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव' इत्युक्तम् ॥ देशान्तरगमने । देशान्तरगमने तु कात्यायनः-" वरयित्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषो यदा । ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्यान्यं वरयेद्वरम् ॥ " अपरार्के नारदोऽपि-"प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशान्तरं व्रजेत् । त्रीनृतून् समतिक्रम्य कन्याऽन्यं वरयेद्वरम् ॥ " शुल्कदाने तु मनुवसिष्ठौ-"कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥ " चन्द्रिकायां कात्यायनः-"प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयान्यस्मै विधानतः ॥ अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै । पूर्वागतश्च सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम् ॥ पश्चाद्वरेण यद्दत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः ।

---

है कि, यदि वर भिन्न जातिका हो ,पतित हो, नपुंसक हो, कुकर्मी वा दीर्घरोगी हो, अपने गोत्रका हो, शूद्र हो तो विवाही हुई कन्या भी वस्त्र और अन्नसहित अन्यको देदेनी चाहिये, परन्तु यह बात कलियुगमें वर्जित है । क्योंकि, आदित्यपुराणमें यह निषेध है कि, देवरसे सुतकी उत्पत्ति और दी हुई कन्याका दान कलियुगमें निषिद्ध है। यहां दत्ताशब्दसे विवाही कन्याका ग्रहण है, कारण कि, हेमाद्रिमें विवाही हुई कन्याके पुनर्विवाहका निषेध किया है, इसीसे अपने गोत्रकी वा सपिंडकी कन्याके संग विवाह होजाय तो भोगसे उसे त्यागकर माताके तुल्य उसकी पालना करे, यह लिखा है और कहीं भी पुनर्विवाह नहीं लिखा । देशान्तर गमनमें कात्यायनने कहा है कि, जो वर कन्याको वरकर पीछे देशान्तरमें चला जाय वा नष्ट होजाय तो तीन ऋतु ( छः मास ) ओंके बीतनेपर कन्या और वरको वर ले । अपरार्कमें नारदने भी कहा है कि, जो वर कन्याका प्रतिग्रह लेकर देशान्तरमें चला जाय तो तीन ऋतुओंके अनन्तर कन्या और वरको वर ले, ( यह वाग्दानमें जानना ) । शुल्क ( मोल ) के दानमें मनु और वसिष्ठने यह लिखा है कि, जिस कन्याका शुल्क देदिया हो वहां यदि शुल्क देनेवाला मृतक होजाय और यदि कन्या स्वीकार करे तो वह कन्या उसके भाईको देदेनी चाहिये । चन्द्रिकामें कात्यायनने कहा है कि,जो वर कन्याको शुल्क वा और धन देकर चला जाय तो वह कन्या एकवर्षतक रखनी,फिर विधिसे दूसरेको दे देनी । जो कन्या अनेकोंको वाणीसे दी हो और विवाह न किया हो तो जो सबसे प्रथम आवे और जो सबसे छोटा हो वह उसीको प्राप्त होती है और पिछले वरने जो शुल्क दिया हो उस

अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत् ॥ ३ ॥ ” याज्ञवल्क्यः-“सकृत् प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् । दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥” पूर्वस्य दोषसत्त्वे इदमिति विज्ञानेश्वरः ॥ सम्बन्धतत्त्वे वसिष्ठः-“कुलशीलविहीनस्य पश्चाद्धि पतितस्य च । अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वेषधारिणाम् ॥ दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च ॥” मनुः-“षण्ढान्धबधिरादीनां विवाहोऽस्ति यथोचितम् । विवाहासंभवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा ॥ पितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतेषु च । विवाहाधानयज्ञादौ परिवेदो न दूषणम् ॥ २ ॥ ” अन्यद्वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते इति दिक् । अत्र नान्दीश्राद्धे विशेषं तदधिकारविशेषं चाग्रे वक्ष्यामः । इदं चाद्यविवाहे पिता कुर्याद्द्वितीयादौ वर एव । “नान्दीश्राद्धं पिता कुर्या-

---

शुल्कको वह कन्या दे दे और विवाहके होनेपर पीछे भी पहिला वर अपने दिये शुल्कका ग्रहण कर ले ॥ याज्ञवल्क्यने कहा है कि, एकवार ही कन्यादान होता है, उसको जो हटावे वह चोरके दण्डयोग्य होता है । यदि प्रथम वरसे दूसरा वर उत्तम मिल जाय तो दी हुई कन्याको भी हर ले, इसमें विज्ञानेश्वर कहते हैं कि, प्रथम वरमें कोई दोष हो तब यह है । सम्बंधतत्त्वग्रंथमें वासिष्ठने कहा है कि, कुल और शीलसे हीनको और सगाईके उपरांत पतितको, मिरगीवाले और विधर्मीको और रोगीको और वेषधारी ( योगी आदि ) को और सगोत्रीको वाणीसे दी हुई कन्याको हर लेना चाहिये । मनुने कहा है कि, नपुंसक, अंधे, बहिरे आदिका यह उचित विवाह है कि, उनके विवाहके असंभवमें उनके छोटे भ्राताको कन्या विवाह दे, चाचाका पुत्र हो, वा सौतका पुत्र हो, वा दूसरी स्त्रीका पुत्र हो तो भी विवाह अग्न्याधान, यज्ञ आदिमें परिवेदन ( बड़े भाईके विवाह होनेके पूर्व छोटेसे विवाह करना ) करनेका दोष नहीं लगता और जो कुछ यहां कहना है उसको विस्तारके भयसे नहीं कहते । यह नान्दीमुख श्राद्धका विशेष और उसके अधिकारियोंकी विशेषता आगे लिखेंगे। यह नान्दीमुख श्राद्ध पहिले विवाहमें पिता करे और दूसरे आदि विवाहोंमें वर स्वयं करे । कारण कि, यह स्मृतिमें

---

१-“मनुने कहा है कि, यह हमने पूर्वजन्मोंमें भी नहीं सुना कि, शुल्कके नामसे मोल लेकर और छिपकर कन्याको बेचना, औरको दिखाकर जो दूसरी कन्या वरको दीजाती है उन दोनों कन्याओंके एक शुल्कसे वर विवाह ले यह मनुने लिखा है कि, बुद्धिमान्को चाहिये किसीको कन्या देकर फिर औरको न दे जो देता है उसको पुरुषके निमित्त झूँठ बोलनेका पाप लगता है और यह भी लिखा है कि, पशुके निमित्त झूँठ बोलनेमें पांच और मनुष्यके निमित्त असत्य बोलनेमें सहस्र हत्याका दोष होता है यह न और आचार्योंने किया न साधुजन करते हैं कि, औरको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके औरको दे दें और राजा और पंडितका वाक्य और कन्याका दान ये तीनो एक बार ही होते हैं । भारतमें भी इसी प्रकार लिखा है॥”

द्याद्ये पाणिग्रहे पुनः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव तु नान्दिकम्" इति स्मृतेः ॥ त्रिकाण्डमण्डनोऽपि—"पित्रोस्तु जीवतोः कुर्यात्पुनः पाणिग्रहं यदा । पितुर्नान्दीमुखं श्राद्धं नोक्तं तस्य मनीषिभिः ॥" रेणुकाकारिकायाम्—"उक्तकाले विवाहांगं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता । देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्र गत्वा भवेदिदम् ॥" लग्नघटीस्थापनम् । लग्नघटीस्थापनमाह नारदः—"षडंगुलमितोत्सेधं द्वादशांगुलमायतम् । कुर्यात्पातालवत्ताम्रपात्रं तद्दशभिः पलैः ॥ ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे मृत्पात्रे वाथवा शुभे । मण्डलार्धोदयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥" तत्र मन्त्रः—"मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । भवभावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम् ॥" इति । मधुपर्कः । वरस्य मधुपर्कमाह याज्ञवल्क्यः—"प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः । प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः ॥" अत्र विशेषो गृह्यपरिशिष्टे—"वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखागृह्यचोदितः । मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेऽपि दातरि ॥" अत्र वरदातृशब्दौ ऋत्विगाद्युपलक्षणम् । तदाहुः—'अर्च्यशाखया मधुपर्कः' इति । 'अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखया मधुपर्कः' इति याज्ञिकाः । जयन्तस्तु—'वरणवत्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्कः' इत्याह । तत्तु

---

है कि, प्रथम विवाहमें पिता नान्दीमुख श्राद्ध करे और उसके आगेके विवाहोंमें वर स्वयं करे । त्रिकाण्डमण्डनमें भी कहा है कि; पिता माताके जीते हुए फिर विवाह हो तो उसके पिताको नान्दीमुख श्राद्ध करना विद्वानोंने नहीं लिखा । रेणुकाकारिकामें कहा है कि, शास्त्रमें कहे समयमें विवाहका अंग नान्दीमुख श्राद्ध पिताको स्वयं करना चाहिये । विदेशमें विवाह हो तो वहां जाकर ही नान्दीमुख श्राद्ध करे । नारदमुनिने लग्नघटीका स्थापन ऐसा लिखा है कि, छः अंगुल ऊंचा और बारह अंगुल चौडा दशपल तांबेका पात्र पातालयंत्रके समान निर्माण करे, तांबेके पात्रको वा मृत्तिकाके पात्रको जलसे पूर्ण कर दे, जब सूर्यका मंडल अर्ध उदय हो तब उस पात्रको जलमें डालकर इस मंत्रका पाठ करे कि, तू यंत्रोंमें मुख्य है, ब्रह्माने तुझको प्रथम रचा है और वर कन्याके शुभाशुभके निमित्त लग्नसमयके साधनका तुम ही कारण हो । याज्ञवल्क्यने वरको मधुपर्क लिखा है कि, अपने घरपर आये हुए ये छः मनुष्य प्रतिवर्ष मधुपर्कसे पूजन करने योग्य हैं । स्नातक ( ब्रह्मचारी ), आचार्य, राजा, मित्र, वर और यज्ञके ऋत्विज । इसमें विशेष गृह्यपरिशिष्टमें यह कहा है कि, वरकी जो शाखा हो उसीकी शाखासे कर्म और मधुपर्क करने चाहिये । यह वरदाता शब्द ऋत्विगादिका उपलक्षण है; सोई कहा है कि, अर्च्यकी जो शाखा हो उसीका मधुपर्क होता है, यह याज्ञिक कहते हैं । जयंत तो यह कहते हैं कि, वरणके तुल्य यजमानकी शाखासे ही मधुपर्क होता है, परंतु वृद्ध

नाद्रियन्ते वृद्धाः । अत्र ' पञ्चाशता भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः' इत्यादिगृह्यपरिशिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं मधुपर्कादिविधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः ॥ कन्यादाने प्रपितामहपूर्वकमित्युक्तं स्मृत्यर्थसारे-"नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम् ॥ " नान्दीमुखे इति बह्वृचाद्यतिरिक्तविषयम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे पित्राद्यानुलोम्याम्नानात् ॥ व्यासः-"भुक्त्वा समुद्वहेत्कन्यां सावित्रीग्रहणं तथा ॥ उपोषितः सुतां दद्यादर्चिताय द्विजाय तु ॥ " भुक्त्वेति मधुपर्कैवधभोजनपरम् ॥ गृह्यपरिशिष्टे-" कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो विधीयते । प्रत्यङ्मुखा वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः ॥ " मदनरत्ने ऋष्यशृङ्गः--"वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद्विद्वान्कन्यायाश्चैवमेव हि ॥ तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् । मधुपर्कार्चितायैनां तस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् । गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय । भूमिं गां चैव दासीं च वासांसि च स्वशक्तितः ॥ महिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि । ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् ॥ यथाचारं विधेयानि माङ्गल्यकुतुकानि

---

इसका आदर नहीं करते। यहां पचास कुशाओंका ब्रह्मा, उससे आधा विष्टर लिखा है, इत्यादि विष्टर आदिका लक्षण और मधुपर्क आदिकी विधि अपने २ गृह्यसूत्रमें जाननी चाहिये ।[1] स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि, कन्याके दानमें प्रतितामहका नाम प्रथम उच्चारण करे, नान्दीमुख विवाहमें प्रपितामह आदिका नाम लेना चाहिये और दूसरे कर्मोंमें पिता आदिका नाम लेना । यह नान्दीमुखका कथन बह्वृचोंसे पृथकोंके निमित्त है, कारण कि, बह्वृचोंके गृह्यपरिशिष्टमें पिताआदि अनुलोम वर्णन किये हैं। व्यासने कहा है कि, कन्याके संग विवाह और गायत्रीका उपदेश ये दोनों भोजनके उपरान्त करे और पूजित वरको व्रत करके कन्यादान करे । यहां भोजन शास्त्रोक्त मधुपर्कको लेना चाहिये । गृह्यपरिशिष्टमें कहा है कि, कन्याके विवाहनेवालोंका यह धर्म लिखा है कि, पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे मधुपर्कसे पूजे हुए उस वरको इस कन्याके निमित्त दे, फिर जलके पात्रको ग्रहण कर इस मन्त्रसे कन्यादान करे कि, हे ब्राह्मण ! यथाशक्तिसे भूषित की हुई इस गौरी कन्याको इस गोत्र और इस नामवाले तुमको देता हूं, दी हुई इस कन्याका तुम आश्रय हो, फिर अपनी शक्तिसे पृथ्वी, गौ, दासी, वस्त्र, भैंस, घोड़े, सुवर्ण, माणिको देना चाहिये; फिर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार हवन आदि कर्म करे और कुलरीतिके अनुसार मंगल और

---

१ किन्हींका कथन है कि यदि कन्यादान आधीरातसे पीछे हो तो पूर्वदिनमें दाता भोजन कर ले; कारण कि, वह दान परदिनमें है ॥

च ॥ ६ ॥ " एतत्कन्यादानं त्रिः कार्यमिति शौनकः ॥ गृहप्रवेशनीयहोमे विशेषमाहाश्वलायनः-"अर्धरात्रे व्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि । गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः ॥" इति ॥ औपासनहोमे विशेषमाह शौनकः-" यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति । उपक्रम्योत्तरस्याह्नः सायं परिचरेदमुम् ॥ " यदि रात्रौ नवनाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः । तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भ इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ॥ अथ देवकोत्थापनम्-"समे च दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः । षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ ॥ " निर्णयदीपे गार्ग्यः-"नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम् । दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च । ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम् ॥ उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च ॥ नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥ ३ ॥ " बृहस्पतिः-"तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ॥ नगरग्रामदाहे च स्पृष्टा स्पृष्टा न दुष्यति ॥" योगियाज्ञवल्क्यः-"न स्नायादुत्सवेऽतीते मंगलं विनिवर्त्य च । अनुव्रज्य सुहृद्बन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम् ॥" ज्योतिषे-"स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम् । अपूर्वतीर्था-

---

कौतुक मंगल भी करे । यह कन्यादान तीन वार उच्चारण करके करना चाहिये, यह शौनकका कथन है । विवाहाग्निके गृहप्रवेशके हवनमें आश्वलायनने यह विशेष लिखा है कि, विवाहके हवनमें अर्द्धरात्रि बीतनेपर तो परले दिन प्रातःकालके समय गृहप्रवेश हवन होता है, यह यज्ञके ज्ञाता कहते हैं । उपासनाके हवनमें शौनकने यह विशेष लिखा है कि, जो विवाहकी अग्नि रात्रिमें उत्पन्न हुई हो तो अगले दिन सन्ध्यासमय उस अग्निकी पूजा करे । और सुदर्शनभाष्यमें यह लिखा है कि, यदि रात्रिकी नौ घडीके बीचमें अग्नि उत्पन्न हो तो उसी समयमें होम करे और नौ घड़ीके उपरान्त उत्पन्न हुई हो तो दूसरे दिन सायंकालमें हवन करे । अब देवताओंका उत्थापन ( विसर्जन ) लिखते हैं-कि, विद्वान् मनुष्य समदिनमें कुलदेवताओंका विसर्जन करे, छठे दिन और पांचवें सातवेंको छोड़कर विषम दिन श्रेष्ठ नहीं है । निर्णयदीपमें गार्ग्यने कहा है कि, नान्दीमुख श्राद्धके उपरान्त जबतक मातृ ( कुलदेवी ) ओंकी बिदा न हो तबतक अमावास्या और क्षयीका श्राद्ध, शीतल जलसे स्नान, अपसव्य होकर पितरोंकी स्वधा, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ ( बालवैश्वदेव ) नदी और सीमाका लंघन, उपवास, व्रत, श्राद्धभोजनको सम्पूर्ण सपिंड मंडपके विसर्जनतक न करे । बृहस्पतिने कहा है कि, तीर्थ, विवाह, यात्रा, युद्ध, देशउपद्रव, नगर और संग्राम, दाह, इनमें स्पर्शसे स्पर्शकको दोष नहीं लगता । योगियाज्ञवल्क्यने [illegible] है कि, उत्सवके बीतनेपर विना मंगल ( मंडप आदि ) की निवृत्ति और विना इष्टदेवके पूजन बन्धुओं सहित स्नान न करना चाहिये । ज्योतिषमें लिखा है कि, मंगलके कार्यसे एक वर्षतक ये कार्य न करे कि, सचैलस्नान जो तिल मिलके हो वह

मरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम् ॥" जीर्णभाण्डादीनां त्याज्याभावादि । "मासषट्कं विवाहादौ व्रतमारम्भणेन च । जीर्णभाण्डादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥ ऊर्ध्वं विवाहात् पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात् । आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥ अभ्यङ्गे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि । माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम् ॥" विवाहप्रथमवर्षवर्ज्या मासाः । ज्योतिर्निबन्धे-"उद्वाहात् प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ॥ पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥" निबन्धे-"विवाहात् प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमासके । न सा भर्तृगृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा ॥" हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे-"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ " तथा अर्धे पूर्ववत् । "सपिण्डा नैव कुर्वीरन्नद्भिः स्नानमृतुत्रये । तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयज्ञे महालये । कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ॥ " अथ वधूप्रवेशः । जयतुङ्गे-मार्गशीर्षे तथा माघे माधवे ज्येष्ठसंज्ञके । सुप्रशस्ते भवेद्वेश्मप्रवेशो नवयोषिताम् ॥ " नारदः-"आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिने ॥" संग्रहे-"विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवासरान्तात् ॥ ऊर्ध्व ततोऽब्दे युजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति ॥ "

---

कर्म प्रेतके संग श्मशानगमन, कलशका दान, अपूर्वतीर्थ और देवताका दर्शन, विवाह आदि और व्रतके प्रारम्भमें छः महीनेतक पुराने बरतन और घरका लीपना बुहारना न छोडे। पुत्रके विवाह और यज्ञोपवीतके उपरान्त एक वर्षतक अथवा छः महीनेतक अपना मुण्डन न करावे। उबटना, सूतक, विवाह, पुत्रजन्म मंगलके सम्पूर्ण कर्मोंमें गोपीचन्दन न लगावे। ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, विवाहसे प्रथम आषाढमें यदि कन्या पतिके घर जाय, तो अपनी सास और क्षयमासमें अपने शरीरको नष्ट करती है, ज्येष्ठमें जेठको, पौषमें श्वशुरको, मलमासमें पतिको और पहिले चैत्रमें अपने पिताके घर टिके तो अपने पिताको नष्ट करती है। पूर्वोक्त महीने न हों तो किसीको कुछ दोष नहीं है। निबन्धमें लिखा है कि, विवाहसे प्रथम और पौष, आषाढ और अधिकमासमें कन्या पतिके घर और चैत्रमें पिताके घर न रहे। हेमाद्रिमें स्मृत्यन्तरका कथन है कि,-विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन इनमें वर्ष छः महीने वा तीन महीनेतक पिंडदान, मृत्तिकासे स्नान, तिलोंसे तर्पण न करे। अब वधूप्रवेश कहते हैं-जयतुंग कहते हैं कि, मार्गशिर, माघ, वैशाख, ज्येष्ठमें और अच्छे श्रेष्ठ दिनमें नववधूस्त्रियोंका घरमें प्रवेश होता है। नारद कहते हैं कि, विवाहके दिनसे छठे वा आठवें दिन दशवें वा समदिनमें वधूप्रवेश होना चाहिये तो सम्पदा मिलती है। संग्रहमें लिखा है कि, विवाहसे लेकर सोलह दिनके मध्यमें युग्म तिथिमें वधूप्रवेश करना, इसके उपरान्त पांच वर्षतक विषम वर्षमें करे, उससे परे नियम नहीं है।

नारदः-"समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं व्रजेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ॥" तत्र फलानि । प्रयोगरत्ने तु-"वधूप्रवेशः प्रथमे तृतीये शुभप्रदः पञ्चमकेऽथ वाऽह्नि । द्वितीयके वाऽथ चतुर्थके वा षष्ठे वियोगामयदुःखदः स्यात् ॥" इत्युक्तं तत्र मूलं चिन्त्यम् । वृद्धवसिष्ठोऽपि-" षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः । पञ्चांगसंशुद्धदिनं विनापि विधावसद्रोचरगोऽपि कार्यः ॥ " लल्लः-"स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे । नववध्वा गृहगमनं प्रति शुक्रविचारणा नास्ति ॥ " माण्डव्यः-"नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु । वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥" ज्योतिःप्रकाशे-" वामे शुक्रे नवोढायाः सुखं हानिश्च दक्षिणे । धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरःस्थिते ॥ नवोढायास्तु वैधव्यं यदुक्तं संमुखे भृगौ । तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे ॥ पूर्वतोऽभ्युदिते शुक्रे प्रयायाद्दक्षिणापरे । पश्चादभ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्तरे दिशौ ॥ ३ ॥ " व्यवहारतत्त्वे-पौष्णात्कराच्च श्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु । पुष्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरे व्यर्ककुजे च शस्तः ॥ " गर्गः-"व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेऽपि मानवः ॥" तथा-'अमासंक्रांतिविष्टयादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत् ।

---

नारदने कहा है कि, सम वर्ष वा सम महीनेमें यदि नारी पतिके घर जाय तो पतिकी अवस्था हरती है और स्वयं मृत्युको प्राप्त होती है । प्रयोगरत्नमें लिखा है कि, प्रथम, तीसरे, पांचवें दिन वधूप्रवेश मंगलकारी है, दूसरे, चौथे, छठे दिन वियोग, रोग और दुःखदायी होता है, इसमें प्रमाण नहीं मिलता । वृद्धवसिष्ठने कहा है कि, विवाहसे छठे, आठवें, दशवें दिन पंचांगसे शुद्ध दिनके विना और निषिद्ध चन्द्रमामें वधूप्रवेश करनेमें दोष नहीं है । लल्लने कहा है कि, अपना भवन और अपने पुरका प्रवेश, देशोंके उपद्रव, विवाह और नव्य वधूका गृहप्रवेश इनमें सम्मुख शुक्रका विचार नहीं है । माण्डव्य कहते हैं कि, नित्यगमन, जीर्णगृह, अन्नप्राशनपर्यन्त सात कर्म और वधूप्रवशमें बृहस्पति और शुक्रके अस्तका विचार न करे । ज्योतिःप्रकाशमें कहा है कि, नई विवाही वधूके शुक्र वामभाग हो तो सुख, दक्षिणमें हो तो हानि, पीठ पीछे हो तो धनधान्य, सम्मुख हो तो सबका नाश करता है । सम्मुख शुक्रमें तो नव्य वधूको विधवायोग लिखा है, वही बुधमें जानना चाहिये, परन्तु यह केवल द्विरागमनमें है । यदि शुक्रका उदय पूर्वमें हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशामें चला जाना, पश्चिम दिशामें हो तो पूर्व और उत्तर दिशामें गमन करना । व्यवहारतत्त्वमें कहा है कि, रेवती, हस्त, श्रवणसे दो और हस्तसे तीन मूल, मघा और तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा, रिक्तासे भिन्न तिथि, रवि और मंगलसे भिन्न वारमें वधूप्रवेश उत्तम है । गर्गने कहा है कि, व्यतीपात, संक्रांति, ग्रहण, वैधृति इनमें श्राद्धके विना शुभ कर्मको उत्तम मुहूर्तमें भी मनुष्य न करे । इसी प्रकार अमावस्या, संक्रांति और भद्रा आदिमें उत्तम मुहू-

इति ॥ द्विरागमनम् । ऋक्षोच्चये-"माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने । गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः ॥" बादरायणः-"नीहारांशुदिनोत्तरादितिगुरुब्रह्मानुराधाश्विनी शुक्रे भास्करवायुविष्णुवरुणत्वाष्ट्रे प्रशस्ते तिथौ । कुम्भाजालिगते रवौ शुभकरे प्राप्तोदये भार्गवे जीवज्ञास्फुजितां दिने नववधूवेश्मप्रवेशः शुभः ॥" अथ पुनर्विवाहः । श्रीधरीये-"पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दंपत्योः शुभवृद्धिदम् । लग्नेन्दुलग्नयोर्दोषे ग्रहतारादिसंभवे ॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टरोगादिसंभवे । विवाहे चापि दंपत्योराशौचादिसमुद्भवे ॥ तस्य दोषस्य शांत्यर्थं पुनर्वैवाह्यमिष्यते ॥ २ ॥" याज्ञवल्क्यः-"सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा । स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा ॥" मनुः-"वन्ध्याष्टमेऽधिवेत्तव्या दशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥" संग्रहे तु-"अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत् । मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥" याज्ञवल्क्यः-"एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोढामपरां व्रजेत् । आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादि-

---

तेमें भी शुभकर्म न करे ॥ अब द्विरागमनको कहते हैं-ऋक्षोच्चयमें कहा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाखके शुक्लपक्ष और शुभदिनमें बृहस्पति और सूर्यकी शुद्धिमें पत्नीका द्विरागमन उत्तम है । बादरायण कहते हैं कि, चन्द्रवार उत्तरा पुनर्वसु पुष्य रोहिणी अनुराधा अश्विनी ज्येष्ठा श्रवण स्वाती चित्रा श्रेष्ठ तिथि कुम्भ मेष वृश्चिकका सूर्य और लग्नका उदय शुक्र बृहस्पति बुध सोमवारमें नवीन वधूका गृहप्रवेश उत्तम है ॥ अब पुनर्विवाहको लिखते हैं-श्रीधरीयमें कहा है कि, अब पुरुषके शुभ और वृद्धिके देनेवाले पुनर्विवाहको लिखता हूं । लग्न और चन्द्रमा और लग्नके और ग्रह वा तारा आदिका दोष वा दूसरे अशुभ समय हो तो वा दुष्ट प्रथम विवाहमें हो तो वा प्रथम विवाहके समय स्त्रीपुरुषको अशौच आदि हो तो इन दोषोंकी शांतिके निमित्त द्वितीयविवाह इष्ट ह । याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, मद्य पीनेवाली, रोगिणी, धूर्ता, वंध्या, धनकी नाशक, कठोर वाक्य बोलनेवाली, जिसके कन्या ही होती हो, जो पतिके संग वैर करती हो, ऐसी स्त्रीके होनेपर पति दूसरा विवाह करसकता है । मनु कहते हैं कि, वन्ध्या स्त्री हो तो आठवें वर्ष, जिसके बालक होकर मरजाते हों तो दशवें वर्ष, कन्या ही होती हो तो ग्यारहवें वर्ष दूसरा विवाह करले । कठोर वाक्यवाली हो तो उसी समय विवाह करले । संग्रहमें लिखा है कि, प्रजाहीन स्त्रीको दशवें वर्ष, जिसके कन्या ही संतान हों उसे बारहवें वर्ष, जिसकी संतान मृतक हो जाती हो उसे पंद्रहवें वर्ष और कठोर वाक्यवालीको उसी समय त्याग देना चाहिये । याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, जो मनुष्य एक स्त्रीको छोड़ करके विषयके निमित्त दूसरी स्त्रीके साथ विवाहकी इच्छा करता है वह समर्थ हो तो प्रथम स्त्रीको धनसे प्रसन्न करके दूस-

नीम् । त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥२॥" मनुः–" आधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् । सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ" इति ॥ हेमाद्रौ कात्यायनः–"अग्निशिष्टादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वं चेज्ज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥" इति । याज्ञवल्क्यः–"सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥" द्वितीयविवाहहोमे अग्निनिर्णयः । द्वितीयविवाहहोमेऽग्निमाह कात्यायनः–"सदारोऽन्यान्पुनर्दारानुद्वोढुं कारणान्तरात् । यदीच्छेदग्निमान्कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते ॥ स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥" त्रिकाण्डमण्डनोऽपि–"आद्यायां विद्यमानायां द्वितियामुद्वहेद्यदि । तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेऽग्निमान् ॥" सुदर्शनभाष्ये तु–"द्वितीयविवाहहोमो लौकिक एव न पूर्वौपासने" इत्युक्तम् ॥ इदं चासंभवे तत्र चाग्निद्वयसंसर्गः कार्यः ॥ तदाह शौनकः–"अथाग्न्योर्गृह्ययोगं तु सपत्नीभेदजातयोः । सहाधिकारसिद्ध्यर्थमहं वक्ष्यामि शौनकः ॥ अरोगामुद्वहे-

---

स्त्रीको विवाह ले । याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, जो आज्ञाकारिणी, चतुर, पुत्रवती, प्रिय बोलनेवाली पहिली स्त्रीको छोड़ता है उसे राजाको दूसरे विवाहके तीसरे भाग धनका दण्ड देना चाहिये, यदि धन न हो तो प्रथम स्त्रीके भरण पोषणका दण्ड देना चाहिये । मनुका वाक्य है कि, यदि दूसरे विवाह करनपर पहिली स्त्री कुछ क्रुद्ध होकर घरसे चले तो उसको शीघ्र रोकना चाहिये, अपने कुलके संमुख त्याग देना । हेमाद्रिमें कात्यायन कहते हैं कि, जिसके बहुत भार्या हों उस मनुष्यको सवर्णा स्त्रीसे अग्नि और शिष्ट मनुष्योंकी सेवा करानी चाहिये। यदि अपने वर्णकी भी बहुत हों तो जो सम्पूर्ण दोषोंसे रहित ज्येष्ठ स्त्री हो उससे करानी चाहिये । याज्ञवल्क्य कहते हैं कि, यदि अपने वर्णकी स्त्री मिले तो औरसे धर्मकार्यको न करना और यदि सवर्ण भी बहुत स्त्री हों तो धर्मकार्यमें बड़ीको ही अधिकार है, औरोंको नहीं ॥ अब द्वितीय विवाहकी अग्निका निर्णय लिखते हैं–कात्यायन कहते हैं कि, यदि स्त्रीवाला मनुष्य किसी हेतुसे पुनर्विवाहकी इच्छा करे तो उसको पूर्वविवाहकी अग्निमें ही होम करना, लौकिक अग्निमें कभी भी न करना चाहिये । त्रिकाण्डमण्डन भी लिखते हैं कि, प्रथम स्त्रीके जीते हुए यदि दूसरी स्त्रीको विवाह करले तो वैवाहिक हवन आदि कर्मको अपने घर करे । सुदर्शनभाष्यमें तो यह लिखा है कि, दूसरे विवाहका हवन लौकिक अग्निमें करना चाहिये, पूर्व अग्निमें नहीं करना, यह बात प्रथमकी अग्निके असंभवमें जाननी । यदि पूर्वविवाहकी अग्नि भी हो तो उन दोनोंका सम्बंध करना चाहिये । सोई शौनकने लिखा है कि, अब जो कि, सपत्नी ( सौत ) पनेको प्राप्त हुई स्त्रियोंको हवन आदि कर्ममें सहाधिकार ( साथ करने ) के निमित्त गृह्य अग्नि ( दोनों विवाहोंके अग्नि )

त्कन्यां धर्मलोपभयात्स्वयम् । कृते तत्र विवाहे च व्रतान्ते तु परेऽहनि ॥ पृथक् स्थण्डिलयोरग्निं समाधाय यथाविधि । तत्र कृत्वाज्यभागान्तमन्वाधानादिकं ततः ॥ जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौ तयान्वारब्ध आहुतिः । अग्निमीळे पुरोहितं सूक्तेन नवर्चेन तु ॥ समिध्यैनं समारोप्य अयं ते योनिरित्यृचा । प्रत्यवरोहेत्यनया कनिष्ठाग्नौ निधाय तम् ॥ आज्यभागान्ततंत्रादि कृत्वारभ्य तदादितः । समन्वारब्ध एताभ्यां पत्नीभ्यां जुहुयाद्घृतम् ॥ चतुर्गृहीतमेताभिर्ऋग्भिः षड्भिर्यथाक्रमम् । अग्नावग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निः समिध्यते ॥ अस्तीदमिति तिसृभिः पाहि नो अग्न एकया । ततः स्विष्टकृदारभ्य होमशेषं समापयेत् ॥ गोयुगं दक्षिणा देया श्रोत्रियायाहिताग्नये । पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः ॥ आदधीतान्यथा सार्द्धमाधानविधिना गृही ॥" इति । बौधायनसूत्रे तु-"अथ यदि गृहस्थो द्वे भार्ये विंदेत कथं तत्र कुर्यादिति यस्मिन् काले विंदेतोभावग्नी परिचरेदपराग्निमुपसमाधाय परिस्तीर्याज्यं विलाप्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वाऽन्वारब्धायां जुहोति 'नमस्त ऋषेरादाव्यधायै त्वा स्वधायै त्वा मान इन्द्राभिनतस्त्वदृष्टारिष्टां

---

योंके सम्बन्धको लिखता हूँ कि, धर्मके लोप हो जानेके भयसे उत्तम लक्षणोंसे युक्त कन्यासे विवाह करे, विवाह करनेपर व्रतके उपरान्त प्रथम दिन पृथक् पृथक् वेदियोंपर विधिसे अग्नि स्थापित करके अन्वाधानसे आज्यभागान्त आहुति देकर प्रथम पत्नी अग्निमें आहुति दे और उस पत्नीके साथ ग्रन्थिबन्धन करनेपर पतिको भी "अग्निमीळे पुरोहितम्" इस सूक्तकी नौ ऋचाओंसे आहुति देनी चाहिये, फिर अग्निको प्रज्वलित करके "अयंतेयोनिः" इस मन्त्रसे और 'प्रत्यवरोह' इस ऋचासे कनिष्ठ ( दूसरी ) पत्नी चरुभक्षण आज्यभागान्त कर्म करके आहुति दे, फिर दोनों पत्नियोंसे पति ग्रन्थिबन्धन करके घीसे आहुति दे, 'चतुर्गृहीत' इन छः ऋचाओंसे और अग्निसे अग्नि भक्षण करती है और अग्निसे अग्नि प्रज्वलित होती है 'अस्तीदम्' इन तीन मन्त्रोंसे और 'पाहिनो अग्ने' इस एक ऋचासे फिर स्विष्टकृत्के प्रारम्भसे शेष होमको पूर्ण करे, फिर अग्निके हितकारी वेदपाठीको दो गौ दक्षिणादान करे। यदि दोनों पत्नियोंमें एक पत्नीकी मृत्यु हो जाय तो उसी अग्निसे उसका दाह करके दूसरी पत्नीके संग शास्त्रोंमें कही विधिसे फिर अग्निका आधान करे । बौधायनसूत्रमें तो यह कहा है कि, जो गृहस्थ दो स्त्रियोंसे विवाह करे तो वहां किस प्रकार अग्निहोत्र आदि कर्म करे ? जिस समय दो स्त्रियोंको विवाहे तब दोनों अग्निकी पूजा कर, एक अग्निका स्थापन करके और कुशाओंको अग्निके चारों ओर कुशकण्डिकाकी विधिसे फैलाकर और घृतको तपाकर और श्रुवेमें बारबार लेकर एक पत्नीके संग ग्रन्थिबन्धन करके समिधापर 'नमस्ते ऋषे' इस ऋचासे आहुतिप्रदान करता हुआ उस घीको डाल दे । यदि प्रथम

स एव ब्रह्मन्नवेदसुस्वाहेत्यथाऽयंते योनिर्ऋत्विय' इति समिधि समारोपयेत् । पूर्वाग्निमुपसमाधायाजुह्वान उद्बुध्यस्वाग्न इति समिधमाधाय परिस्तीर्य स्रुचि चतुर्गृहीत्वा द्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमानोऽभिमृशति ब्रह्मा ब्रह्मण इत्येतेन सूक्तेनैकं चतुर्गृहीतं जुहोत्यग्निमुखान् कृत्वा पक्वां जुहोति सम्मितं संकल्पेथा-मिति पुरोऽनुवाक्यामनूचाग्ने पुरीष्ये इति याज्यया जुहोति पुरीष्यमस्तमित्य-न्वादनुवाकस्य स्विष्टकृत्प्रभृतिसिद्धमाधेनुवरदानादथाग्रेणाग्निं दर्भस्तम्बे हुतं शेषं निदधाति 'ब्रह्मजज्ञानं' 'पिताविराजम्' इति द्वाभ्यां संसर्गविधिः कार्यः ॥" तत्र कालनिर्णयः । द्वितीयादिविवाहे काल उक्तः संग्रहे—"प्रमदा-मृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च । विषमे युगवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत् ॥" अथ तृतीयविवाहे निषेधः । स च मात्स्ये—"उ-द्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन । मोहादज्ञानतो वापि यदि गच्छेत्तु मानु-षीम् ॥ नश्यत्येव न संदेहो गर्गस्य वचनं यथा ॥" इति । संग्रहे—"तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत् । चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्के समुद्वहेत् ॥" तद्विधिस्तु—"रविशन्योर्हस्ते वा वरः संकल्प्य स्वस्तिवाचनं नान्दीश्राद्धं कृत्वा-चार्यं वृत्वा आकृष्णेनेति छायायुतं सूर्यमर्कं संपूज्य गुडौदनं दत्त्वा वस्त्रेण तन्तु-

---

स्थापन कर हवन करे तो 'उद्बुध्यस्वाग्ने' इस ऋचासे समिधको रखकर और अग्निस्थापन और कुशकण्डिका करके स्रुवेमें चार वार घृतको लेकर दोनों भार्याओंका ग्रन्थिबन्धन करके यजमान स्पर्श करे और 'यो ब्रह्मा ब्रह्मण' इस सूक्तसे स्त्री चार वार ग्रहण किये घृतसे हवन करे, फिर अग्निको मुख करके कची चरुसे हवन करे, 'सनिमित्तं संकल्पेथाः' इस पहिले वाक्यको स्विष्टकृत् आदि सिद्ध करके धेनुके वरप्रदान हवन करे, फिर अग्निके आगे कुशाके स्तम्भपर हवनके शेषको 'ब्रह्मजज्ञानं' 'पिता विराजम्' इन दोनों मन्त्रोंसे रक्खे । द्वितीय आदि विवाहका समय संग्रहमें लिखा है कि, स्त्रीके मृत्युके दिनसे वरके दूसरे विवाहकी विधि विषम वर्षमें श्रेष्ठ है और युग्मवर्षमें मृत्यु देनेवाली है । मत्स्यपुराणमें तीसरे विवाहका निषेध लिखा है कि, विषयभोग करनेके निमित्त तीसरी स्त्रीसे न विवाह करे । कारण कि, मोह वा अज्ञानसे जो तीसरी स्त्रीसे भोग करता है वह स्वयं ही नष्ट होता है इसमें सन्देह नहीं, यही गर्गने कहा है । संग्रहमें लिखा है कि, यदि तीसरी स्त्रीसे विवाह करे तो वह विधवा हो जाती है, यदि चतुर्थ आदि विवाह करना चाहे तो तीसरे विवाहमें आकके वृक्षके संग विवाह करे । उसकी विधि इस प्रकार है कि, रवि वा शनिवार हस्त नक्षत्रमें वर संकल्प तथा स्वस्तिवाचन तथा नान्दीमुख श्राद्ध करके आचार्यका वरण करे, फिर "आकृष्णेन रजसा" इस मंत्रसे आकके वृक्षमें छायासहित सूर्यको पूजन कर तथा गुड और

---

१ यह सब मन्त्र पद्धतियोंमें पूरे लिखे हैं सो विवाहपद्धतिमें देख लेने ॥

भिरावेष्टय। "त्रिलोकवासिन् सप्ताश्व छायया सहितो रवे। तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु॥" इति संप्रार्थ्य जलेन त्रिः सिञ्चेत्। "मम प्रीतिकरा येयं माया सृष्टा पुरातनी। अर्कजा ब्रह्मणा स्त्रष्टा अस्माकं प्रति रक्षतु॥ नमस्ते मंगले देवि नमः सवितुरात्मने। त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं म इहागता॥ अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च। वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धनः॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय॥ ३॥" इति। तत आचार्यः–"काश्यपगोत्रामादित्यप्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीं मम पुत्रीमर्ककन्याममुकगोत्राय वराय दास्ये" इति वाग्दानं कृत्वा वरस्य मधुपर्कं कृत्वाऽन्तःपटं धृत्वा 'स्वस्तिनः' इति सूक्तं जप्त्वा पूर्ववत्कन्यां दत्त्वा अर्ककन्यामिमामित्यूहेन कन्यादानमंत्रमुक्त्वा दक्षिणां दद्यात्। ततो गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेति मन्त्रेण कंकणं बध्वाऽर्कस्य चतुर्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्याघारान्ते संगोभिरिति बृहस्पतये यस्मै त्वा कामकामायेत्यृचाऽग्नये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिराज्यं हुत्वाऽचार्याय गोयुगं दत्त्वा। "मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा।

---

आतको देकर तंतु और वस्त्रको लपेटकर इस प्रकार प्रार्थना करे कि, हे त्रिलोकीके निवासी सात अश्ववाले सूर्य ! छायासहित आकर तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए दोषके निवारण तथा सुखको करो। फिर उस वृक्षको तीनवार जलसे सींचकर यह पढ़े कि, मेरी प्रसन्नता करनेवाली यह पुरातनी माया ब्रह्माने निर्मित की और सूर्यसे उत्पन्न हुई है सो तू हमारी रक्षा कर, हे कल्याणरूप देवि सविताकी पुत्री ! तुझे मेरा नमस्कार है, कृपासहित मेरी रक्षा कर और इस लोकमें मेरी स्त्रीरूप हो। हे अर्क ! तुझे सब मनुष्योंके हितके निमित्त ब्रह्माने रचा है, सब वृक्षोंमें आदिभूत तथा देवताओंकी प्रीतिको बढ़ानेवाला है, तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए पाप तथा मृत्युका शीघ्र नाश कर। फिर आचार्य काश्यपगोत्रमें उत्पन्न हुई आदित्यकी प्रपौत्री तथा सविताकी पौत्री और मेरी पुत्रीरूप इस आककी कन्याको अमुक गोत्रमें उत्पन्न हुए वरको देता हूं, इस प्रकार वाग्दान करे। फिर वरको मधुपर्क देकर अंतर पट करके 'स्वस्तिन इन्द्रो' इस सूक्तको पढ़के पूर्वके अनुसार कन्यादान करके इस अर्ककी कन्याको प्रदान करता हूं इत्यादि वाक्यसहित कन्यादानके मंत्रको पढ़कर दक्षिणा दे, फिर गायत्रीमंत्रसे लपेटे सूतके वरके हाथमें 'बृहत्साम' इत्यादि मंत्रसे कंकणको बांधकर आककी चारों दिशाओंमें स्थापित घड़ोंपर विष्णुकी पूजा कर, अग्निका स्थापन करके 'आघारान्ते संगोभि०' इस ऋचासे तथा 'बृहस्पतये यस्मै त्वा कामकामाय' इस मंत्रसे अग्निके निमित्त भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा० इन व्यस्त समस्त आहुतियोंसे घृतकी आहुति देकर आचार्यको दो गौ देकर प्रणाम करे कि, जो मुझ जरायु (मनुष्य) ने स्थावरोंके विषे यह कर्म किया है सो मुझे संतान दो और उस

अर्काऽपत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥" इति नमेत् । इति दिक् । इति निर्णयसिंधौ विवाहः । अथाग्न्याधानम् । रत्नमालायाम्—"प्राजापत्ये पूषभे सद्विदैवे पुष्ये ज्येष्ठास्वैन्दवे कृत्तिकासु । अग्न्याधानं ह्युत्तराणां त्रयेति चित्रादित्ये कीर्तितं गर्गमुख्यैः ॥" आश्वलायनः—"अग्न्याधेयं कृत्तिकासु रोहिण्यां मृगशिरसि फाल्गुनीषु विशाखयोरुत्तरयोः प्रौष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्वसन्ते पर्वणि ब्राह्मण आदधीत ग्रीष्मवर्षाशरत्सु क्षत्रियवैश्योपकृष्टा यस्मिन्कस्मिंश्चिदृतावादधीत सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम् ॥" सोमाधाने ऋत्वाद्यनालोचनमार्त्तपरम् । 'अथो खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्य विधिः' इति । 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रं तदेतदार्त्तस्यातिवेलं वा श्रद्धायुक्तस्य भवति, इति बौधायनोक्तेरिति । मदनरत्ने वृद्धगार्ग्यः—"पुष्याग्नेयत्र्युत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठाचित्रार्कद्विदैवेन्दुभेषु । कुर्युर्वह्न्याधानमाद्यं वसन्तग्रीष्मोष्मान्तेष्वेव विप्रादिवर्णाः ॥" कालादर्शे—"अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावप्युत्तरायणे । उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः ॥ सोमं च पशुबन्धं च सर्वाश्च विकृतीरपि । सौम्यायने यथाकालं विदध्युर्गृहमेधिनः ॥" अत्र विशेषः पूर्वमुक्तः ।

---

अपराधको हे अर्क ! क्षमा करो, यह संक्षेपसे कहा । इति निर्णयसिन्धौ विवाहः । अब अग्न्याधानको कहते हैं—रत्नमालामें कहा है कि, ब्राह्म (रोहिणी ), धनिष्ठा, द्विदैव (विशाखा), पुष्य, ज्येष्ठा, मृगशिर, कृत्तिका, तीनों उत्तरामें अग्निका स्थापन तथा चित्रा, आदित्य ( पुनर्वसु ) में अग्निस्थापन शुभ है यह गर्गोंने कहा है । आश्वलायन कहते हैं, कि, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराषाढा नक्षत्रोंमें अग्निका स्थापन उत्तम है, इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें ब्राह्मण वसंतऋतुके जिस किसी पर्वमें, क्षत्रिय वैश्य ग्रीष्म वर्षा शरद् ऋतुमें और अपकृष्टा ( शूद्र ) मनुष्य जिस किसी पर्वमें अग्निका आधान करे । सोमयज्ञका सम्पादन करता हुआ मनुष्य ऋतु तथा नक्षत्रको न पूछे। यह सोमयज्ञमें ऋतुआदिका अविचार आर्त्त आदिकोंके विषयमें कहा है । कारण कि, मदनरत्नमें बौधायनने कहा है कि, जब इसको श्रद्धा हो तब ही अग्न्याधान करे; उससे ही उसकी ऋद्धि होती है, सो यह आर्तको वा काल बीत गया हो तब जानना चाहिये और श्रद्धायुक्तको ही अग्न्याधान होता है, यह मदनरत्नमें कहा है । वृद्धगार्ग्य कहते हैं कि, ब्राह्मण आदि वर्ण ( प्रथम ) अग्निका स्थापन पुष्य, आग्नेय ( कृत्तिका ), तीनों उत्तरा, धनिष्ठा, पुन्नाम नक्षत्र, ज्येष्ठा, चित्रा, द्विदैव (विशाखा ), रोहिणी नक्षत्रमें तथा वसन्त, ग्रीष्म, शरद् ऋतुओंमें करे । कालादर्शमें कहा है कि, उत्तरायणमें अमावास्या पौर्णमासीको भी अग्निहोत्रको करना चाहिये । सब द्विजाति मनुष्य समयपर सोमीय पशुबन्ध तथा और यज्ञकी विकृति (अंग ) योंका प्रारम्भ करके उसको सेवन करे । गृहस्थ मनुष्य उत्तराय-

अग्निहोत्रकाल उक्तश्छन्दोगपरिशिष्टे-"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥" एषां स्वरूपं तत्रैव-"रात्रेस्तु षोडशे भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते। कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः॥ तत्राप्रभातसम्ये नष्टे नक्षत्रमण्डले। रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युषितं च तत्॥ रेखामात्रं प्रदृश्येत रश्मिभिश्च समन्वितः। उदितं तद्विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत्॥ ३॥" आश्वलायनः-"उपोदयं व्युषित उदिते वा।" सायं तु स एव 'अस्तमिते होमः' इति। गौणकालमाह स एव-'प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः' इति। छन्दोगपरिशिष्टे-"यावत्सम्यङ्न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः। न च लोहितमापैति तावत्सायं तु हूयते॥" औपासनेऽप्येवम्। तस्य-'अग्निहोत्रेण प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्यातौ' इत्याश्वलायनोक्तेः॥ अथावसथ्याधानम्। पारस्करः-"आवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यकाल एकेषाम्" इति। दायाद्यकालो विभागकालः। मदनरत्ने व्यासः-"अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना। पितर्युपरते तेन ग्रहीतव्यः प्रयत्नतः॥ योऽगृहीत्वा विवा-

---

णमें यथासमयपर करें, इसमें विशेष प्रथम कह आये हैं। अग्निहोत्रका समय छंदोगपरिशिष्टमें यह लिखा है कि, उदित, अनुदित तथा अध्युषित समयपर सर्वथा यज्ञ सम्पादन करे, यह वेदकी श्रुति है। इसके स्वरूपका निर्णय वहां ही यह लिखा है कि, ग्रह और नक्षत्रोंसे भूषित रात्रिके सोलहवें भागको अनुदित लिखते हैं, उसको जानकर चतुर जनोंको होम करना चाहिये, इसी प्रकार नक्षत्रोंका जब मंडल नष्ट हो गया हो और प्रातःकाल बीत गया हो उस समय जबतक सूर्यदर्शन न हो समयाध्युषित कहा है तथा किरणोंसहित सूर्यका जब रेखामात्र दर्शन हो उसे उदित कहते हैं। उसमें हवन करे। आश्वलायनने कहा है कि, उपोदय तथा व्युषित उदित समयपर और सायंकालको सूर्य अस्त होनेपर हवन करे। गौणसमय भी उसने ही यह लिखा है कि, प्रदोषकी अन्त संध्याको और किरणोंके अंत प्रातःकालको हवनका समय है। छंदोगपरिशिष्टमें कहा है कि, जबतक आकाशमें चारों ओरसे तारागण न उदय हुए हों और ललामी नष्ट हुई हो तबतकको संध्यासमय कहते हैं, इसी प्रकार उपासनामें भी जानना। कारण कि, आश्वलायनने लिखा है कि, उपासनाकी प्रकटता और हवनका समय अग्निहोत्रके समान होते हैं। अब गृहस्थके आवसथ्याधानका निर्णय लिखते हैं-पारस्करने लिखा है कि, गृहस्थको अग्निका आधान विवाह समयमें और कोई विभागकालमें कथन करते हैं। मदनरत्नमें व्यास कहते हैं कि, जिस प्रमादीने विवाहकी अग्निको न ग्रहण किया हो वह पिताकी मृत्युके उपरान्त यत्नसे ग्रहण करे जो कि, विवाहकी अग्निके ग्रहण किये विना अपनेको गृहस्थी जानता है उसके यहां भोजन न करना। कारण कि, उसे

हाग्निं गृहस्थ इति मन्यते। अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥२॥" ज्येष्ठभ्रातरि पितरि वा साग्नौ कनिष्ठस्य पुत्रस्य वाऽग्न्यभावेऽपि न दोषः। तदाह तत्रैव गार्ग्यः–"पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः। ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना॥" गृहस्थस्याध्ययनम्। गृहस्थस्याप्यध्ययनमाह सत्यव्रतः–"अनधीत्य द्विजो वेदं स्नात्वोद्वाह्य यथा तथा। अधीते ब्रह्मचर्येण सांगं वेदं गुरोर्गृहे॥" इदं चाधानं ज्येष्ठे कृताधाने न कार्यम्। "दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः॥" इति मनुशातातपोक्तेः। स्मार्तेऽप्येवम्–"सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसंग्रहम्। आवसथ्यं तथाधानं पतितस्तु तथा भवेत्॥" इति तत्रैव गार्ग्योक्तेः। आज्ञायां त्वदोषमाह सुमन्तुः–"ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत्। अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा॥" वृद्धवसिष्ठः–"अग्रजस्तु यदाऽनग्निरादध्यादनुजः कथम्। अग्रजानुमतं कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि॥" हारीतः–"सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत्। दारैस्तु परिविद्यन्ते नाग्निहोत्रेण नेज्यया॥" अधिकारिणोऽपि भ्रातुरनुज्ञया कुर्यादिति मदनपारिजातः॥ विवाहस्त्वनुज्ञयापि

---

वृथापाक कहते हैं। ज्येष्ठ भ्राता तथा पिताने विवाहकी अग्निको ग्रहण किया हो तो छोटे भाई तथा पुत्र अग्निको ग्रहण न करे तो भी दोष नहीं है। यही गार्ग्य कहते हैं कि, पिताके पाकसे जो जीता हो और जो भ्राताके पाकसे जीता हो और जो ज्ञान और अध्ययनमें तत्पर हो उसको अग्निके विना दोष नहीं होता। गृहस्थीको अध्ययन करना सत्यव्रतने लिखा है कि, वेदको न पढ़कर जो ब्राह्मण स्नान करके विवाहको करता है वह ब्रह्मचर्य धारण कर अंगोंसहित वेदको गुरुके घर जा पढ़े, यह अध्ययन उसको करना चाहिये जिसके ज्येष्ठ भाईने अग्न्याधान ( अग्निका ग्रहण ) पहिले न किया हो। कारण कि, शातातप और मनु कहते हैं कि, जो ज्येष्ठ भाईके होते हुए प्रथम विवाह और अग्निहोत्र करता है उसे परिवेत्ता कहा है और ज्येष्ठको परिवित्ति जानना चाहिये। स्मार्तमें भी यही लिखा है कि, सहोदर ज्येष्ठ भाईके बैठे हुए आप प्रथम विवाह तथा आवसथ्याधान न करे, अन्यथा वह पतित हो जाता है, ऐसा गार्ग्य कहते हैं। आज्ञासे करनेमें सुमंतुने कहा है कि, दोष नहीं लगता है, जब ज्येष्ठ भाई बैठा हो तब अग्न्याधानमें स्थित न होना और आज्ञा लेकर स्थित हो जाय इसी प्रकार शंख कहते हैं। वृद्धवसिष्ठ कहते हैं, कि, यदि बड़ा भ्राता अग्निरहित हो तो छोटा किस प्रकार अग्निको ग्रहण करे? वह उससे आज्ञा लेकर विधिपूर्वक अग्निहोत्रको कर ले। हारीतने कहा है कि, यदि सब सगे हों तो परिवेत्ता किस प्रकार हो? स्त्रीके साथ विवाह करनेसे परिवेत्ता होता है, अग्निहोत्र और यज्ञसे नहीं होता। पारिजातका कथन है कि, अधिकारी भी भ्राता हो उसकी आज्ञासे

नेत्यर्थः ॥ सोदरोक्तेरसोदराणां सापत्नदत्तकादीनां न दोषः। दत्तकस्यापि सोदरविवाहाभावे दोष एव। तदाह हेमाद्रौ वसिष्ठः–"पितृव्यपुत्रान् सापत्नान् परनारीसुतांस्तथा। दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥" परनारीसुताः दत्तकादयः। देशान्तरे विशेषमाह स एव–'अष्टौ दश द्वादश वर्षाणि वा ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः प्रायश्चित्ती भवति' इति। क्लीबादावप्यदोषमाह कात्यायनः–"देशान्तरस्थक्लीबैकवृषणानसहोदरान्। वेश्यानिष्ठांश्च पतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनखञ्जकान्॥ अतिवृद्धानभार्यांश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतोकारिणस्तथा। कुटिलोन्मत्तचोरांश्च परिविंदन्न दुष्यति ॥ ३ ॥" आचारार्केऽपि–"उन्मत्तः किल्विषी कुष्ठी पतितः क्लीब एव वा। राजयक्ष्मामयावी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुम् ॥" एवं ज्येष्ठे छिन्नहस्तादावपि न परिवेत्तृत्वम्। तदाह त्रिकाण्डमण्डनः–" दर्शेष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसंग्रहम्। अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम् ॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति। क्षेत्रजा[illegible]न्नीजाने विद्यमानेऽपि सोदरे ॥ नाधिकाराधिघा-

---

कर ले, विवाह तो आज्ञासे नहीं करे, 'सोदराणाम्' इस पदसे जो सगे नहीं उन मौसीके पुत्र अथवा दत्तक आदि पुत्रोंको इसमें दोष नहीं है, सोदरके विवाहके न होनेपर दत्तकको भी दोष प्राप्त होता है। इसी प्रकार हेमाद्रिमें वसिष्ठने कहा है कि, चाचाके पुत्र और मौसीके पुत्र और दत्तक आदिके स्त्री और अग्निहोत्रके संयोग प्राप्त होनेपर भी परिवेत्तृत्व दोष नहीं लगता। देशान्तरमें बड़ा भाई हो तो उसमें यह विशेष लिखा कि, जो आठ दश वा बारह वर्ष घर न आया हो ऐसे बड़े भ्राताकी वाट न देखकर जो अपना विवाह कर लेता है उसको प्रायश्चित्त लगता है। क्लीबादिकोंमें कात्यायनने दोष नहीं कहा है कि, देशान्तरमें स्थित हो, नपुंसक, एक अण्डकोशवाला, असहोदर हो, वेश्यागामी, पतित, शूद्रके समान, अत्यन्त रोगी, मूर्ख, गूंगा, अन्धा, बहिरा, कुबड़ा, विलंदिया, लँगडा, अतिशय वृद्ध, स्त्रीहीन, कृषिकर्ममें आसक्त, राजाकी धनकी वृद्धिमें आसक्त, अपनी इच्छासे न करना चाहे, कुटिल, उन्मत्त, चोरको परिवित्ति करते हुएको दोष नहीं होता। आचारार्कमें भी कहा है कि, उन्मत्त, पापी, कुष्ठी, पतित, नपुंसक, राजयक्ष्मा ( रोगविशेष ) से युक्त, मंदाग्निवाले पुरुषोंके विवाहकी वाट न देखे। इसी प्रकार जिसके हस्त आदि कटे हों ऐसे बड़े भाईसे भी परिवेत्तृत्व दोष नहीं लगता। यही त्रिकांडमंडनने लिखा है कि, अमावस्याश्राद्ध, पूर्णिमाश्राद्ध, सोमयज्ञ, अग्निसंग्रह, अग्निहोत्र, विवाह सहोदर ज्येष्ठ भ्राताके न करनेतक इसका स्वयं आरम्भ आप न करे और यदि सहोदर भी ज्येष्ठ भाई अन्यसे उत्पन्न क्षेत्रज आदि हो अथवा अपने पितासे ही उत्पन्न हुआ भिन्नौदर्य ( मौसी आदिका पुत्र ) हो तो

तोऽस्ति भिन्नोदर्येऽपि चौरसे । पंग्वन्धमूकबधिरपतितोन्माददूषणे ॥ संन्यस्तच्छिन्न-हस्तादौ यद्वा षण्ढादिदूषणे । जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्याद्देवेतरः क्रियाम् ॥ ४ ॥ ” इति । 'आरोहतं दशतं शक्वरीर्मम' इत्याधाने मन्त्रवर्णनाच्च । शक्वरीरंगुलीः । तन्त्ररत्नेऽप्युक्तम्–'अङ्गवैकल्यात्पूर्वमाहिताग्नित्वेऽधिक्रियेतैव नित्येषु । आधानं तु न कुर्यात्तस्य नैमित्तिकत्वात्' इति । एवं चतुरंगुलेऽपि । षडंगुलकाणविवर्णादि-स्त्वस्त्येवाधिकारः । एकादशसु दशान्तर्गतेः । ' शरीरकार्श्यं वा विप्रतिषिद्धम् ' इति हिरण्यकेशिसूत्रे कर्माशक्तिहेतोरेवाङ्गवैकल्यस्य निषेधात् । अत एव द्राह्या-यणसूत्रे–'याज्यश्च प्रथमैस्त्रिभिर्गुणैः' इति न्यूनाङ्गस्याप्यधिकार उक्तः । अपरार्के उशनाः–"पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाथ कस्यचित् । तपोऽग्निहोत्रमन्त्रेषु न दोषः परिवेदने ॥ " पितुराज्ञायामप्यदोषमाह मदनरत्ने सुमन्तुः–"पित्रा यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत् । अग्निहोत्रेऽधिकारोऽस्ति शंखस्य वचनं यथा ॥ " इति । नाधानं कृतमित्यर्थः । एतदाज्ञायामेवेति हेमाद्रिः । यत्तु–'पितुः सत्य-प्यनुज्ञाते नादधीत कदाचन ।' इति । तत्सत्यधिकारे ज्ञेयम् । अथ शूद्रसंस्कारे

---

इनके होनेपर अधिकार नष्ट नहीं होता और यदि सगा बड़ा भाई लँगडा, अंधा, गूंगा, बहिरा, पतित, उन्मत्त, संन्यासी, हस्त आदि कटा हुआ तथा नपुंसक हो तो इतर छोटा भाई विवाहआदि कर्मको कर ले और यह आधानका मंत्र भी कहा है कि, मेरी अंगुली दश स्थानमें उत्पन्न हुई बढ़े । तंत्ररत्नमें भी कहा है कि, अंगके कमती बढ़ती भावसे पहिले जिसने अग्न्याधान कर लिया हो उसको नित्य कर्मोंके करनेका अधिकार है, वह नैमि-त्तिक होनेसे अग्निहोत्रको न करे, इसी प्रकार चतुरंगुलको भी जानना । एकादशमें दशोंके अन्तर्गत होनेसे जिसके छः अंगुली हों उसको अथवा काने और कानहीनको दोष नहीं है । कारण कि, अंगविकलताका निषेध इस हिरण्यकेशिसूत्रमें कर्म करनेकी अशक्तिसे ही लिखा है कि, शरीरका दुबला होना अग्न्याधानमें निषिद्ध नहीं, अर्थात् उसे कर्म कर-नेकी शक्ति है । इसीसे इस द्राह्यायणसूत्रमें न्यून अधिक अंगवालेको भी अधिकार लिखा है कि, प्रथम तीन गुणों (सत्त्व) आदिसे यज्ञ करावे । अपरार्कमें उशनाने कहा है कि, जिसके पिता, पितामह हों और जो किसीका बड़ा भ्राता हो तो उसको परिवेदनमें तप अग्नि-होत्रोंमें दोष नहीं लगता । पिताकी आज्ञाके विना भी दोषभाव मदनरत्नमें सुमंतुने लिखा है कि, जिसके पिताने आधान न किया हो उसका पुत्र किस प्रकार करे ? इससे शंखने कहा है कि, उसको अग्निहोत्र करनेमें अधिकार है, यह पिताकी आज्ञासे ही करना चाहिये, यह हेमाद्रि लिखते हैं । और जो कि, किसीने यह लिखा है कि, पिताकी आज्ञा होनेपर भी अग्न्याधानको कभी भी न करे, यह बात अधिकारके होने-पर ही जाननी । अब शूद्रसंस्कारोंको कहते हैं कि, संस्कारको प्राप्त होनेपर शूद्र भी उसी

निर्णयः । यमः-"शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः । न केनचित्सम-सृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ॥" छन्दसा मन्त्रेण । व्यासोऽपि-"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च । नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नप्राशनं वपनक्रिया॥ कर्णवेधो व्रता-देशो वेदारम्भक्रियाविधिः । केशान्तस्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ त्रेताग्नि-संग्रहश्चैव संस्काराः षोडश स्मृताः ॥ ३ ॥" इत्युक्त्वाह-"नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः । विवाहे मन्त्रितस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश ॥" इति ॥ हिरण्यगर्भदाननिर्णयः । मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु-"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥" इत्युक्त्वा 'जातकर्मादिकाः कुर्यात् क्रियाः षोडश चापराः ।' इत्यत्र ' स्त्रिया जातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाहाः षट् । शूद्राणां तु षडेते पञ्चमहायज्ञाश्चेत्येकादश ॥' इत्युक्तम् । रूपनारायणहरिहरभाष्ययोरप्येवम् । शार्ङ्गधरस्तु-'द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि । पञ्च व मिश्रजा-

---

प्रकार मन्त्रके विना कर्म करे; कारण कि, ब्रह्माने किसी मन्त्रसे भी उसकी रचना नहीं की । व्यास कहते हैं कि, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, केशांत, स्नान, विवाह, अग्निका संग्रह, त्रेता अग्निका संग्रह, ये सोलह संस्कार हैं, यह कहकर वह लिखा है कि, यह कर्णवेधतक नौ कर्म स्त्रियोंके विना मंत्र ही होते हैं और विवाह मन्त्रोंसे होता है, शूद्रके ये विवाह समेत दशकर्म मन्त्रके विना ही होते हैं । मदनरत्नमें हिरण्यगर्भदानमें तो गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त ये कर्म द्विज, हिरण्यगर्भ ( शूद्र ) के करे, यह कहकर लिखा है कि, जातकर्मसे लेकर और सम्पूर्ण षोडशकर्म करे, इसमें स्त्रीके जातकर्म, नामकरण, निष्क्रम, अन्नप्राशन, चूडा, विवाह यह छः कर्म हैं और शूद्रोंके छः ये और पञ्चमहायज्ञ इस प्रकार ग्यारह कहे हैं, इसी प्रकार रूपनारायण और हरिहरभाष्यमें देखलेने चाहिये, शार्ङ्गधर कहते ह कि, द्विजातियोंके सोलह संस्कार हैं और शूद्रोंके द्वादश और दूसरे वर्णसङ्कर जातियोंके पांच संस्कार हैं।

---

१ "वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः परः । पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च ॥" इति मनूक्तौ संस्कृताज्ञातृत्वेनैव सिद्धौ ॥ अर्थात्-विवाह संस्कारके समयसे ही स्त्रीका गुरु पति ही होता है, पतिकी सेवा ही स्त्रीको गुरुकुलमें वास और गृहकार्य ही अग्निकी सेवा है, इससे पतिके गायत्री जप वेदपाठ भी मानो स्त्रीके ही किये हुए हैं और यथावकाश पति ही अध्ययन करा सकता है, पतिके संस्कारोंसे स्त्री संस्कृत है; कारण कि, मनुजी कहते हैं जो नामधेयका अभिवादन नहीं जानते वह मैं प्रणाम करता हूं इस प्रकार कहे और इसी प्रकार स्त्री कहे इससे सब स्त्रियोंका विशेषण कहनेसे संस्कृतज्ञाता भी आचार्यपत्नी इसी प्रकार कहे ॥

तीनां संस्काराः कुलधर्मतः ॥ देवव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम् ॥ " द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाममन्त्रतः इत्याह । अपरार्कस्तु-'गर्भाधानमृतौ पुंसः' इत्यत्राह । एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् । न द्विजातिमात्रपरम् । तथासत्युपनयनं विधाय वाच्यं स्यात् इति तेन तन्मतेऽष्टौ भवन्ति ॥ ब्राह्मे तु-"विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा ।" इत्युक्तम् । अत्र सदसच्छूद्रगोचरत्वेन देशभेदाद्वयवस्था ॥ यत्तु मनुः-'न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।' इति ॥ तदर्थमाह मेधातिथिः-'यत्सामान्यतो निषिद्धं स्तेयानृतादि न तदतिक्रमेऽस्य पापं यथा द्विजानाम् । उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हति ।' इति ॥ ते च तूष्णीं कार्याः-"शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति । वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ " इति व्यासोक्तेः । 'अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते ।' इति मरीच्युक्तेश्च ॥ इयं परिभाषा सर्वार्था, तेन शूद्रधर्मेषु सर्वत्र विप्रेण मन्त्रः पठनीयः । सोऽपि पौराण एवेति शूलपाणिः ॥ एवं स्त्रीणामपीति दिक् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ संस्कारनिर्णयः ॥ अथ क्षुद्रकालाः । तत्र जलाशयकालो वाराहे-"हस्ते चाम्बुपपौष्णकेशवमघामित्रोत्तरारोहिणीदेवे-

---

वे नाम मन्त्रसे होते हैं; यथा गणेशकी पूजामें ' गणेशाय 'नमः'। अपरार्कने तो ऋतुकालमें गर्भाधान तथा पुंसवन करनेमें यह लिखा है कि,यह बात चारों वर्णोंके विषयमें है, केवल ब्राह्मणजातिमात्रके विषयमें नहा जानना । कारण कि, इसी प्रकार मानोगे तो यज्ञोपवीतको करके यह अर्थ होगा इससे उसके मतमें आठ संस्कार लिखे है । ब्रह्मपुराणमें तो यह कहा है कि, शूद्र भी विवाहमात्र संस्कारको सदा प्राप्त होसकता है,इसमें देशभेदसे अथवा यह श्रेष्ठ और अधम शूद्रके विषय होनेसे व्यवस्था लेनी है जो कि, मनुने यह लिखा है कि, ( न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ) इसका अर्थ मेधातिथिने यह लिखा है कि, जो चोरी अथवा झूँठ बोलना आदि सामान्यसे निषिद्ध हैं, इनके अतिक्रम (उलंघ ) से जैसे द्विजोंको पाप लगता है, वैसे इस शूद्रको नहीं होता और यह शूद्र उपनयनरूप संस्कारके योग्य नहीं है । वे संस्कार मौन होकर करे; कारण कि, व्यासने कहा है कि, चौथा वर्ण शूद्र वर्ण होनेसे वेदके मन्त्र स्वधा स्वाहा वषट्कार आदिके विना वेदविहितधर्मके योग्य होता है । और मरीचि लिखते हैं कि, मन्त्रोंसे रहित शूद्रोंके निमित्त ब्राह्मण मन्त्रोंको पढे, यह वाक्य सबोंके निमित्त है इससे शूद्रके धर्मोंमें सर्वत्र ब्राह्मणको पौराणिक मन्त्र पढ़ना चाहिये,यह शूलपाणिका कथन है। स्त्रियोंके कर्ममें भी जानना चाहिये, यह संक्षेपसे कहा है। इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां संस्कारनिर्णयः ॥ अब क्षुद्रकाल कहते हैं-इसमें प्रथम कूपादिका समय निरूपण करते हैं, वराहमें लिखा है कि,

ज्येषु च शुक्रसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके। रिक्तां छिद्रातिथिं विहाय वृषभे नक्रे कुलीरे घटे मीने कूपतडागकर्म मुनयः शंसन्ति शुद्धेऽष्टमे ॥ हस्तो मघानुराधा-पुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः। शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥ २ ॥" हेमाद्रौ भविष्ये–"तस्मिन् सलिलसंपूर्णे कार्त्तिके तु विशेषतः । मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीते चोत्तरायणे ॥ न कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम् ॥" दीपिकापि–"मार्तण्डेन्दूडुशुद्धौ मुरजिदशयने माघषट्कस्य शुक्ले मूलाषाढोत्तराश्विश्रवणगुरुकरे पौष्णशुक्राज्यचन्द्रे। मैत्रे ब्राह्मे च पूर्णा मदन १३ रवि १२ तिथौ साद्वितीयातृतीये कार्या तोयप्रतिष्ठा ज्ञगुरुसितदिने कालशुद्धे सुलग्ने ॥" वराहः–"आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः। नित्यं स करोति भयं दाहं च समानसं प्रायः ॥ नैर्ऋत्ये बालभयं वनिताक्षयं च वायव्ये। दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषास्तु शुभावहाः कूपाः ॥ २ ॥" वास्तुशास्त्रे–"भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुरंध्रीनाशं मृत्युं संपदं शत्रुबाधाम् । किंचित्सौख्यं शंभुकोणादि कुर्यात्कूपो मध्येगेहमर्थक्षयं च ॥" उत्सर्गविधिश्चोक्तो बह्वृचपरिशिष्टे–"अथातो वापीकूपतडागयज्ञं व्याख्यास्यामः। पुण्येऽह्न्युदकसमीपेऽग्निं समाधाय वारुणं चरुं श्रपयित्वाज्यभागान्ते आज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ समुद्रज्येष्ठेति प्रत्यृचं ततो हविषाष्टौ

---

कुएको हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा नक्षत्रमें प्रारंभ करे। हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, जलभरे कुएकी प्रतिष्ठा कार्तिकमें करनी। कोई मुनि उत्तरायणके बीतनेपर कहते हैं इसमें कारण जल है, समयका नियम नहीं है अर्थात् जब जलसे पूर्ण हो तभी प्रतिष्ठा आरम्भ करे। दीपिकामें कहा है कि, सूर्य, चन्द्र, ताराकी शुद्धि होनेपर विष्णुके शयनको छोड़कर माघादि छः महीनोंमें शुक्लपक्ष, मूल, उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, हस्त, रेवती, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशिर, अनुराधा इन नक्षत्रोंमें तथा पंचमी, दशमी, पूनो, १३। १२। २। ३ तिथि, बुध, बृहस्पति, शुक्रवार, श्रेष्ठ लग्न और पवित्र कालमें जलाशयकी प्रतिष्ठा करे। वराहने कहा है कि, ग्राम या घरसे अग्निकोणमें कूप हो तो नित्य भय, दाह तथा इनके तुल्य दुःखको करता है, नैर्ऋत्यमें बालकोंको भय, वायव्यमें स्त्रीका क्षय होता है, इस कारण इन तीन दिशाओंको छोड़कर और दिशाको कूप उत्तम होता है तथा अच्छा फल मिलता है। वास्तुशास्त्रमें लिखा है कि, ईशानादि अष्टदिशाओंमें निर्मित कूप क्रमसे ऐश्वर्य, पुष्टि, पुत्रनाश, स्त्रीनाश, मृत्यु, सम्पत्ति, शत्रुकी पीडा, कुछ सुख करता है और मध्यमें बनवाया हुआ घर और धन नष्ट करता है। बह्वृचपरिशिष्टमें इसकी उत्सर्गविधि लिखी है। अब बावडी, कूप, सरोवरका पूजन लिखते हैं–अच्छे दिन जलके निकट अग्न्याधान करे, उसपर वरुणदेवतावाले चरुको पकावे, फिर 'तत्त्वायामि' इत्यादि ऋचासे 'इम्ममे वरुण' इस मन्त्रसे तो आहुतियोंसे स्विष्टकृत् हवन करने

त्त्वायामीति पञ्च त्वं नो अग्ने इति द्वे इमं मे वरुणेति च स्विष्टकृतं नवमम्। मार्जनांते धेनुं तारयेत्। अवतीर्यमाणामनुमन्त्रयेत्—"इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूताः अमृताः सन्तु नित्यम्॥ मां तारयन्ती कुरु तीर्थाभिषेकं लोकाल्लोकं तरते तीर्यते च॥" इति पुच्छाग्रेऽन्वारभ्य उत्तीर्यापो अस्मान्मातरः शुन्धयंत्वित्यथापराजितायां दिश्युपस्थापयेत्सूयवसाद्भगवतीति हि कृतं चेद्धिङ्कृण्वतीत्यलंकृतां विप्राय दद्यादितरां नाशक्त्या दक्षिणां तत उत्सृजेद्देवपितृमनुष्याः प्रीयन्तामिति ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत॥" इति। विस्तरस्तु मात्स्योक्तोऽस्मत्कृते जलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः। कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष उक्तो भविष्ये—"सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम्। कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्प्रष्टव्यमसंस्कृतम्॥ तथा—" वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम्। अपेयं तद्भवेत्सर्वं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥" अथ वृक्षारोपणम्। चण्डेश्वरः—"आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरंगमवारुणाश्च। एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमिहोपादिशंति धीराः॥" अथ मूर्तिप्रतिष्ठानिर्णयः। वसिष्ठः—"हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु। तिस्रोत्तराधातृशशांकभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात्॥"

---

उपरान्त मार्जन करे, फिर गौको जलमें तैराय उससे यह प्रार्थना करे कि, हे गौ! इस जलको तू शुद्ध और निर्मल कर, यह जल सदा पवित्र अमृतरूप रहे, फिर मुझे तराती हुइ तू तीर्थाभिषेक सम्पादन कर। तथा लोकसे लोक तरता तराता है, इस मन्त्रसे पूंछका अग्रभाग थांभकर 'आपो अस्मा०' इस मन्त्रसे दक्षिणा और उस गौका गमन करावे, तब "सूर्यवसाद्भगवती" इत्यादि तीन मन्त्रोंसे गौको आभूषण पहराय छोड़ दे उसे वा और गौको ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करे, फिर शक्तिसे दक्षिणा देकर कहे कि, देवता और पितर प्रसन्न हों, फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराय स्वस्तिवाचन करावे। इस विधिका विस्तार मत्स्यपुराणमें हमारी निर्मित की हुई जलोत्सर्गविधिमें जानना चाहिये। कूप आदिका उत्सर्ग न करे तो उसमें दोष भविष्यपुराणमें यह लिखा कि, जल सदा पवित्र होता है पर संस्कृत ही जल अपवित्र होता है, हे राजन्! असंस्कृत जलको कुशाके अग्रसे भी न छुए तथा बावडी, कूप, सरोवर इनके असंस्कृत जलको न पान करे। यदि पी ले तो चान्द्रायण व्रत करे। अब वृक्षारोपण कहते हैं—चण्डेश्वर कहते हैं कि, पुनर्वसु, मृगशिर, मघा, पुष्य, विशाखा, रेवती, मूल, तीनों उत्तरा, अश्विनी, शतभिषा इन नक्षत्रोंमें वृक्ष लगाना मनुष्योंको हितकारी है, यह पण्डित कहते हैं। अब मूर्तिप्रतिष्ठाको कहते हैं—वशिष्ठ कहते हैं कि, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा और श्रवणसे तीन, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्रोंमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ फल देती है। मत्स्यपुराणमें

मात्स्ये-"चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा । माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥" नारदस्तु चैत्रं निषेधति-' विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु ।' इति ॥ तेनात्र विकल्पः । अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तविषयः ।' माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् ' इति विष्णुधर्मोक्तेरिति हेमाद्रिः । मात्स्ये-" दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता । द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा ॥ चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यमस्य स्यात्सुखावहा । विनायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा ॥ पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत् । षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी ॥ अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति । भद्रकाल्याः कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये ॥ धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ । एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा ॥ त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति । कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् ॥ पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी भवेत् । आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा । हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा ॥ अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते ॥ १ ॥" श्रीपतिः-"रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवाऽ-

---

लिखा है कि, चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख, माघमें सब देवोंकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है। नारदने तो प्रतिष्ठामें चैत्रमासको वर्जित किया है। कारण कि, यह कथन है कि, चैत्रसे रहित माघ आदि पांच महीनोंमें प्रतिष्ठा करे, इस वाक्यसे यहां विकल्प है। हेमाद्रिने यहां माघ महीना विष्णुकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें कहा है; कारण कि, विष्णुधर्ममें लिखा है कि, माघमासमें विष्णुकी प्रतिष्ठा करनेवालेको नष्ट करनेवाली है और फाल्गुनमें शुभ देती है, यह विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है, ऐसा हेमाद्रि कहते हैं। मात्स्यमें लिखा है कि, प्रतिपदाके दिन दृढ ( सदा रहनेवाली ), धनकी करनेवाली, स्फीत अर्थात् अतिशय वृद्धि करनेवाली होती है तथा द्वितीया आदि पूर्णिमा पर्यंत पन्द्रह १५ तिथियोंमें की हुई प्रतिष्ठा क्रमसे धनसे युक्त, धन देनेवाली, नाशकारक, लक्ष्मीसे युक्त तथा कर्ताको वरदायक, लक्ष्मीयुक्त, रोगनाशक, बहुत धान्यकी समृद्धि कर्ता, नाशवान, धर्मकी वृद्धिके करनेवाली, सर्व कामनाओंकी दाता, सर्वकामदाता, सर्वकामप्रदा, नाशकारक, कर्ताकी नाशक, सम्पूर्ण कामनाओंकी दाता होती है और चतुर्थीमें यमराज तथा गणेशकी प्रतिष्ठा सुख और हितदायी होती है। नौमीमें भद्रकालीकी प्रतिष्ठा करनेवालेको प्रसन्न करनेवाली है, इससे इनसे सिवायकी प्रतिष्ठाओंमें पूर्वोक्त फल जानना। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, मूल, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिर, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठामें उत्तम हैं। श्रीपति कहते हैं कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनुराधा, मृगशिर,

नूराधैन्द्रेवजीवभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम् ॥ गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥ तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा दृढा च । आनन्दकृत्कल्पविनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥" माधवीये वैखानसः–" मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः । महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥" वैशब्दोऽप्यर्थे । लिंगप्रतिष्ठायां विशेषः हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चये–" उत्तराशागते भानौ लिंगस्थापनमुत्तमम् । दक्षिणे त्वयने पूज्यं त्रिवर्षार्द्धे भयावहम् ॥ स्वगृहे स्थापनं नेष्टं तस्माद्वै दक्षिणायने । स्थापनं तु प्रकर्तव्यं शिशिरादावृतुत्रये ॥ प्रावृषि स्थापितं लिंगं भवेद्वरदयोगदम् । हेमन्ते–"ज्ञानदा चैव श्रेष्ठा स्यादयने मुक्तिमीहताम् । दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः॥" इति । शैवसिद्धान्ते–" शेखरोक्तेर्मुक्तिकामं शिशिरे गर्वभूतिदम् । लक्ष्मीप्रदं वसन्ते च ग्रीष्मे च जयशान्तिदम् । यतीनां सर्वकाले च लिंगस्यारोपणं मतम् ॥" रत्नावल्याम्–

---

पुष्य नक्षत्रोंमें विष्णुकी तथा पुष्य, श्रवण, अभिजित्में इन्द्र, ब्रह्मा, कुबेर, स्वामिकार्त्तिककी, अनुराधामें सूर्यकी, हस्त, मूलनक्षत्रमें दुर्गा आदिकी स्थापना उत्तम है । गणेश, रक्ष, यक्ष, भूत, असुर, प्रमथ, फणी, ( शेष ), सरस्वती आदिकी रेवतीमें, सुगत ( जिन ) की श्रवणमें, अन्य लोकपालोंकी धनिष्ठामें स्थापना उत्तम कही है, इनमें अखिल (सम्पूर्ण) देवताओंकी स्थिरनक्षत्रोंमें स्थापना उत्तम है। सूर्यआदि वारोंमें की हुई प्रतिष्ठा क्रमसे तेजस्विनी, मंगलकारी, अग्निदाहकारक, धनदाता, बलवान्, आनन्दकर्ता, कल्प (सामर्थ्य) की नाशकारक होती है । माधवीयमें वैखानस कहते हैं कि, माता, भैरव, वाराह, नृसिंह, विष्णु, महिषासुरघातिनी, दुर्गा इनका दक्षिणायनमें स्थापन करे, यहां अपिके अर्थमें वैशब्द है, अर्थात् उत्तरायणमें भी स्थापन करे । लिंगप्रतिष्ठामें तो हेमाद्रिमें लक्षणसमुच्चयके वाक्यसे यह विशेष लिखा है कि, उत्तरायण सूर्यमें लिंगस्थापन श्रेष्ठ है, दक्षिणायनमें स्थापित किया लिंग डेढ १ ॥ वर्षतक भयदायी है, इससे दक्षिणायन सूर्यमें अपने घरमें शिवलिंगका स्थापन न करे । शिशिर आदि तीन ऋतुओंमें स्थापना करना चाहिये । प्रावृट् ऋतुमें शिवलिंग स्थापन करनेसे वर और योग देता है, हेमन्तमें ज्ञानको प्रदान करता है। और शैवसिद्धांतमें शेखरका तो यह कथन है कि, भोगकी इच्छावाला उत्तरायणमें और मोक्षका अभिलाषी दक्षिणायनमें लिंगकी प्रतिष्ठा करे और मलमासमें लिंगकी प्रतिष्ठा त्याज्य, है इसीसे मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्य गर्व और भूतिका दायक लिंग स्थापन शिशिर तथा हेमंतमें करे । वसंत तथा ग्रीष्म ऋतुमें लिंगका स्थापन क्रमसे लक्ष्मी और जयशांतिको देता है । यति ( संन्यासि ) योंको तो लिंगका स्थापन

"माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु । मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम् ॥" विष्णुरप्याह ॥ तत्रैव वैखानसः-" मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा । मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च ॥ वृषे वाप्याश्वयुङ्मासे श्रावणे मासि वा भवेत् ॥ " बौधायनसूत्रे विष्णुप्रतिष्ठामुपक्रम्य-'द्वादश्यां श्रोणायां वा यानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणि ' इति । कृत्तिकादिविशाखान्तेष्वित्यर्थः । सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे-" माघे कर्तुर्विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् । लोकानन्दकरी चैत्रे वैशाखे वरसंयुता ॥ आज्ञायुता सदा ज्येष्ठे आषाढे धर्मवृद्धिदा । श्रावणे धनहीना स्यात्प्रौष्ठपादे विनश्यति ॥ आश्विने नाशमाप्नोति वह्निना कार्त्तिके तथा । सौम्ये सौभाग्यमतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा ॥ दोषान्विताधिमासे स्यात्कर्तुरात्मन एव च ॥ ४ ॥ " इति । अत्र श्रावणाऽश्विनयोर्निषेधो मार्गशीर्षविधिश्च विष्णुव्यतिरिक्तविषयः पूर्वोक्तवचनादिति हेमाद्रिः । माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः शिवव्यतिरिक्तविषयः । तत्र तस्योक्तेः । तत्रैव देवीस्थापननिर्णयः । देवीस्थापने तत्रैव विशेषो देवीपुराणे-'देव्या माघेऽश्विने मासे उत्तमा सर्वकामदा । ' तथा-" न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम् । सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः ॥" अन्यश्चात्र विचारो हेमाद्रौ

---

सब कालमें करना । रत्नावलीमें भी लिखा है कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ इन पांच मासोंके शुक्लपक्षमें लिंगस्थापन उत्तम है। विष्णु तथा वैखानसका वाक्य है कि ब्रह्माने पूर्व मार्गशीर्ष पौष ये दो मास निन्दित कहे हैं और फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आश्विन, श्रावण इन मासोंमें भी श्रेष्ठ है । बौधायनसूत्रमें तो विष्णुकी प्रतिष्ठाका आरम्भ करके यह लिखा है कि, भादोंकी द्वादशी ( श्रोणा ) और कृत्तिकासे लेकर विशाखा पर्यन्त जो शुद्ध नक्षत्र हैं वे श्रेष्ठ हैं । हेमाद्रिमें विष्णुधर्मका कथन है कि, माघादि बारह महीनोंमें सब देवोंकी की हुई स्थापना क्रमसे यह फल देती है कि, कर्त्ताका नाश, कल्याण, संसारको सुख, वरयुक्त, आज्ञामें तत्पर, धर्मकी वृद्धि, धनका नाश, विनाश, हानि, वह्निसे नाश, अतुल सौभाग्य, सर्वोत्तम पुष्टि, तथा मलमासमें की हुई प्रतिष्ठा करता और अपनेको दोष देनेवाली होती है । इसमें श्रावण और आश्विनका निषेध और मार्गशीर्षकी विधि प्रथम कहे हुए वाक्योंसे विष्णुकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें है यह हेमाद्रिका कथन है और माघ, श्रावण, भाद्रपदका निषेध शिवकी प्रतिष्ठासे औरके विषयमें है । कारण कि, इनमें शिवकी प्रतिष्ठा लिखी है । वहां ही देवीकी प्रतिष्ठामें देवीपुराणके कथनसे यह विशेष लिखा है कि, देवीका स्थापन आश्विन तथा माघ महीनेमें उत्तम और सम्पूर्ण इच्छाओंको देता है, इसमें तिथि, नक्षत्र तथा व्रतका दिन कारण नहीं, अर्थात् समयका नियम नहीं सम्पूर्ण

ज्ञेयः ॥ नारदः-" हन्त्यर्थहीना कर्त्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् । स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥ " अत्राधिकारिनिर्णयः । अत्राधिकारिण उक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे-" वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा । ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ॥ चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥ मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः । लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत्सदा ॥ " शिवसर्वस्वे भविष्ये-" यस्तु पूजयते लिङ्गं देवादिं मां जगत्पतिम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः ॥ तस्य प्रीतः प्रदास्यामि शुभाँल्लोकाननुत्तमान् ॥ " तिथितत्त्वे स्कान्दे-"शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये । तस्याहमर्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते । एवं दिनेदिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम् ॥ संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् । नमोऽन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते ॥ ३ ॥" एतच्च

---

समयमें करना और विशेषकर कृष्णपक्षमें करना, इसमें और विचार हेमाद्रिमें जानना चाहिये। नारदने लिखा है कि, अर्थ ( धन ) से हीन प्रतिष्ठाके करनेवालेको, मन्त्रसे हीन ऋत्विक्को लक्षणोंसे हीन स्त्रीको प्रतिष्ठा नष्ट करती है, निदान प्रतिष्ठाके तुल्य और कोई भी वैरी नहीं है। इसमें अधिकारी तो कृत्यकल्पतरु ग्रन्थमें देवीपुराणमें ये लिखे हैं कि, वर्ण और आश्रमोंके भेदसे देवताओंका स्थापन करना चाहिये अन्यथा न करे। ब्राह्मणको गायत्री सहित ब्रह्माका स्थापन करना चाहिये, तथा सुखकी इच्छावाले चारों वर्णोंको विष्णुका स्थापन करना चाहिये, चारों वर्ण तथा अंत्यज ( अतिशूद्र ) को भैरवका स्थापन करना चाहिये, सम्पूर्ण लोक सुरोंमें श्रेष्ठ मातृकाओंका स्थापन तथा अर्चन करें, गृहस्थी और यति लिंगका स्थापन करके निरन्तर पूजन करे । शिवसर्वस्वमें भविष्यपुराणके मतसे लिखा है कि, जो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र मेरे तत्पर होकर देवताओंमें प्रथम तथा जगत्के स्वामी मेरा लिंगमें अर्चन करता है उसको मैं प्रसन्न होकर उत्तमोत्तम सुन्दर लोकोंका प्रदान करता हूँ। तिथितत्त्वमें स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, हे प्रिये ! शूद्र भी जो मेरी पूजाके कामोंको सदैव करता है हे चन्द्रखण्डसे विभूषित ! मैं उसकी पूजाको ग्रहण करता हूँ। हे शोभन व्रतवाली ! हे देवि ! ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थको प्रतिदिन इसी प्रकार अम्बिकापतिका पूजन करना चाहिये । संन्यासी ॐकार मात्रसे महादेवका अर्चन करे और स्त्री 'ॐनमः शिवाय' इस मन्त्रसे अर्चा करे; ये वाक्य पुराणोंमें प्रसिद्ध विश्वेश्वर आदि पुरातन लिंगोंके पूजाके विषयमें हैं ।

---

१ अन्नहीन राष्ट्रको मन्त्रहीन ऋत्विकको और श्रद्धाहीन यज्ञकर्ताको नष्ट करता है इससे यज्ञके समान शत्रु नहीं है ।

पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गपूजाविषयम् । स्त्रीशूद्रस्थापितविग्रहादौ निर्णयः । यानि तु त्रिस्थलीसेतौ नारदीये-" यः शूद्रेणार्चितं लिङ्गं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ नमेद्यः शूद्रसंस्पृष्टं लिङ्गं वा हरिमेव वा । स सर्वयातनाभोगी यावदाचन्द्रतारकम् ॥ पाषण्डपूजितं लिङ्गं नत्वा पाषण्डतां व्रजेत् । आभीरपूजितं लिङ्गं नत्वा नरकमश्नुते ॥ योषिद्भिः पूजितं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेत्तु यः । स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवं वसेत् ॥ ४ ॥ " इत्यादीनि । तानि नूतनस्थापितलिङ्गादिविषयाणि ॥ "यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्भिर्यथाविधि । तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वापि न संस्पृशेत् ॥" इति तत्रैवोक्तेः । स्त्रीशूद्राणां प्रतिष्ठाधिकारनिषेधनिर्णयः । प्रतिष्ठायां तु शूद्रादीनां नाधिकारः । "स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर । स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य वा ॥ यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वापि नमेन्नरः । इहैवात्यन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु ॥ शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा । केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ३ ॥ " इति बृहन्नारदीयस्कान्दोक्तेरिति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः । चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्ण्वादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति युक्तं पश्यामः । तत्रैव गौतमः-'शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः

---

और जो कि, त्रिस्थलीसेतुमें नारदपुराणके यह वाक्य हैं कि, जो मनुष्य शूद्रसे स्पर्श हुए लिंग तथा विष्णुकी मूर्तिकी अर्चा करता है वह नरकोंके दुःखको सूर्य चन्द्रमातक भोगता है, तथा पाखण्डियोंसे अर्चित लिंगको नमस्कार कर पाखण्डताको प्राप्त होता है और आभीरोंसे पूजित लिंगको प्रणाम करके नरकको गमन करता है तथा जो कि, ये वाक्य हैं कि, छ: ( पूर्वोक्त शूद्र आदिकों ) से पूजे हुए लिंगको तथा विष्णुको प्रणाम करता है वह कोटिकुलसहित कल्पपर्यन्त नरकमें गमन करता है, वे नवीन स्थापन किये हुए लिंगोंके विषयमें जानना । कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, जबसे मन्त्रके जाननेवालोंने जिस लिंगकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कर दी तबसे लेकर फिर उस लिंगका शूद्र और स्त्री स्पर्श न करें । प्रतिष्ठामें शूद्रआदिकोंका अधिकार नहीं है यह त्रिस्थलीसेतुमें पितामह ( हमारे बाबा ) जीके चरणोंने लिखा है। कारण कि, बृहन्नारदीयपुराणमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, हे नृप ! स्त्री, यज्ञोपवीतरहित तथा शूद्र इनको विष्णु तथा शंकरकी प्रतिमाके स्थापन करनेका अधिकार नहीं है जो कि, शूद्रसे स्थापित किये लिंग तथा विष्णुको प्रणाम करता है वह इस लोकमें ही अत्यन्त दुःखोंको प्राप्त होता है, परलोकका तो कहना क्या है शूद्र, यज्ञोपवीतरहित पुरुष, स्त्री, पतित ये विष्णु तथा शिवका स्पर्श करके नरकको गमन करते हैं, विष्णुआदिकी प्रतिष्ठाके विषयमें ' चतुर्वर्णैः ' इत्यादि लिखे हुए पूर्व वाक्यसे शूद्रका विकल्प है अर्थात् शूद्रको अधिकार भी है, यह तो हम भी युक्त ही देखते हैं. वहां ही गौतमने लिखा

कुर्यादुदङ्मुखः ॥' वाचस्पतिमतम्-'प्राक्पश्चिमोदगास्यस्तु प्रातः सायं निशासु च ' इति । प्रयोगपारिजाते गृह्यपरिशिष्टे-' प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो यजेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः ।' एतच्च स्थिरप्रतिमाविषयम् । अन्यत्र चलार्चासु ॥ प्रतिमानिर्णयः । अथ प्रतिमा भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये-"सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथा भवेत् । पाषाणधातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी तथा ॥" रीतिः-पित्तलम् । "शुद्धदारुमयी वापि देवतार्च्या प्रशस्यते । अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिं यावदेव तु ॥ गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥ २ ॥" पञ्चरात्रे तु-'मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयीं न तु ।' इति निषेध उक्तः । भागवते-"शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती । मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥" काष्ठं मधुकस्यैव । "तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे । कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनार्चयेत् ॥" इति वराहोक्तेः । देवीपुराणे-"सप्तांगुलं समारभ्य यावच्च द्वादशांगुलम् । गृहेष्वर्च्या समाख्याता प्रासादे वाधिका शुभा ॥" तिथितत्त्वे कालिकापुराणे-"प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्य देवस्य वा हरेः ॥ अन्येषामपि

---

है कि, शुद्ध मनुष्य उत्तरको मुख करके सदैव शिवजीका अर्चन करे । वाचस्पतिका तो यह कथन है कि, प्रातःकाल सायंकाल तथा रात्रिमें क्रमसे पूर्व, पश्चिम तथा उत्तरकी ओर मुख करके पूजा करे । प्रयोगपारिजातमें गृह्यपरिशिष्टका कथन है कि, जिन प्रतिमाओंका पूर्वको मुख है उनका पूजन उत्तरको मुख करके करे और दूसरोंका प्राङ्मुख होकर करे । यह भी स्थिरप्रतिमाके विषयमें है, चलदेवकी पूजाके विषे तो त्याग करे । अब प्रतिमाओंको लिखते हैं-भार्गवार्चनदीपिकामें भविष्यपुराणका लेख है कि, सोना, चांदी, तांबा, मृत्तिका पाषाण और धातुसे युक्त पीतल, कांसी, शुद्ध काष्ठकी प्रतिमा उत्तम होती है । अंगूठेके पर्वसे लेकर जितनी एक ( बिलस्त ) होती है उतनी प्रतिमा घरोंमें स्थापित करे, इतनेसे अधिक उत्तम नहीं होती यह पंडितोंका कहना है । पंचरात्रमें तो यह निषेध लिखा है कि, मृत्तिका, काष्ठ, लाख, गोमेद, मधूच्छिष्ट ( मोम ) की मूर्ति न बनावे । भागवतमें कहा है कि, शिला, काष्ठ, लोहेकी तथा लेप्य लिपी, लिखी हुई, सिकता रेतीकी, मनोमयी तथा मणिकी निर्मित हुई ये आठ प्रकारकी मूर्तियां होती हैं । यहां काष्ठशब्दसे महुएका ही ग्रहण है । कारण कि, वराहपुराणमें लिखा है कि, यहां हे वसुन्धरे ! काष्ठोंमें मधुकको लाकर उसकी प्रतिमा निर्माण करें फिर उसकी प्रतिष्ठाविधिसे पूजन करे । देवीपुराणमें भी कहा है कि, सात अंगुलसे लेकर बारह अंगुलतक परिमाणकी घरोंमें प्रतिमा लिखी है, प्रासाद ( मंदिर ) में तो इससे अधिक उत्तम है । तिथितत्त्वमें कालिकापुराणका कथन है, कि, प्रतिमाके दोनों कपोलोंको दाहिने हाथसे छूकर उसमें देवता वा विष्णुकी प्राणप्रतिष्ठा

देवानां प्रतिमासु च पार्थिव । प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ वासुदेवस्य बीजेन तद्विष्णोरित्यनेन च । तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ॥ एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयेऽपि समाचरेत् । अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥ ९ ॥" हयशीर्षपञ्चरात्रे–"अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशमयनात् । आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छाति ॥" प्रयोगपारिजाते व्यासः–"प्रतिमापटयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् । कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥" लिङ्गे विशेषस्तिथितत्त्वे भविष्ये–"मृद्भस्मगोशकृत्पिष्टताम्रकांस्यमयं तथा । कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि ॥ वार्क्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम् । कृत्वा पूजय विप्रेन्द्र लप्स्यसे वाञ्छितं फलम् ॥ २ ॥" तत्रैव कालकौमुद्यां स्कान्दे–" अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः । कुर्वीतांगुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित्समाचरेत् ॥" 'अक्षोऽशीतिर्गुञ्जाः । गुञ्जाः पञ्चाल्पमाषकः । 'ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री' इत्यमरकोशात् । प्रयोगपारिजाते क्रियासारे–"नवाष्टसप्तांगुलिकं लिङ्गं

---

करे । हे राजन् ! दूसरे देवताओंकी प्रतिमामें भी देवत्व ( देवतापन ) की सिद्धिके निमित्त प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। मन्त्रको जाननेवाला प्रतिमाके हृदयपर वासुदेव मन्त्रके बीजसे वा ' तद्विष्णोः ' इत्यादि मन्त्रसे अंगूठा रखकर इन मन्त्रोंसे हृदयमें प्राणप्रतिष्ठा करे कि, इसके निमित्त प्राण स्थित हो,इसके निमित्त प्राण गमनागमनको प्राप्त हो और इसमें जो कोई देव है वह पूजाके निमित्त देवत्वको प्राप्त हों । हयशीर्षपंचरात्रमें भी कहा है कि, अर्चकके तपके योगसे तथा अतिशयपूजाके होनेसे तथा प्रतिमाके रूपके तुल्य होनेसे देवता उसमें स्थित होते हैं । प्रयोगपारिजातमें व्यासने कहा है कि, पट्ट वा यन्त्रमें लिखी हुई प्रतिमाको नित्य स्नान न कराना, किन्तु पर्वके दिन अथवा जब मृत्तिका आदिसे मलिन हो जाय तब स्नान करावे। तिथितत्त्वमें भविष्यपुराणके वाक्यसे शिवलिंगके विषे यह विशेष वर्णन किया है कि, मृत्तिका, भस्म, गोबर, चून, ताँबा,कांसीसे लिंगको निर्माण कर जो एक वार भी पूजा करता है वह दश सहस्र१०००० कल्प पर्यंत स्वर्गमें निवास करता है। हे विप्रेन्द्र ! धनदायक काष्ठके लिंगको तथा सम्पूर्ण कामनादायक स्फटिकके लिंगको तुम पूजो इससे तुमको वांछित फलकी प्राप्ति होगी । वहां ही कालकौमुदीमें स्कंदपुराणका कथन है कि, अक्षसे थोडे परिमाणका तथा अंगुष्ठसे छोटे परिमाणका लिंग कभी भी न बनावे । अस्सी ८० चौटलियोंको अक्ष कहते हैं, कारण कि अमरकोषमें कहा है कि, पांच चौटलियोंको अल्पमाष और उन सोलह अल्पमाषोंको अक्ष तथा कर्ष कहते हैं. प्रयोगपारिजातमें क्रियासारका यह कथन है कि, नौ, सात, आठ, अंगुलका लिंग श्रेष्ठ छः पांच तथा

श्रेष्ठमिहोच्यते । षट्पञ्चकचतुर्मानं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ त्रिद्व्येकांगुलिमानं यत्त्रिविधं तत्कनीयसम् । एवं नवविधं प्रोक्तं चरालिङ्गं यथाक्रमम् ॥ २ ॥ " अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः गौतमीतन्त्रे—"लिंगमस्तकविस्तारो लिंगोच्छ्रायसमो मतः । परिधिस्तत्र गुणितस्तद्वत्पाठं व्यवस्थितम् ॥ प्रणालिका तथैव स्यात्पञ्चसूत्रविनिर्णयः ॥" अत्रेदं तत्त्वम् । लिङ्गमस्तकविस्तारं लिङ्गोच्चतासमं कृत्वा तत्त्रिगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं कृत्वा तत्समं वृत्तं चतुरस्रं वा पीठं विस्तारमधश्चोर्ध्वं च कुर्यात् । पीठोच्चता तु लिङ्गोच्चतातो द्विगुणा । पीठमध्ये लिङ्गाद्विगुणस्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कण्ठं कृत्वा तस्योर्ध्व मधश्च समं वप्रद्वयं त्रयं वा वा कृत्वा लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन पीठोपरि बाह्यमेखलां कृत्वा तदन्तः संलग्नतत्समं खातं कृत्वा पीठाद्बहिर्लिङ्गसमदीर्घां पीठार्धदीर्घां वा मूले दैर्घ्यसमविस्तारा तृतीयांशेन मध्ये खातां पीठवत्समेखलां प्रणालिकां कुर्यादिति ॥" अत्र मूलं सिद्धान्तशेखरे शैवागमे च ज्ञेयम् । तिथितत्त्वे ब्राह्मे—'सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्या-

---

चार अंगुलका लिंग मध्यम, तीन, दो तथा एक अंगुलका लिंग कनिष्ठ होता है। इस प्रकार यथाक्रम नौ प्रकारका चर लिंग होता है। अब पंचसूत्रीका निर्णय लिखते हैं—गौतमीतन्त्रमें कहा है कि, लिंगके मस्तकका विस्तार लिंगके ऊँचाईकी तुल्य करना और परिधि ( गोलाई ) तथा जलहरी और प्रणालिका ( मोरी ) ये उससे तिगुने प्रमाणकी निर्माण करनी यह पंचसूत्रीका निर्णय कहा है। इसमें तत्त्व तो यही है कि, लिंगका मस्तक लिंगकी ऊंचाईके तुल्य बनाकर फिर उससे तिगुना जिसमें सूत लिपट सके इतना स्थूल लिंग निर्माण करे फिर उतना ही नीचे ऊपरसे चौडा हो इस प्रकार गोल वा चौकोर ही जलहरीको निर्माण करे, उसकी ऊँचाई लिंगकी ऊँचाईसे दुगनी करनी चाहिये, उसका मध्यभाग उसकी स्थूलतासे दुगुना हो, आसनकी ऊँचाईके तीसरे भाग परिमित कण्ठ बनाकर और उसके नीचे ऊपर बराबरके दो परकोट निर्माण कर लिंगके विस्तारके छठे भाग परिमित आसनके ऊपर बाह्यमेखला ( लकीर ) को बनाकर वह उसके भीतर लगी हो, अथवा उसके समान खुदी हो, आसनसे बाहर लिंगके तुल्य लम्बी हो अथवा आसनसे आधे प्रमाणकी हो और मूलमें दीर्घताके समान चौडी हो, आगेसे उससे आधे विस्तारकी हो और मध्यमें उसके तीसरे भागकी समान खोदी हो ऐसी पीठक तुल्य मेखलासहित प्रणालिकाको निर्माण करे इसमें प्रमाण सिद्धान्तशेखर तथा शैवागममें लिखे देख लेने चाहिये। तिथितत्त्वके विषे ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, शिव सूर्यकी पूजाके विना सब पूजाओंमें कमल उत्तम है,

---

१ पर्वसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत् । यथाकथंचिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेत् ॥ इति सिद्धान्तशेखरे ।" अर्थात्—पंचसूत्रका विधान पार्थिवमें न विचारे जैसे हो वैसे मनोहर कल्पना करे" यह सिद्धान्त शेखरमें लिखा है।

र्चनं विना । ' तत्रैव वाराहपाद्मयोः-"गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा । द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा ॥ शक्तित्रयं तथा नार्च्यं गणेशत्रयमेव च । द्वौ शंखौ नार्चयेच्चैव भग्नां च प्रतिमां तथा ॥ नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादि-दशकं तथा । गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्च्याः पूज्या वसुंधरे ॥ एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्गृही । शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि ॥ विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि । शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका ॥ खण्डिता स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा ॥ ६ ॥" वाराहे-"दद्याद्भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः। सुवर्णसहितां दिव्यां पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥" तत्रैव-" यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम् । तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ". देवीपुराणे - " ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च पृथिवीपते । स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥ " अविभक्तानां पृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः-" पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम् । अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत् पृथक् ॥ " तत्रैव विष्णुधर्मे-" शालग्रामशिलां वापि चक्रांकितशिलां तथा । ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥". इदं स्पर्शसहितपूजाविषयम् ॥ "शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा ।

---

वहां ही वाराह तथा पद्मपुराणमें लिखा है कि, हे वसुंधरे ! घरमें दो लिंग, दो शालिग्राम, दो द्वारकाचक्र, दो सूर्य, तथा तीन शक्ति, तीन गणेश, दो शंख, खण्डित प्रतिमा, मत्स्य कूर्म आदि दशों अवतार, अग्निसे दग्ध, भग्न प्रतिमाओंको न पूजे, कारण कि, इनके पूजनसे गृहस्थ नित्य उद्वेगको प्राप्त होता है, शालग्राम सम ( चार छः आदि ) पूजे और सममें भी दोकी पूजा न करे, विषममें एकके सिवाय तीन आदि न पूजे, द्वारावतीचक्र सहित शालग्राम भग्न भी हो तो भी उनकी पूजा करनी कारण कि,शलिग्रामकी शिलाएं भग्न हुई भी सब उत्तम होती हैं। वाराहपुराणमें भी कहा है कि, जो भक्तके निमित्त सुवर्ण सहित शलिग्रामको देता है, हे देवि ! उसको पृथ्वीदानका फल प्राप्त होता है, वहां ही यह कहा है कि, जो कि, शलिग्रामकी सौ शिलाओंका भक्तिसे अर्चन करता है उसके फलको कहनेको मैं सौ वर्षमें भी समर्थ नहीं हूँ । देवीपुराणमें कहा है कि, हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये निज धर्ममें तत्पर हुए विष्णुकी आराधना करे अन्यथा न करे । अविभक्तों ( इकट्ठों ) को भी प्रयोगपारिजातमें आश्वलायनने भिन्न भिन्न देवपूजा लिखी है कि, एकपाकवाले भी द्विजातियोंको ब्रह्मयज्ञ,अग्निहोत्र, देवपूजा तथा सन्ध्या भिन्न भिन्न नित्य करनी चाहिये । वहां ही विष्णुधर्ममें कहा है कि, शलिग्रामकी शिला, द्वारावतीचक्र शिलाका ब्राह्मणको नित्य पूजन करना चाहिये, क्षत्रिय आदिको न पूजनी यह वाक्य स्पर्शसहित पूजाके

केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ ब्राह्मण्यपि हरं विष्णुं न स्पृशेच्छ्रेय इच्छती। सनाथा मृतनाथा वा तस्या नास्तीह निष्कृतिः। स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणाश्च जनेश्वर। स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥ ३ ॥" इति स्कान्दात् ॥ स्पर्शरहिता तु तयोर्भवत्येव। "शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुंधरे। स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः ॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वापि कदाचन। स्वपते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुंधरे। दूरादेवास्पृशन्पूजां कारयेत्सुसमाहितः ॥ ३ ॥" इति वाराहोक्तेः ॥ शालग्रामशिलामात्रे निर्बन्धो न प्रतिमादौ। "सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः ॥ लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च ॥" इति तत्रैवोक्तेः। "चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः। वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः ॥" इति स्कान्दात्। अन्ये तु दीक्षितविषयत्वेन व्यवस्थामाहुः ॥ विष्णुधर्मे-"तयोरसंभवेऽर्चा वै सा चेह नवधा स्मृता। रत्नजा हेमजा चैव राजती

---

विषयमें है। कारण कि, स्कन्दपुराणमें कहा है कि, शूद्र, यज्ञोपवीत रहित पुरुष, स्त्री तथा पतित ये महादेव और विष्णुका स्पर्श करनेसे नरकमें जाते हैं, कल्याणकी इच्छावाली ब्राह्मणी भी विधवा अथवा सुहागिन हो उसे भी विष्णु और शिवको न छूना चाहिये। कारण कि, फिर उसका इस लोकमें प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, हे राजन्! स्त्री, यज्ञोपवीतरहित पुरुष, तथा शूद्रको विष्णु तथा शिवके स्पर्श करनेका अधिकार नहीं है। स्पर्शरहित पूजा तो विष्णु शिवकी करनी चाहिये। कारण कि, वाराहपुराणमें लिखा है कि, हीन वर्णको शालग्रामका स्पर्श करना न चाहिये। कारण कि, स्त्री शूद्रके हाथका स्पर्श वज्रके स्पर्शसे भी अधिक होता है और जो शूद्र वा स्त्री यदि मोहसे स्पर्श कर ले तो वह प्रलयपर्यन्त घोर नरकमें जाते हैं। यदि शूद्र वा स्त्रीकी अधिक भक्ति हो तो हे वसुन्धरे! स्पर्शके विना दूरसे ही भले प्रकार सावधान होकर पूजन करे, यह स्पर्शमें शालग्राम मात्रके निषेधमें है और प्रतिमा आदिमें नहीं। कारण कि, वहां ही कहा है कि, संपूर्ण देवताओंकी प्रतिमा प्राणियोंसे रचे लिंग सब वर्णोंको पूजन करने योग्य हैं। स्कंदपुराणमें भी कहा है कि, चार चार लिंग ब्राह्मणोंको, तीन क्षत्रियोंको दो वैश्योंको तथा एक शूद्रको पूजन करने योग्य है, और तो दीक्षितके और अदीक्षितके विषयसे व्यवस्था लिखते हैं। विष्णुधर्ममें कहा है कि, उन दोनोंके न मिलनेसे प्रतिमाका अर्चन करे। वह नौ प्रकारकी

---

१ यथा-कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता। प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी। वाल्मी०। पवित्र्याण्यघमर्षणानि जपन्त्यां महाश्वेतायामिति कादम्बर्याम्। अर्थात्-रामायणके अयोध्याकाण्डमें कौसल्याने विष्णुकी पूजा की है 'महाश्वेताने अघमर्षण जपा है' यह उन्हीं स्त्रियोंके निमित्त है जो उपनीतवत् हों वही अगले श्लोकमें खोलदिया है 'स्त्रीणामनुपनीतानामिति।'

ताम्रजा तथा ॥ रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा द्रुमजा तथा । अधमाधमा च विज्ञेया मृन्मयी प्रतिमा च या ॥ २ ॥" एषां फलानि तत्रैव ज्ञेयानि ॥ "नार्च्या गृहेऽश्मजा मूर्तिश्चतुरंगुलतोऽधिका । न वितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय इच्छता ॥ एवं लक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा ॥ २ ॥" तत्रैव पाद्मे शालग्रामं प्रक्रम्य–"तत्राप्यामलकीतुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत् । यथायथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम् ॥ " तथा–"यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्धं लिङ्गमुच्यते । शिवनाभिरिति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥ " तत्रैव "शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम् ॥ यो मृतस्तत्समीपे तु मृतो वा नीयतेऽन्तिकम् । स वै मोक्षमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥ २ ॥" तत्रैव–"चक्राङ्कमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत् । चक्राङ्कमिथुनात्सार्द्धं शालग्रामं प्रपूजयेत् ॥ " तत्रैव वाराहे–" म्लेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति । योजनानां तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुंधरे ॥" तत्रैव शालग्रामं प्रक्रम्य–' क्रयक्रीता परिज्ञेया मध्यमा याचिताऽधमा ॥ ' प्रयोगपारिजाते वाराहे–" एवंलक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता । उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्तापि तत्समा ॥ " अथ पार्थिवपूजा । नन्दि-

---

है रत्न, सुवर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा, पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका इनकी निर्मित हुई जो मृत्तिकाकी प्रतिमा है वह अधमसे भी अधम जाननी, इनके फल वहां ही लिखे हैं। वहांही ब्रह्मपुराणमें शालग्रामके प्रकरणका आरम्भ करके यह कहा है कि, इसमें आमलेके समान जो कि सूक्ष्म ही हो ऐसी शालग्रामकी शिला पूजनीय है। कारण कि, जैसी जैसी शिला सूक्ष्म होगी वैसा ही उत्तम फल होगा, तैसे ही जो यवमात्रको गर्त कहते हैं, यवके आधेको लिंग कहते हैं, वह शिवनाभि नामसे प्रसिद्ध है तीनों लोकोंमें दुर्लभ है । वहांही कहा है कि, शालग्रामकी शिला जहां कहीं स्थित हो वह क्षेत्र चारों ओरसे तीन योजन वाराणसीसे भी एक जौ अधिक होता है, जो उस क्षेत्रके निकट मृत्युको प्राप्त होता है अथवा मरे हुएको जो वहां ले जाय तो उन सबको मोक्ष प्राप्त होता है यह सत्य है, अन्यथा नहीं है । वहां ही लिखा है कि, द्वारावतीचक्रके मिथुनको पूजे, एककी पूजा न करे और उसके साथ शालग्रामका पूजन करना चाहिये । वहां ही वराहपुराणभ कहा है कि म्लेच्छदेशमें अथवा शुद्ध देशमें जहां कहीं द्वारावती चक्र विद्यमान हो हे वसुन्धरे ! वहां तीन योजनतक मेरा क्षेत्र है, वहां ही शालग्रामका प्रारम्भ करके जो मूल्य देकर ली हो वह मध्यम और जो मांगी हो वह अधम होती है, यह लिखा है । प्रयोगपारिजातमें वराहपुराणका लेख है कि, इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त परम्पराके क्रमसे आयी और गुरुकी दी हुई उत्तम जाननी । अब पार्थिव लिंगकी पूजा

पुराणे-" आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी । वरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥ तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम् ॥ " तत्रैव-" गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलिपुष्पनिवेदने । ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः सर्वमन्त्राधिकश्चायमोंकाराद्यः षडक्षरः ॥" भविष्ये-'मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः । आग्नेय्यन्ताः प्रपूज्यास्तु वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ॥ " अत्र 'न प्राचीमग्रतः शंभोः' इति रुद्रयामले निषेधात् नान्तरालं प्राची किं तु प्रसिद्धैव । तिथितत्त्वे देवीपुराणे-"मृदाहरणसंघट्टे प्रतिष्ठाह्वानमेव च । स्नपनं पूजनं चैव विसर्जनमतः परम् ॥ हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक् । शिवः पशुपतिश्चैव महादेव इति क्रमः ॥ २ ॥ " स्कान्दे-'शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य निवेदयेत् ॥' तत्रैव भविष्ये-'धत्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत्पूजयते नरः । स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ " योगिनीतन्त्रे-" शिवागारे मल्लकं च सूर्यागारे च शङ्खकम् । दुर्गागारे वंशवाद्यं मधूरीं न च वादयेत् ॥" श्राद्धहेमाद्रौ स्कान्दे-'स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं वाससा आप्लुतः शुचिः ॥ ' प्रयोगपारिजाते क्रियासारे-"मध्यमाना-

---

लिखते हैं-नंदिपुराणमें कहा है कि, जो पार्थिवलिंगको पूजन करता है उसको आयु, बल, लक्ष्मी, पुत्र, धन, सुख तथा मनइच्छित वर मिलते हैं इससे पार्थिवलिंगको संपूर्ण अर्थोंका साधक जानना चाहिये । वहां ही कहा है कि, गौ, भूमि, सोना, वस्त्र आदिके तथा बलि और फूलके निवेदनमें ' ॐ नमः शिवाय ' यह मंत्र सब अर्थोंका साधन करनेवाला जानना, आदिमें ओंकारयुक्त यह षडक्षर मंत्र सब मंत्रोंमें श्रेष्ठ है । भविष्यपुराणमें लिखा है कि, पूर्वा-आदि क्रमसे आठ मूर्ति शिवजीकी हैं वे आग्नेयीदिशातक पूजन करने योग्य हैं । वेदीपर लिंगमें शिवजीकी पूजा करे, शिवजीकी मूर्त्ति जिस दिशामें हो वह यहां प्राची (पूर्व) जाननी । यह रुद्रयामलमें निषेध होनेसे प्रसिद्ध ही पूर्वदिशा लेनी चाहिये । तिथितत्त्वमें देवीपुराणका वाक्य है कि, मृत्तिकाके निर्मित किये लिंगमें प्रतिष्ठा, आवाहन, स्नान, पूजन, विसर्जन करे, हर, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति, महादेव यह क्रमसे जानने । स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, बिल्वपत्रके सूखे पत्तोंको भी निवेदन करना चाहिये । वहां ही भविष्यपुराणमें लिखा है कि, जो मनुष्य धतूरोंसे शिवलिंगको एकवार भी पूजता है उसको लक्ष गोदानका फल प्राप्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठा होती है । योगिनीतंत्रमें कहा है कि, महादेवके मंदिरमें मल्लक (बाजेका भेद), सूर्यके मंदिरमें शंख, दुर्गाके मंदिरमें वंशी तथा वीणाको न बजावे. श्राद्धहेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, महादेवके निर्माल्यको स्पर्श कर वस्त्रोंसहित जलमें स्नानसे पवित्र होता है । प्रयोगपारिजातके क्रियासारमें कहा है कि, मध्यमा और अनामिकाके मध्यमें फूलको

मिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् । अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ अपनीतं च निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् । अशून्यमस्तकं लिङ्गं सदा कुर्वीत पूजकः ॥ २ ॥" शूलपाणौ लैंगे-" वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्तनम् । न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिंगे महेश्वरम् ॥ सूतके मृतके चैव न त्याज्यं शिवपूजनम् ॥" तिथितत्त्वे लैंगे-" विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया । पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥" रुद्राक्षधारणे निर्णयः। रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये-"एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति । अवध्यत्वं प्रतिस्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्गोवधाद्यघनाशकृत् । त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति । पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत् । सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात्स्वर्णस्तेयादिपापहृत् ॥ विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत् । भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः ॥ दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः । एकादशमुखो रुद्रो

---

लेकर पूजन करे, अंगुष्ठ और तर्जनीके अग्रसे निर्माल्यको अलग करे, फिर उस दूर की हुई निर्माल्यको चण्डेशके निमित्त निवेदन कर दे, पूजन करनेवाला लिंगके मस्तकको कभी खाली न रक्खे । शूलपाणिमें लिंगपुराणका कथन है कि, प्राणोंका त्याग, तथा शिर छेदन होना उत्तम है, परन्तु शिवलिंगमें शिवको पूजे विना भोजन करना उत्तम नहीं, निदान मृतकसूतकमें भी शिवके पूजनको न छोडे. तिथितत्त्वमें लिंगपुराणका वाक्य है कि, भस्मके त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षमालाके धारण किये विना पूजे भी महादेव पूजन करनेवावालेको फल नहीं देते इससे मृत्तिकाका भी त्रिपुण्ड्र मस्तकपर चढ़ा ले । रुद्राक्षके धारणमें विशेष शिवरहस्यमें कहा है कि, एकमुखी हो वह साक्षात् शिव होते हैं, वे ब्रह्महत्याको दूर करते हैं तथा सब स्रोतोंको अवध्य और अग्निको रोकते हैं, दो मुखवाले रुद्राक्षको हरगौरी लिखते हैं, वे गोहत्या आदि पापको दूर करते हैं, तीन मुखवालेको अग्निजन्मा लिखते हैं वह पापोंके समूहोंको दूर करता है, चारमुखवाले ब्रह्मा हैं, उनसे मनुष्यकी हत्या दूर होती है, पांच मुखवाले कालाग्नि हैं, वह गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके साथ गमन तथा अभोज्यके भोजनके पापको दूर करते हैं, छः मुखवालेको गुह कहते हैं, वह सब भ्रूणहत्याके पापको दूर करते हैं, सात मुखवाले अनन्त कहाते हैं उनसे सोनेकी चोरीका पाप नष्ट होता है, आठमुखवाले विनायक हैं वे सब असत्यको नाश करते हैं, नौ मुखवाले भैरव हैं वे शिवकी सायुज्य मोक्षको करते हैं, दश मुखवाले विष्णु वह प्रेतभूतके भयको हरते हैं, ग्यारह मुखवाले रुद्र अनेक यज्ञके फल देते हैं, बारह मुखवालेको आदित्य कहते हैं वे

नानायज्ञफलप्रदः ॥ द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः । त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः । चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥ " इति । तथा-"विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः । स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् । रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥ त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥" यद्वा 'ॐ अघोर ॐ ह्रें अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप ह्रें स्वाहा' अनेनाभिमंत्र्य धारयेत् । तथा-"अष्टोत्तरशतं कार्या चतुष्पञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाधमाः स्मृताः ॥" प्रजापतिः-"मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् । पुत्रार्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सम्मुखम् । तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति ॥३॥" इति । पदार्थादर्शे बोपदेवः-"रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनवतिमितान् मस्तके विंशती द्वे षट्षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ १ ॥" हेमाद्रौ शिवधर्मे-" स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यंगः पञ्चविंशतिः । पलानां द्वे

---

सब रोगके निवारक हैं, तेरह मुखवाले काम हैं, वह सब कामना और फल देते हैं, चौदह मुखवाले श्रीकण्ठ हैं, वह वंशके उद्धार करनेवाले हैं, वैसे ही जो मन्त्रके विना भूमिलोकमें रुद्राक्षको धारण करता है, वह जबतक चौदह इन्द्र भोगते हैं तबतक नरकोंमें जाता है। स्नानके समय पञ्चगव्य और पञ्चामृत ग्रहण करे और रुद्राक्षकी प्रतिष्ठामें पञ्चाक्षरी मन्त्र तथा ' त्र्यंबकं यजामहे ' इस मन्त्रको जपे । अथवा ( ॐ अघोर ॐ ह्रें अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप ह्रें स्वाहा ) इस मन्त्रसे प्रार्थना करके धारण करे, वैसे ही माला एकसौ आठकी १०८ हो वा चौवन ५४ दानेकी हो अथवा सत्ताईस २७ दानेकी हो उससे हीन अधम लिखी है। प्रजापतिने कहा है कि, मोक्ष वा पुष्टिका अभिलाषी पच्चीस २५ दानोंसे, धनका अभिलाषी ३० से, किसीके मारनेका अभिलाषी १५ दानोंसे जपे, रुद्राक्षके २७ दानोंकी मालाको धारण करके जो पूजन करता है उसको कोटिगुणा फल होता है। जो मनुष्य पृथ्वीपर रुद्राक्षको शिवके सम्मुख ब्राह्मणको प्रदान करता है उसपर शिव प्रसन्न होते हैं तथा अपने पदको प्राप्त करते हैं। पदार्थादर्शमें बोपदेवने कहा है कि, कण्ठमें बत्तीस ३२ रुद्राक्ष और मस्तक पर ४० और दोनों हाथोंमें बारह बारह और दोनों बाहोंमें सोलह सोलह और दोनों नेत्रोंमें चार चार शिखामें एकको और छातीमें १०८ एकसौ आठ रुद्राक्षोंको धारण करनेसे वह प्राणी स्वयं शिवरूप होता है। हेमाद्रिमें शिवधर्ममें लिखा है कि, सौ पलसे स्नान, पच्चीस पलसे शरीरमें लेपन लगान

सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥ पञ्चविंशत्पलं लिङ्गे अभ्यङ्गं कारयेदथ । शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च ॥ तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः । तावतैव च क्षीरेण गव्येनैव भवेत्ततः ॥ भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैक्षवेण च । रसेन कारयेत्स्नानं भक्त्या चोष्णांबुना ततः ॥" विष्ण्वादौ तु स्कान्दे-" क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् । घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा ॥" ब्राह्मे-"देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यंगंक्षमा भवेत् । पलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिः ॥" इदं क्रोडीकृताभिप्रायेण । तत्रैव संग्रहे-"विष्वक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् । पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डेश्वराय तु ॥" पंचायतनसन्निवेशनिर्णयः । पंचायतनसंनिवेशमाह बोपदेवः पदार्थादर्शश्च-"शंभौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शंकरेभास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः ॥ देव्यां विष्णुहरेभवक्त्ररवयो लम्बोदरेऽजेश्वरेनाम्बाः शंकरभागतोऽतिसुखदा व्यस्त्यास्तु हानिप्रदाः ॥ १ ॥" शंकरभागतः-ईशानकोणादारभ्य प्रदक्षिणमित्यर्थः । अत्र दिक्स्वरूपमुक्तं प्रयोगपारिजाते मन्त्रशास्त्रे-"देवस्य मुखमारभ्य दिशं प्राचीं प्रकल्पयेत् । तदादि परिवाराणामङ्गाद्यावर-

---

और दो सहस्र २००० पलसे महा स्नान लिखा है। प्रथम पच्चीस पल घीसे लिंगके विषय शिवजीका उबटना करे, फिर सौ पल घी, सौ पल शहत, सौ पल दही, सौ पल गौका दूध, १५०० डेढ सहस्र पल ईखके रससे क्रमसे भक्तिपूर्वक स्नान करावे, फिर गरम जलसे स्नान करावे । विष्णु आदिके स्नान करानेमें स्कन्दपुराणमें यह कहा है कि, दूधसे दशगुणा दही और उससे दशगुणा अधिक घी और घीसे दशगुणा शहत और शहतसे दशगुणा ईखका रस मिलावे । ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, जहां देवताओंकी प्रतिमा हो वहां श्राद्धसे पचीस २५ पल घृतसे उबटन करावे, यह भी सबके मेलके अभिप्रायसे कहा है । वहां ही संग्रहमें कहा है कि, नैवेद्य ( मिष्ट ) के सौ भाग करके और लिंगके विषय महादेवको विष्णुका चरणामृत तथा प्रसाद दे । पांच मंदिरोंका निर्माण बोपदेवने कहा है और पदार्थादर्शमें भी है कि, शिवजी जहां बीचमें हों वहां विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा; जहां विष्णु बीचमें हो वहां शिव, गणेश, सूर्य, दुर्गा; सूर्य मध्यमें हो तो महादेव, गणेश, दुर्गा, विष्णु; और जहां दुर्गा मध्यमें हों वहां विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और गणेशके मध्य होनेमें विष्णु, शिव, सूर्य, देवी; ये ईशान कोणसे लेकर परिक्रमासे स्थापन किये हुए सुख देते हैं और यदि अस्तव्यस्त हों तो हानि करते हैं, यहां प्रयोगपारिजातके मंत्रशास्त्रमें दिशाओंका स्वरूप यह लिखा है कि, देवताके मुखसे लेकर सम्मुखकी दिशाको प्राची दिशा समझे, इससे लेकर परिवार तथा अंग आदि आवरणोंकी

णास्थितिः ॥" तत्र क्रमः पाद्मे-"रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः। अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमे तु महद्भयम् ॥" तथा-'पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता विचक्षणैः।' अथ केशवादिमूर्तयः। बोपदेवः-"केविगोवादापुहउ-प्रजाच्युकृममात्रिना। वाऽधोनृहसाऽनिश्रीपाशाच्चगे विगपे चपे ॥" अत्र केविगवित्याद्यैः केशवविष्ण्वादिचतुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयन्ते ॥ शात् शंखात् चगे चक्रगदे ज्ञेये इत्यर्थः। शिष्टे भुजे पद्मं त्वर्थतः सिद्धम् ॥ अत्र दक्षिणाधः करक्रमेण ज्ञेयम्। 'दक्षिणाऽधःकरक्रमात्' इति हेमाद्रौ वचनात्। तेन हेमाद्रिणा संवादः। विशब्देन विपरीतं गचे इत्यर्थः। अत्रापि शादित्यनुवृत्तिः। शंखाद्गदाचक्रे इत्यर्थः। गपे इत्यत्रापि शादनुवर्तते। शंखाद्गदापद्मे इत्यर्थः। विपरीते पद्मगदे इत्यत्रापि शंखाज्ज्ञेये। चपे चक्रपद्मे। शंखाच्चक्रपद्मे इत्यर्थः। वि इत्यत्रापि पद्मचक्रे इति। तेन चक्रगदे इत्यष्टौ मूर्तयः। गपे इत्यष्टौ मूर्तयः। चपे इत्यत्र च अत्र। मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम्। लिङ्गार्चाप्रतिष्ठानिर्णयः।

---

स्थिति करे। पद्मपुराणमें लिखा है कि, सूर्य, गणेश देवी, महादेव और पांचवें विष्णुका क्रमसे पूजन करे। कारण कि, विना क्रम करनेसे अतिशय भय होता है, इसी प्रकार यह भी कहा है कि, पूज्य (प्रतिमा आदि) और पूजककी मध्य दिशाको पण्डितजन प्राची लिखते हैं। अब केशव आदि मूर्तियोंको लिखते हैं-केशव, विष्णु, गोविंद, वामन, दामोदर, पुरुषोत्तम, हृषीकेश, उपेन्द्र, प्रद्युम्न, जनार्दन, अच्युत, कृष्ण, मधुसूदन, माधव, त्रिविक्रम, नारायण, वासुदेव, अधोक्षज, नृसिंह, हरि, संकर्षण, अनिरुद्ध, श्रीधर, पद्मनाभ, ये चौबीस मूर्ति हैं, इस श्लोकमें 'केवि' इत्यादि पदसे केशव विष्णु आदि चौबीस मूर्तिका ग्रहण है, शचगसे शङ्खचक्रगदा जानने चाहिये, शेष पद्म भुजाके विषे अर्थात्सिद्ध है, ये सब नीचले दाहिने हाथके क्रमसे जानने चाहिये। कारण कि, हेमाद्रिमें यही कहा है इसीसे हेमाद्रिके संग भी सम्मति है, विशब्दका विपरीत अर्थ है और उसमें भी शात्को मिलाना, इससे शङ्ख पद्म चक्र वा शङ्ख चक्र पद्मसे ये अष्टमूर्ति सिद्ध होती हैं, इसका मूल हेमाद्रिमें जानना चाहिये। इसमें हेमाद्रिग्रन्थानिष्ठ लिखा हुआ प्रमाण जानना चाहिये। अब बौधायन तथा त्रैविक्रमीके

---

१ शंख, चक्र, गदा, पद्म-युक्त केशव सूर्यके समान कान्तिमान् हैं। कमल, शंख, चक्र, गदा युत विष्णु रवि प्रभायुक्त हैं। गदा, कमल, शंख, चक्रयुक्त गोविन्द भास्करवत् हैं। वामन चक्र, गदा, पद्म, शंखयुक्त रविवत् हैं। दामोदर शंख, गदा, पद्म, चक्रधारी सूर्यद्युतिवत् हैं। पद्म, शंख, गदा चक्रधारी सूर्यवत्पुरुषोत्तम हैं। चक्र, पद्म, शंख, गदाधारी हृषीकेश सूर्यवत् हैं। उदित सूर्यवत् उपेन्द्र गदा, चक्र, कमल, शंखधारी हैं। प्रद्युम्न सूर्यवत् शंख, गदा, कमल, चक्रधारी विभु हैं। जनार्दन चक्र, शंख, गदा, कमलधारी सूर्याभ हैं। सूर्याभ अच्युतनामा कमल, चक्र,

बौधायनसूत्रे-त्रैविक्रमीं चानुस्मृत्य लिङ्गार्चाप्रतिष्ठोच्यते । यजमानः पूर्वोक्तकाले पूर्वेद्युः दशद्वादशषोडशान्यतरहस्तं मण्डपं कृत्वाऽग्नेये हस्तमात्रं चतुरस्रं कुण्डं स्थण्डिलं वा पूर्वतो हस्तमात्रां वेदिं नैर्ऋते वास्तुमंडलमध्ये वेदिं तदुपरि सर्वतोभद्रं कृत्वा प्राणानायम्यास्यां मूर्तौ देवस्य सान्निध्यसिद्ध्यर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये इति संकल्प्य । गणेशपूजापुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि कृत्वा आचार्यं चतुर ऋत्विजश्च वृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत् । अथाचार्यः—"यदत्र संस्थितमिति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति कुशोदकेन भूमिं प्रोक्ष्य । देवा आयांतु, यातुधाना अपयान्तु । विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वाऽस्मत्कृततुलापद्धतिमार्गेण मण्डपप्रतिष्ठां कृत्वाऽकृत्वा वा पूर्वरात्रौ हिरण्योपधानं देवं पञ्चगव्यहिरण्ययवदूर्वाश्वत्थपलाशपर्णैरापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः

---

अनुसार लिंगकी पूजा तथा प्रतिष्ठाको लिखते हैं । यजमान प्रथम दिन पूर्वोक्त समयपर दश, बारह वा सोलह हाथका मढा बना करके उसमें आग्नेय दिशामें एक हस्तमात्र कुण्ड अथवा पृथ्वीपर वेदी तथा पूर्वदिशामें एक हाथकी वेदी तथा नैर्ऋत्य दिशामें वास्तुचक्र और मध्यमें वेदी निर्माण कर उसके ऊपर सर्वतोभद्रकी रचना करे, फिर प्राणोंको रोककर यह संकल्प उच्चारण करे कि, मैं इस मूर्तिमें देवताके स्थापन करनेको तथा बडी आयु, लक्ष्मी और संपूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके निमित्त अक्षय सुखकी इच्छावाला अमुकनाम्नी इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा करता हूं । फिर गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, नान्दीमुखश्राद्ध करके आचार्य और चार ऋत्विजोंका वरण करके वस्त्र आदिकोंसे उनको प्रसन्न करे । फिर आचार्य 'यदत्र संस्थितम्' इस मन्त्रसे सरसोंको बखेरकर ( आपोहिष्ठामयोभुवः ) इस ऋचासे पृथ्वीको कुशाके जलसे छिडके, फिर 'देवा आयान्तु यातुधाना अपयांतु विष्णो देव यजनं रक्षस्व' इस मंत्रसे पृथ्वीके ऊपरको बिलस्त भर रेखा करके हमारी रची हुई तुलापद्धतिके अनुसार मण्डपकी प्रतिष्ठा करे वा न करे, पूर्वरात्रिमें सोनेकी प्रतिमाको पंचगव्य, सुवर्ण, यव, दूब, पीपल तथा पालाशके पत्तोंसे 'आपोहिष्ठा' ये तीन

---

–शंख, गदाधारी हैं । उदितसूर्यवत् कृष्ण गदा, पद्म, चक्र, शंखधारी हैं । शंख, कमल, गदा, चक्रधारी सूर्यवत् मधुसूदन हैं । माधव चक्र, शंख, कमल, गदाधारी सूर्याभ हैं । त्रिविक्रम गदा, चक्र, शंख, पद्मधर रविप्रभ हैं नारायण कमल, गदा, शंख, चक्रधर, रविप्रभ हैं । शंख, चक्र, पद्म, गदाधर वासुदेव रविवत् कान्तिमान् हैं । गदा, शंख, चक्र, कमलधर रविवत् अधोक्षज हैं । नृसिंह सूर्याभ, पद्म, गदा, शंख, चक्र संयुक्त हैं । चक्र, पद्म, गदा, शंख, युक्त हरि उद्यत रविवत् हैं । शंख, कमल, चक्र, गदायुक्त सूर्यप्रभ संकर्षण विभु हैं । अनिरुद्ध गदा, शंख, पद्म, चक्रधारी रविवत् हैं, श्रीधर चक्र, गदा, शंख, पद्मधर सूर्यद्युति हैं । पद्मनाभ कमल, चक्र, गदा, शंखयुक्त अब्जसंयुत हैं ॥

पवमानः सुवर्चन इत्यनुवाकेनाभिषिच्य व्याहृतिभिरिदं विष्णुरिति फलयवदूर्वाः समर्प्य रक्षोहणमिति हस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य । अवतेहेड उदुत्तममिति जलेऽधिवासयेत् । " इदं बौधायनोक्तम् । ततश्चलिंगार्चायां वा अत्राग्निं प्रतिष्ठाप्य गोक्षीरनीवारचरुं कृत्वा विष्णुश्चेत् कृसरमपि श्रपयित्वाज्यभागान्ते पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्भिः आज्येन चरुणा तिलैर्वा प्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौ वाहुतीर्लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिभ्यो हुत्वा स्थाप्य देवमन्त्रेण पूर्वोक्तसमित्तिलनैवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा हुत्वा अग्निर्यजुर्भिरित्यनुवाकेन दशाहुतीर्जुहुयात् । प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवं पादनाभिशिरस्सु स्पृशेत् । आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भे संपातान्नयेत् । तत्र मन्त्राः । तेषां मन्त्राः । इन्द्रायेन्दोः इतीन्द्रस्य । स्योनेति पृथिवीमूर्तेः । अघोरेभ्य इति तत्पतेः शर्वस्य । अग्न आयाहीत्यग्नेः । अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः । नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः । यमाय सोमं यमस्य । असिहिवीरीरिति यजमानमूर्तेः । स्तुहि श्रुतं तत्पतेः उग्रस्य । असुन्वन्तन्निर्ऋतेः । आकृष्णेन सूर्यमूर्तेः । यो रुद्रो अग्नौ इति तत्पते रुद्रस्य ।

---

और ' हिरण्यवर्णा ' ये चार तथा 'पवमानः सुवर्चनः' सूक्त तथा व्याहृतियोंको उच्चारण करता हुआ अभिषेक करे, फिर 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' इस मन्त्रसे फूल, फल, यव, दूबको समर्पण करके ' नमस्ते रुद्र मन्यव ' इस मंत्रसे स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करे, फिर ' रक्षोहणं ' इस मंत्रसे हाथमें कंकणको बांधकर वस्त्रसे ढककर ' अवतेहेडो, उदुत्तमं' इन मंत्रोंसे जलमें अधिष्ठान करावे, यह बौधायनने लिखा है । फिर लिङ्गकी अर्चामें तो अग्निस्थापन करके गौके दूधमें सट्टीके चावलोंको करके घृत भागके पीछेमें पलाश, गूलर, पीपल, छोकर, अपामार्ग ( चिरचिटा ) और ढाककी समिधासे घृत वा चरु वा तिलोंसे एकएककी लोकपाल, मूर्ति, तथा मूर्तियोंके पतियोंको ( एक एकके निमित्त ) २८, १८ अथवा ८ आहुति देकर स्थापन करे फिर देवमंत्रसे पूर्वोक्त समिध, तिल, साठी चावल, चरु, घी इनसे आठ हजार ८००० वा ८०० आठसौ अथवा अट्ठाईस २८ आहुति दे, 'अग्निर्यजुर्भिः' इस सूक्तसे दशाहुतिका हवन करे । हवनके पीछे देवताकी नाभि तथा चरण और शिरका स्पर्श करे, फिर घृतके होममें उत्तर दिशाके जलसहित कुम्भमें जल डाले ॥ अब उनके मन्त्रोंको दिखाते हैं कि, ' इन्द्रायेन्दो ' इस मन्त्रसे इन्द्रको, ' स्योना ' इससे पृथ्वीमूर्त्तिको, ' अघोरेभ्यो ' इससे उसके स्वामी शिवको, ' अग्नआयाहि ' इससे अग्निको ' अग्निंदूतं ' इससे अग्निकी मूर्त्तिको, ' नमः शर्वाय च पशुपतये च ' इससे पशुपतिको, ' यमाय सोमं' इससे यमको, असिहि वीरिति इससे यजमानकी मूर्तिको, 'स्तुहि श्रुतं'से उसके पति उग्रको, 'असुन्वंत'से निर्ऋतिको

---

१ नमस्ते रुद्रमन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः य० १६ । १ ॥ २ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ऋ० ७ । १ । ४० ॥

इमंमे वरुणस्य । शंनोदेवीति चलमूर्तेः । नमो भवायेति भवस्य । आनो नियुद्भिरिति वायोः । वात आवातु वायुमूर्तेः । तमीशानं तत्पतेरीशानस्य । आप्यायस्वेति कुबेरस्य । वयं सोमेति सोममूर्तेः । तत्पुरुषाय महादेवस्य । अभित्वा ईशानस्य । आदित्प्रत्नस्येत्याकाशस्य । नम उग्राय चेति तत्पतेर्भीमस्य । ततो देवस्य पादौ स्पृशेत् । एवं द्वितीये हुत्वा नाभिं तृतीये मध्यं चतुर्थे उरः पञ्चमे शिरः स्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायं संपातजलेन देवम् अभिषिञ्चेत् । ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्याचीं शोधयेत् । स्थिरलिङ्गार्चादौ तु नेदानीमग्निस्थापनहोमादि कार्यम् । ततो देवं नत्वा—"स्वागतं देवदेवेश विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥ शुद्धेऽपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम् ॥ " इति संप्रार्थ्य 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति सऋत्विगुत्थाप्य पूर्वमकृतेऽग्न्युत्तारणे अधुना वा कार्यम् 'अग्निः सप्तिम्' इति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत् । एवमष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पठन् जलं पातयेत् । ततोऽर्चां द्वादशवारं मृदा जलेन च प्रक्षाल्य मन्त्रवत् पञ्चगव्यं कृत्वा 'पयः पृथिव्यामापोराजानम्' इति

---

'आकृष्णेन' से सूर्यमूर्तिको, 'यो रुद्रो अग्नौ' से उसके पति रुद्रको, 'इमंमे' से वरुणको, 'शन्नोदेवी' से चलमूर्तिको, 'नमो भवाय' से भवको, 'आनो नियुद्भिः' से वायुको, 'वात आवातु' से वायुमूर्तिको, 'तमीशानं' से उसके पति ईशानको, 'आप्यायस्व' से कुबेरको, 'वयं सोमस्य' से सोममूर्तिको, 'तत्पुरुषाय' से महादेवको, 'अभित्वा' से ईशानको, 'आदित्प्रत्नस्य' से आकाशको, 'नम उग्राय च' से उसके स्वामी भीमको आहुति दे, फिर देवताके चरणोंको छुए, इसी प्रकार दूसरी आहुति देकर नाभिको, तीसरेमें मध्य भागको, चौथेमें उरस्थल, पांचवेंमें शिरको स्पर्श करके क्रमसे संपात जल अर्थात् शेष चरु जिस पात्रमें धरा है उसमें डालकर लिंग वा प्रतिमामें देवका अभिषेक करना चाहिये, फिर स्विष्टकृत् आदि शेष हवनको पूर्ण करके प्रतिमाको पवित्र करे। यदि लिंग वा मूर्ति स्थिर हो तो अग्निका स्थापन और देवताओंका हवन आदि कर्म यहां न करे, देवको प्रणाम करके प्रार्थना करे कि हे देवदेवेश ! हे विश्वरूप ! आपको प्रणाम है, आपका आगमन बहुत उत्तम है, आपका स्थान पवित्र है तो भी मैं पवित्र करता हूं, उसे आप सहन करो। 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इस मन्त्रसे ऋत्विजों सहित मूर्तिको उठाय यदि प्रथम अग्निमें मूर्तिको न तपाया हो तो अब अग्न्युत्तारण करे, फिर 'अग्निः सप्तिम्' सूक्तको अग्निपदके विना उच्चारण कर फिर अग्निपदसहित पढ़े। इसी प्रकार आठ सहस्र वा आठसौ वा अट्ठाईस बार जपता हुआ जल डाले फिर प्रतिमाको द्वादश वार मृत्तिका और जलसे धोकर मन्त्रसे पंचगव्य बनाकर

---

१ शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः। यजु०।

संस्नाप्य । "आप्यायस्व, दधिक्राव्णः, तेजोसि, मधुवाता, आयंगौः" इति पञ्चामृतैः संस्नाप्य । लिंगं चेत् 'नमस्ते रुद्र मन्यवे' इत्यष्टाभिः संस्नाप्य । घृतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गन्धं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सपल्लवैः चतुर्भिः कुम्भैरापोहिष्ठेति त्रिभिः 'आकलशेषु' इति च प्रत्येकं 'समुद्रज्येष्ठा' इति चतुर्भिः 'आकलशेषु' इति च मिलितैः संस्नाप्यौदुम्बरादिपीठेऽर्चामुपवेश्य परितोऽष्टदिक्षु सजलकुम्भान् संस्थाप्य तेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वाद्ये सप्तमृदः द्वितीये पुष्करपर्णशमीविकंकताश्मन्तकत्वचः पल्लवांश्च, तृतीयादिषु सप्तधान्यं पञ्चरत्नफलपुष्पाणि कुशदूर्वागोरोचनसम्पातोदकगन्धफलसर्वौषधीः क्षिप्त्वा । क्रमेण 'आपोहिष्ठा' इति तिसृभिः 'हिरण्यवर्णाः' इति चतुर्भिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्यैककुम्भे शमीपलाशवटखदिरबिल्वाश्वत्थविकंकतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वा । 'अश्वत्थेवः' इत्यभिषिच्य पञ्चरत्नोदकेन 'हिरण्यवर्णा' इति संस्नाप्य वाससी दत्त्वा । उपवीतादि दीपान्तं कृत्वा 'हिरण्यगर्भः' । 'य आत्मदा' । 'यः प्राणतः' । 'यस्येमे' । 'येन द्यौः' । 'यं क्रन्दसी' । 'आपोहयन्' । 'यश्चिदापो' । इत्यष्टौ पिष्टदीपान् दत्त्वा । सुवर्णशलाकया तैजसपात्रस्थं मधु घृतं च गृहीत्वा 'चित्रं देवानां' ।

---

'पयः पृथिव्या' मन्त्रोंसे अथवा 'आपोराजानम्' मन्त्रसे स्नान करावे । आप्यायस्व० दधिक्राव्णः० तेजोसि० मधुवाता० आयंगौः०, इन मन्त्रोंसे पंचामृतसे स्नान करावे, यदि लिंग हो तो 'नमस्ते रुद्र मन्यव०' इन आठों मन्त्रोंसे स्नान करावे, फिर घृतसे अभ्यंग और उबटनेसे उबटन करके और गरम जलसे धोकर गन्ध देकर, जलधारासे अभिषेक करे फिर पंच पल्लवों सहित घड़ोंके 'जलसे आपोहिष्ठामयो भुव' इन तीन मन्त्र तथा समुद्रज्येष्ठा इन चार आकलशेषु ऋचासहित पढ़ता हुआ प्रत्येकको स्नान कराय गूलरआदिके आसनपर प्रतिमाको बैठाय चारो ओर आठो दिशाओंमें जल सहित घटोंकोस्थापन कर उनमें गन्ध, पुष्प, दूबको डालकर प्रथममें सात प्रकारकी मट्टी, दूसरेमें पुष्करके पत्ते, छोंकर, विकंकत ( कंकपत्र ) अश्मंतक ( बहेड़े ) की छाल तथा पत्तोंको और तीसरे आदिमें सतनजा, पंचरत्न, फल, पुष्प, कुशा, दूब, गोरोचन, सम्पातजल, सब ओषधियोंको डालकर क्रमसे 'आपोहिष्ठा' इन तीनोंसे 'हिरण्यवर्णा' इन चारोंसे अथवा 'पवमानः सुवर्चन' इस सूक्तसे विधिसे अभिषेक करे, फिर एक घड़ेमें छोंकर, ढाक, बड़, खदिर, बेल, पीपल, विकंकत, पनस, आम, शिरीष ( शिरस ), गूलरके पत्ते और रसको डालकर 'अश्वत्थे' इस मन्त्रसे पञ्चरत्नसे जलसे अभिषेक करके और 'हिरण्यवर्णां हरिणीम्' मन्त्रसे स्नान कराके वस्त्रोंको देकर तथा उपवीतसे दीपक पर्यन्त सामग्रियोंका प्रदान कर हिरण्यगर्भ, य आत्मदा, यः प्राणतः, यस्येमे, येनद्यौः, यंक्रंदसी, आपोहयन्, यश्चिदापो इन मन्त्रोंसे आठ चूनके दीपक निर्माण कर दे, सुवर्णकी सलाईसे सुवर्णके पात्रमें रक्खे हुए मधु और घृतको लेकर

'तेजोसि' इति मन्त्राभ्यां-"ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः" इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत्। 'अञ्जन्ति त्वा' इत्यञ्जनेन मधुना वाऽक्त्वा तु 'देवस्य त्वा' इति मध्वाज्यशर्कराभिरङ्क्त्वा तेनैवाञ्जनेन पुनरञ्जयेत्। अत्रानज्मीति शेषः। स्थिरलिङ्गे तु स्वर्णसूच्या गन्धेन। 'ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः' इत्यङ्क्त्वाञ्जनादिनाञ्जयेत्। तत आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत्। ततः कर्ता आचार्याय गामृत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दद्यात्। अथाचार्यः प्रत्यृचमादौ प्रणवं वदन् पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा। वंशपात्रे पंचवर्णोदनेन देवस्य नीराजनं कारयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात्। मन्त्रस्तु-"ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः।" शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहेति। अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति। केचिदेतद्रात्रौ स्थिरप्रतिष्ठायामिच्छन्ति। अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत्। मध्ये ब्रह्माणम्। पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिलोकपालान्। ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु वसून्। रुद्रान्। आदित्यान्। अश्विनौ। विश्वान् देवान्। पितॄन्। नागान्। स्कन्दवृषौ। ब्रह्मेशानाद्यन्तरालेषु दक्षविष्णु-

---

'चित्रं देवानां' इत्यादि तथा 'तेजोसि' इत्यादि मन्त्रसे 'ॐनमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः' इस मन्त्रको तथा 'हिरण्यरेतसे विष्णो विष्णुरूपाय ते नमः' इस मन्त्रको देवताके दक्षिण नेत्रमें दोबार लिखे। 'अंजंतित्वा' इस मंत्रसे अंजन वा मधुको और 'देवस्य त्वा' इस मंत्रसे मधु, घृत, शर्कराको आंजकर उसी अंजनको फिर आंजे, यदि स्थिर लिंग हो तो सुवर्णकी शलाकासे शहदको 'ॐनमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः' इस मंत्रसे आंजकर अंजनआदिसे आंजे, फिर दर्पण भोगादिको दिखावे, फिर यजमान आचार्यको गौ और ऋषित्वजोंको दक्षिणा दे, आचार्य ॐकारपूर्वक पुरुषसूक्तकी ऋचाओंसे स्तुति करके वांसके पात्रमें पंचपल्लवके जलसे देवताकी आरती कराय चौराहे आदिमें रुद्रको बलि दे, उसका मन्त्र 'ॐनमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहा' पीपलके पत्तेपर रात्रिमें भूतेभ्यो नमः इस मन्त्रसे भूतोंको बलि दे। कोई आचार्य इस बलिको स्थिरप्रतिष्ठाके विषय इच्छा करते हैं। इसके उपरान्त आचार्य सर्वतोभद्रमें देवताओंका आवाहन करे। मध्यमें ब्रह्माका, पूर्व आदिदिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपालोंका, ईशान और पूर्व आदि मध्यकी विदिशाओंमें वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, पितर, नाग, स्वामिकार्तिक और वृष, ब्रह्मा और ईशान आदिके अन्तरालमें दक्ष, विष्णु, दुर्गा, स्वधा, मृत्यु, रोग, समुद्र, नदी, मरुत्, गणपतिका आवाहन करे

दुर्गास्वधाकारमृत्युरोगान् । समुद्रान् । सरितः । मरुतः । गणाधिपं चेति मध्ये एव पृथिवीं, मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य। प्रागादिषु वज्रं, शक्तिं, दण्डं, खड्गं, पाशम्, अंकुशं, गदां, शूलम् । तद्बाह्ये गौतमं, भरद्वाजं, विश्वामित्रं, कश्यपं, जमदग्निं, वसिष्ठम्, अत्रिम्, अरुंधतीं च । तद्बाह्ये नवग्रहान् । तद्बाह्ये ऐंद्रीं, कौमारीं, ब्राह्मीं, वाराहीं, चामुण्डां, वैष्णवीं, माहेश्वरीं, वैनायकीमिति । एता नामभिवाराह्य संपूज्य । अर्चायां देवं तन्मन्त्रेणावाह्य । मण्डलमध्येऽर्चा सुप्रतिष्ठो भवेति निवेश्य संपूज्य । वह्नौ मण्डलदेवतानां नामभिस्तिलाज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा शय्यायां देवमाराध्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात् । तद्यथा—पुरुषात्मने नमः । प्राणात्मने नमः । प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० अहंकारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० इति सर्वांगे । प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० हृदि । शब्दतत्त्वाय० शिरसि । स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि । रूपतत्त्वाय० हृदि । एवं रसगन्धश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदेह—तत्त्वानि विन्यसेत् । ततः पुरुषसूक्तस्याद्यमृग्द्वयं करयोः । तदुत्तरं जान्वोः । तदुत्तरं कट्योः । 'तं यज्ञम्' इति तिस्रः नाभिहृत्कण्ठेषु ' तस्मादश्वा' इति द्वयं

---

मध्यमें ही पृथ्वी और मेरुकी स्थापना करके और देवका आवाहन करके पूर्वआदि दिशाओंमें वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूलका आवाहन करे और इनके बाहर गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि, अरुन्धतीका आवाहन करे; उसके बाहर नवग्रहोंको, उसके बाहर ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैनायकीका नामसे आवाहन और पूजन करके ब्रह्मा आदिकी पूजामें देवका भी मन्त्रसे आवाहन करके, मण्डलके मध्यकी पूजामें भली प्रकार प्रतिष्ठित हो, इस मन्त्रसे देवकी प्रतिष्ठा करके और पूजा कर अग्निमें मण्डलके देवताओंके नाममंत्रोंसे तिल और घृतसे दश २ आहुति देकर शय्यामें देवकी पूजा कर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायणके मंत्रसे देवकी स्तुति करके देवताके अंगोंमें न्यास करे। यथा पुरुषात्मा प्राणात्माको, प्रकृतितत्त्वको, बुद्धितत्त्वको, अहंकारतत्त्वको मनस्तत्त्वको प्रणाम है, इस मंत्रसे सर्वांगमें; प्रकृतितत्त्वको, बुद्धितत्त्वको प्रणाम है इस मन्त्रसे हृदयमें; शब्दतत्त्वको प्रणाम है, इससे शिरमें; स्पर्शतत्त्वको प्रणाम है, इससे त्वचामें; रूपतत्त्वको प्रणाम है इससे हृदयमें न्यास करे। इसी प्रकार रस, गंध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, वाणी, हस्त, चरण, गुदा, लिंग, भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, देह, इन तत्त्वोंका भी न्यास करे, फिर पुरुषसूक्तकी आदिकी दो ऋचाओंसे हाथोंका इससे उत्तरकी ऋचाओंसे जंघाओंका इससे उत्तरकी दो ऋचाओंसे कमरका 'तंयज्ञं' इत्यादि तीन ऋचाओंसे नाभि, हृदय, कण्ठका 'तस्मादश्वा' इत्यादि दो ऋचाओंसे भुजाओंका

बाह्वोः। 'ब्राह्मणोऽस्य' इति द्वयं नासयोः। 'नाभ्या' इति द्वयमक्ष्णोः। अन्त्यां शिरसि। केचित्तत्त्वन्यासमन्यथैवाहुः। पुरुषप्रकृतिमहदहंकारतत्त्वानि। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणि। आकाशवायुतेजोऽप्पृथिवीश्रोत्रत्वक्चक्षूरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनस्तत्त्वानीति। केचिदेतानि स्थिरलिङ्गादावेवेच्छन्ति। ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं स्थापयित्वा मण्डलशय्ययोरन्तराले न गन्तव्यमिति प्रैषं दत्त्वा मण्डलदेवताभ्यो नामभिः पायसेन चरुणा वा बलिं दद्यात्। नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम्। नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाम्। स्थिरलिङ्गार्चादौ विशेषः। स्थिरलिंगार्चादौ त्वयं विशेषः–"अग्निस्थापनहोमवर्ज्यं सर्वं पूर्ववत् कृत्वा इदानीमग्निस्थापनं कृत्वा पूर्वोक्तहोमं कुर्यात्"। नात्र नैवारश्चरुः। विष्णुश्चेत्पूर्वोक्तहोमं कृत्वा पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा 'इदंविष्णुः' इति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा 'विष्णोर्नुकम्' इति नाभिं स्पृष्ट्वा पुनस्तावेव हुत्वा। 'अतो देवा' इति शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा, पुरुषसूक्तेन सर्वांगं स्पृशेत्। स्थिरलिंगं चेदग्निस्थापनादि पूर्वोक्तसमिदाज्यतिलाहुतीर्हुत्वा। 'या त इषुः' इत्यनुवाकान्तं 'द्रापे' 'सहस्राणि' इत्यनुवाकाभ्यां च प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा 'सर्वो वै रुद्रः' इति मूलं

---

'ब्राह्मणोस्य' इत्यादि ऋचाओंसे नासिकाका 'नाभ्या' इत्यादि दो ऋचाओंसे नेत्रोंका अंत्यकी ऋचासे शिरका न्यास करे। कोई आचार्य इस तत्त्वन्यासको दूसरे प्रकारसे कहते ह पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, तत्त्व और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांचों भूतोंकी मात्राका और आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक्, हस्त, पाद, गुदा, लिंग, मन इन तत्त्वोंका न्यास करे, कोई आचार्य इनको स्थिर लिंगमें ही इच्छा करते हैं उसके उपरान्त सुखशायी हो इस मन्त्रसे शय्यापर देवका स्थापन करके मण्डल और शय्याके बीचमें न जाओ यह मनुष्योंको प्रेरणा करके मण्डलके देवताओंको नाममन्त्रोंसे खीर वा चरुकी बलि दे और शेष नीवारके चरुसे दिशाओंको बलि दे यह बलि स्थिर प्रतिष्ठामें नहीं होती। स्थिरलिंगमें तो यह अधिक है कि अग्निस्थापन और हवनके विना सब पूर्वकार्यको पूर्ववत् सम्पादन करके और उसी समय अग्निका स्थापन करके पूर्वोक्त हवन करे, इसमें नीवारका चरु ग्रहण नहीं करते। यदि विष्णुकी प्रतिष्ठा हो तो पूर्वोक्त हवन करके पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचाओंसें घृतकी आहुति देकर 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' मन्त्रसे चरणोंको छुए, फिर उन्हीं ऋचाओंसे आहुति देकर 'विष्णोर्नुकं' इस मन्त्रसे नाभिको छुए, फिर उन्हीं आहुतियोंको देकर 'अतो देवा' मन्त्रसे शिरको स्पर्श करे फिर उन्हीं आहुतियोंको देकर पुरुषसूक्तसे सब अंगको छुए, यदि स्थिरलिंग हो तो अग्निस्थापनसे लेकर पूर्वोक्त समिधा और घृततिलोंकी आहुतियोंसे हवन करके 'यातइषुः' इस अनुवाकतक, द्रापे, सहस्राणि, इन अनुवाकोंसे प्रत्येक ऋचा पढ़कर घृतसे हवन करके सम्पूर्ण रुद्ररूप है यह कहकर

स्पृशेत् । पुनस्ता एव हुत्वा 'कद्रुद्राय' इति मध्यम् । पुनस्ता एव हुत्वा । 'नमो हिरण्यबाहवे' इत्यग्रम् । पुनस्ता एव हुत्वा सर्वरुद्रेण सर्वांगं स्पृशेत् । ततो 'धामन्त' इति पूर्णाहुतिं जुहुयान्नवा एवमधिवासनं कृत्वा परेद्युः सद्यो वा पीठिकां स्नापयित्वा 'महीमूषु' इत्यावाह्य । 'अदितिर्द्यौः' इति स्तुत्वा । 'ह्रीं नमः' इति संपूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा । 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा । पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा 'उदुत्यम्' इत्युत्थाप्य । 'कनिक्रदत्' इति सूक्तेन विष्णुं 'सद्योजातम्' इति पञ्चानुवाकैर्लिङ्गं गृहं प्रवेश्य पीठिकायां इन्द्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरूप्यवृषमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन सलिप्य प्रणवेनांगन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकामन्तरितां कृत्वा 'ॐ सुलग्ने प्रतितिष्ठ परमेश्वर' इत्युक्त्वा 'अतो देवा' इति विष्णुं रुद्रेण च लिंगं स्थापयेत् । ततः प्राणप्रतिष्ठा । चलार्चादौ त्वाधिवासनान्ते परेद्युरुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा घृते व्रीहिचरुं कृत्वा तद्देवतामन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात् । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नयेऽन्नादाय स्वाहा । अग्नयेऽन्नपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । सर्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । भूर्भुवः

---

देवके चरणोंका स्पर्श करे, फिर वही आहुति देकर 'सर्वो वै रुद्र' इस मन्त्रसे देवताके सब अगोंको छुए, फिर 'धामंत' मंत्रसे पूर्णाहुति हवन करे, वा न करे, इस प्रकार अधिवासन ( सुवाय ) कर अगले दिन वा उसी समय देवके पट्टेको स्नान कराय, 'महीमूषु' इस मंत्रसे आवाहन 'अदितिर्द्यौः' मन्त्रसे स्तुति करके, 'ह्रीं नमः' मन्त्रसे अर्चन करके, और उसी मन्त्रसे पूर्णाहुतिके हवनको सम्पादन कर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' मंत्रसे देवको उठाय पुष्पांजलि दे, फिर पुरुषसूक्तसे स्तुति और 'उदुत्य' मंत्रसे देवको उठाय 'कनिक्रदत्' मंत्रसे विष्णुको और सद्योजातके पांच अनुवाकोंसे लिंगको घरमें प्रवेश करायकर पट्टेपरइंद्रादिनामोंसे आठ दल बनाय, सतनजा, चांदी, बासां, मनसिल पट्टपर डालकर और खीरसे पट्टेको लीपकर ओंकारसे अंगन्यास करके सुवर्णकी शलाकाको पीठिकामें डालकर हे देव ! हे परमेश्वर ! श्रेष्ठ लग्नमें भलीप्रकार प्रतिष्ठित हूजिये यह कहकर, 'अतो देवा' मन्त्रसे विष्णु वा रुद्र मंत्रसे देवकी प्रतिष्ठा करे, फिर प्राणप्रतिष्ठा करे । चलमूर्तिकी पूजामें तो शयनके पीछेसे परले दिन 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इस मन्त्रसे देवको उठाकर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायण मन्त्रसे स्तुति करके घृतमें व्रीहि और चरुको मिश्रित कर उसे देवताके मन्त्रसे दश आहुति हवन कर इन नामोंसे हवन करे कि अग्नि, सोम, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, परमेष्ठी, ब्रह्मा, अग्नि, सोम, अग्नयेऽन्नाद, अग्नयेऽन्नपति, प्रजापति, विश्वेदेवा,

स्वाहा अग्नये स्विष्टकृते इति । ततः 'सप्त ते' 'पुनस्त्वा' एताभ्यां पूर्णाहुतिः-
ततः आचार्यो 'या ओषधीः' इति सर्वौषधीः समर्प्य । संपातोदकं देवमन्त्रेण शतवारमाभिमन्त्र्य तेनैवाभिषिञ्चेत् । तत उत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य । 'विश्वतश्चक्षुः' इत्युपस्थाय देवं ध्यात्वा जपेत्-'ब्रह्मणे नमः ।' एवं विष्णवे रुद्राय इंद्राद्यष्टभ्यो वसुभ्य रुद्रेभ्यं आदित्येभ्योऽश्विभ्यां मरुद्भ्यः कुबेराय गङ्गादिमहानदीभ्योऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरये सर्वेशाय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे नमः इति । ततः संपातोदकेन यजमानमभिषिच्य । देवं ध्यात्वा 'प्रतिष्ठ परमेश्वर' इति पुष्पाञ्जलिं निवेद्य । सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं, करचरणाद्यवयविनं, शंखचक्राद्यायुधवन्तं, निजवाहनाद्युपेतं, निजहृत्कमलेऽवस्थितं, सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं 'परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गमय' इति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलावागतं विभाव्याऽर्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । यथा-प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः । ऋग्यजुःसामानि च्छन्दांसि । क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता । आं बीजम् । क्रों शक्तिः । प्राणप्र-

---

सम्पूर्ण देव, इनको (स्वाहा) श्रेष्ठ वचन है इन मन्त्रोंसे आहुति दे, फिर 'भूर्भुवः स्वः अग्नये स्विष्टकृते' इस मन्त्रसे आहुति दे फिर 'सप्त ते' 'पुनस्त्वा' मन्त्रोंसे पूर्णाहुति दे, फिर आचार्य 'या ओषधीः' इस मन्त्रसे सर्व ओषधियोंको समर्पण करे। फिर धाराके अर्थात् हवनमें जिस पात्रमें शेष चरु डाला जाता है उसका जल सम्पातोदक है, जलको देवके मन्त्रसे सौ वार अभिमंत्रित करके उसी मन्त्रसे देवका अभिषेक करे, फिर 'उत्तिष्ठ' मन्त्रसे देवको उठाय 'विश्वतश्चक्षुः' मन्त्रसे देवकी स्तुति और ध्यान करके यह जपे कि ब्रह्मरूपको प्रणाम है फिर इसी प्रकार विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि आठ दिक्पाल, वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, मरुत्, कुबेर, गंगा आदि महानदी, इन्द्र, अग्नि, द्यावापृथिवी, धन्वन्तरि, सबके ईश्वर विश्वेदेव, ब्रह्माको नमस्कार है। यह जप करे फिर उसी धाराके जलसे यजमानका अभिषेक करके और देवका ध्यान करके हे परमात्मन्! तुम इस मूर्तिमें प्रतिष्ठित हो, इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिको निवेदन करके और सच्चिदानन्द ब्रह्म ही भक्तोंके अनुग्रह करनेको शरीर धारण करते हैं और कर चरण आदि अंग, शंख चक्र आदि आयुध धारण करनेवाले होते हैं और अपने वाहनोंसे युक्त अपने कमलरूपी हृदयमें स्थित सब लोकके साक्षी अनुरूप होते हैं, हे परमात्मन्! तुम ब्रह्मरूप हो श्रेष्ठ लक्ष्मी प्रदान करो इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलिमें आये हुए देवकी भावना करके पूजनमें न्यासादि करके प्राणप्रतिष्ठा करना चाहिये, जिस प्रकार प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ऋषि हैं, ऋग्, यजु, साम छन्द हैं, कर्मरूपी शरीर है, प्राण देवता, आं बीज क्रों शक्ति,

तिष्ठायां विनियोगः । ततः ऋष्यादीन् क्रमेण शिरोमुखहृदयगुह्यपादेषु विन्यस्य । ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः । ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा । ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् । ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्-पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् । ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादान-विहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् । एवम् आत्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः॥ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य सर्वेंद्रियाणि ॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहेति ॥ ततोऽर्चाहृद्यंगुष्ठं दत्त्वा जपेत् अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु ह्यस्यै प्राणाः क्षरन्तु च । "अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन" इति । ततः प्रणवेन संरुध्य, सजीवं ध्यात्वा । 'ध्रुवा द्यौः' इति ऋचं

---

प्राणकी प्रतिष्ठामें इसका विनियोग अर्थात् ( प्रयोजन ) है, फिर इन ऋषि आदिकोंका क्रमसे शिर, मुख, हृदय, गुदा, चरणमें न्यास करके पुनः इस प्रकार अपने शरीर और देवांगमें न्यास करके और देवताको छूकरके पूजा करे । फिर ॐ कं, खं, गं, घं, ङं, अं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश रूपको प्रणाम है, 'आं हृदयाय नमः' इस मन्त्रसे हृदयको स्पर्श करे, ॐ चं, छं, जं, झं, ञं, इं, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श रूपको प्रणाम है, 'ईं शिरसे स्वाहा' इस मन्त्रसे शिरको स्पर्श करे, ॐ, टं, ठं, डं, ढं, णं, उं श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राणरूप आत्माको प्रणाम है 'ऊं शिखायै वषट्' इस मन्त्रसे शिखाको स्पर्श करे, ॐ तं, थं, दं, धं, नं, एं वाणी हाथ चरण गुदा लिंग रूपको प्रणाम है 'ऐं कवचाय हुं' इस मन्त्रसे भुजाओंको छुए, ॐ पं, फं, बं, भं, मं, ओं बोलना, ग्रहण, विहार, त्याग, आनन्दरूपको प्रणाम है, 'औं नेत्रत्रयाय वौषट्' इस मन्त्रसे नेत्रोंका स्पर्श करे, ॐ यं, रं, लं, वं, शं, षं, हं, ळं, क्षं अं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूपको प्रणाम है, 'अः अस्त्राय फट्' इस मन्त्रसे हाथसे हाथको ताडन करे, ( ताली बजावे ) इस प्रकार अपने और देवमें करसे स्पर्श करके जपे । ॐ आं ह्रीं क्रों यं, रं, लं, वं,शं, षं, सं, हं, सः देवस्य प्राणा इह प्राणा पूजाके पीछे इस मंत्रसे प्राणप्रतिष्ठा करे, ॐ आं ह्रीं, क्रों, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि ॐ आं ह्रीं, क्रों, यं, रं, लं, वं, शं, षं, सं, हं, सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणाः इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा । पुनः आचार्य देवताके हृदयपर अंगुष्ठ रखकर यह मन्त्र जपे । 'अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठंतु अस्यै प्राणाः क्षरंतु च । अस्यै देव-त्वमर्चायै मामहेति च कश्चन' । इसका अर्थ प्रथम लिख आये हैं । फिर ॐकारसे

जप्त्वा, कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा, पुरुषसूक्तेनोपस्थाय, पादनाभिशिरः स्पृष्ट्वा 'इहैव एधि' इति त्रिर्जपेत् । ततः कर्ता-" स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः । प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत् परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शुभाय नः । सांनिध्यं तु सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः । तावत्त्वयाऽत्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया ॥ भगवन् देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् । येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ॥ तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधौ भव ॥ ५ ॥ " इति नमेत् । एतदन्तं सर्वदेवानां समानम् । देवमन्त्रश्च मूलमन्त्रो वैदिको वा ग्राह्यः । अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चां वा ॐ भूः पुरुषमावाहयामि । ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि । ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमावाहयामीत्यावाह्य । प्रणवेनासनं दत्त्वा, तेनैव दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रान्तापद्ममिश्रं-" इमा आपः शिवतमाः पूताः पूततमाः मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नमः " इति पाद्यं दद्यात् । 'भगवान् महादेवो रुद्राय नमः' इति लिङ्गे । इमा आप आचमनीयास्ता जुष-

---

प्राणोंको निरोधकर और जीवसहित देवका ध्यान आर भुवाद्योः मन्त्रका जप और देवके कर्णमें गायत्री और देवमन्त्रको जपकर और पुरुषसूक्तसे स्तुति करके चरण, नाभि, शिरको स्पर्श करके यहां ही वृद्धिको प्राप्त हो यह तीन वार जप करे, फिर यजमान इन मन्त्रोंसे देवको प्रणाम करे कि, हे देवदेवेश ! आपका आगमन उत्तम है, मेरे भाग्यसे आप प्राप्त हुए हो, मुझे प्राकृत मनुष्य जानकर बालकके तुल्य मेरी पालना करो, हमारे मंगल, कल्याण और धर्म, अर्थ, कामनाकी सिद्धिके निमित्त स्थिर रहो, और हे देव ! अपनी पूजामें सदा निकट रहो यावत् चन्द्रमा, सूर्य पृथ्वीपर रहें तावत् भक्तोंपर दया करते हुए इस मूर्तिमें स्थित रहो, हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! तुम सब देहधारियोंके पिता हो, हे भगवन् ! जिस रूपसे चर अचर आपसे व्याप्त है उसी रूपसे पूजाके निकट रहियो, यहां तक जो कर्म कहा वह सब देवताओंको तुल्य है, और देवताका मन्त्र मूलमन्त्र लेना, अथवा वैदिक लेना । फिर आचार्य वा यजमान, ॐभूः पुरुषका आवाहन करता हूं, ॐभुवः ॐस्वः ॐभूर्भुवः स्वः पुरुषका आवाहन करता हूं, इन मंत्रोंसे आवाहन करके और ॐकारसे आसन प्रदान कर और ॐकारसे ही, समा, विष्णुक्रांता, पद्म, दूर्वासे मिले पाद्यको दे और यह मंत्र पढे, यह जल मंगलरूप पवित्र और अत्यन्त पवित्र है, अमृत और अमृतके तुल्य इनमें रस है, इनको भगवान् महाविष्णु स्वीकार करो, भगवान् विष्णुको प्रणाम है, लिंगकी प्रतिष्ठामें भगवान् महादेव स्वीकार करो रुद्रको प्रणाम है

तामिति एलालवंगकंकोलकर्पूरमिश्रमाचमनीयम् ॥ "आपः क्षीरकुशाग्रैश्च ह्यक्षतैर्यवतण्डुलैः। यवैः सिद्धार्थकैश्चैवार्घ्योऽयं ते प्रतिगृह्यताम् ॥" अर्घ्या इत्यर्घ्यम् ॥ ततो वेदमन्त्रैः प्रणवेन च रत्नाम्बुकलशेन संस्नाप्य। 'इदं विष्णुः' इति विष्णौ। 'नमो अस्तु नीलग्रीवाय' इति लिङ्गे प्रतिसरं विस्रस्य। "इमे गन्धाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः। पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः॥" पूता इत्यादि पूर्ववत्। इति गन्धम् ॥ 'इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः ॥' पूता इत्यादिमाल्यम् ॥ 'इमे पुष्पाः शुभा' इत्यादि पुष्पम् ॥ "वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो धूप उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥" प्रतिगृह्णात्वित्यादि धूपम् ॥ "ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियः। प्रभाकृत्सर्वभूतानां दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥" इति दीपं दत्त्वा ॥ "विष्णो संकर्षण वासुदेव प्रद्युम्नानिरुद्ध पुरुषोत्तमाधोक्षज नृसिंहाच्युतजनार्दनोपेंद्रहरिश्रीकृष्णेति" द्वादशनामभिः केशवादिद्वादशनामभिर्वा पुष्पाणि समर्प्य ॥ तैरेव तर्पणं कृत्वा ॥ पायसगुडौदनचित्रौदनानि। 'पवित्रं ते वित-

---

अन्तमें प्रणाम है, यह जल आचमनके निमित्त उनको स्वीकार करो इस मन्त्रसे इलायची, लौंग, कंकोल, कपूरसे मिले हुए आचमनको दे। यह जल दूध कुशाका अग्र, अक्षत, यव, तण्डुलसे युक्त है इनको स्वीकार करो इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, फिर वेदके मन्त्र ॐकारसे रत्नसहित कलशके जलसे देवताको स्नान कराकर विष्णुकी प्रतिष्ठामें 'इदं विष्णु०' यह मन्त्र और शिवकी स्थापनामें 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' इस मन्त्रको पढकर और जलमेंसे निकालकर और देवताको प्रणाम करके इस प्रकार पूजन करे, कि, यह शुभ और दिव्य गन्ध है सब गंध इनमें मिश्रित हैं, ब्रह्मपवित्री और सूर्यकी किरणोंसे पवित्र हैं इन्हें स्वीकार करो, इस मंत्रसे गंध दे, यह माला शुभ है और दिव्य हैं इनमें सब माला मिली हैं आप लीजिये इस मंत्रसे मालाओंको दे। यह फूल शुभ और दिव्य हैं, सब फूल इनमें मिले हैं, ब्रह्मपवित्री और सूर्यकी किरणोंसे पवित्र है, इस मन्त्रसे फूल चढा दे, इस धूपमें वनस्पतियोंका रस है, और गंधसे युक्त और उत्तम देवके सूंघनेके योग्य है, इसको स्वीकार करो इस मंत्रसे धूप देना, यह ज्योति, वीर्य और तेजरूप है और देवताओंकी निरंतर प्रिय है, सब भूतोंको प्रकाश करनेवाले इस दीपकको स्वीकार करो, इस मंत्रसे दीपकको देकर विष्णुकी मूर्तिमें संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण इन द्वादश नामोंसे वा केशवादि बारह नामोंसे फूलोंको समर्पण करके और इन्हीं नामोंसे तृप्त करे। फिर खीर घृतसे युक्त पूर्ण और शर्करासे युक्त गुड़ भात और हरिद्रौदन ( हरदीका भात ) इनको 'पवित्रन्ते' इस मन्त्रसे निवेदन करके घृतसे मिले कृशर ( मिश्रित ) अन्नसे इन मन्त्रोंके

तम्' इति नैवेद्यकृसरं पूर्वोक्तनामाभिर्हुत्वा तेनैव शार्ङ्गिणे, श्रियै, सरस्वत्यै, विष्णवे इति हुत्वा । 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि' 'तदस्य प्रियमभिपाथो' । 'प्रतद्विष्णुस्तवतेवीर्येण' 'परोमात्रया तन्वावृधान' । 'विचक्रमे पृथिवीमेष एताम्' 'त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम्' ॥ इति द्वादशनामभिश्चामुष्मै स्वाहेति जुहुयात् । लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा । भवाय देवाय० शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० उग्राय० भीमाय० महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा । तैरेव तर्पणं कृत्वा । 'पवित्रं ते' इति पायसं गुडौदनं च निवेद्य पूर्वोक्तनामभिः कृसरं हुत्वा । 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा । 'भवस्य देवस्य सुताय स्वाहा' इत्याद्यैर्हरिद्रौदनं हुत्वा । 'त्र्यम्बकं यजामहे० ।' 'मानो महान्तमुत मानो० ।' 'मानस्तोके तनये० ।' 'आरात्तेगोघ्नमुतपूरुषघ्ने० ।' 'विकिरिद्विलोहित० ।' 'सहस्राणि सहस्रशो' इति द्वादश । एतैर्हुत्वा । 'शिवाय शंकराय सहमानाय शितिकण्ठाय कपर्दिने ताम्राय अरुणाय अपगुरमाणाय हिरण्यबाहवे सस्पिंजराय बभ्लुशाय हिरण्याय' इति च जुहुयात् । ततः स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा बलिं दद्यात् । मन्त्रस्तु–"त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे । त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन् प्रतिगृह्णीष्व हव्यम् ॥" इति । लिङ्गे तु–नारायणपदे रुद्रं शिवमिति

---

पढकर आहुति प्रदान कराय वासुदेवाय, संकर्षणाय, प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय, शांत्यै, श्रियै, सरस्वत्यै, पुष्ट्यै, विष्णवे स्वाहा इन मन्त्रोंसे आहुति देकर इन वेदमन्त्रोंसे आहुति दे, 'विष्णोर्नुकं० तदस्य प्रियं० प्रतद्विष्णुः० परोमात्रया० विचक्रमे० त्रिर्देव०' फिर द्वादशनामोंसे देवके निमित्त हवन करे। लिंगकी प्रतिष्ठामें तो दीपदानपर्यन्त कर्म समापन करके इन नामोंसे फूलोंको दे कि, भव देव, शर्व, ईश, पशुपति, रुद्र, उग्र, भीम, महान् देवको प्रणाम है और इन्हीं मन्त्रोंसे तर्पण करके 'पवित्रं ते०' इस मन्त्रसे खीर और गुडौदनको निवेदन करके पूर्वोक्त नामोंसे कृशरका हवन करके भव महादेवकी पत्नीके अर्थ आहुति है इत्यादि आठ मन्त्रोंसे गुडौदनका हवन करके भव महादेवके पुत्रके लिये स्वाहा इत्यादि ऋचाओंसे हलदीभातका हवन कर 'त्र्यंबकं, मानोमहान्तं, मानस्तोके, आरात्ते गोघ्नं, विकिरिद्विलोहित, सहस्राणि सहस्रश' इन सब बारह मंत्रोंसे हवन करके शिव, शंकर, सहमान, शितिकंठ, कपर्दी, ताम्र, अरुण, अपगुरमाण, हिरण्यबाहु, सस्पिंजर, बभ्लुश, हिरण्यके निमित्त स्वाहा आहुति है इस प्रकार इन मंत्रोंसे हवन करे, फिर स्विष्टकृत् आदि शेष हवन पूर्ण करके पूर्वोक्त सब हवियोंसे विष्णु वा लिंगको बलि दे अर्थात् प्रदान करे, उसका यह मन्त्र है कि, आद्यपुरातन पुरुष नारायण सृष्टिके रचनेवालेका पूजन करते हैं आपही यज्ञरूप विधान करनेके योग्य हो, हे परमात्मन्! अपनी आत्मासे इस हविको स्वीकार करो, यदि लिंग हो तो नारायणके स्थानमें रुद्रपदको जपे फिर पीपलके पत्ते.

वदेत् । ततोऽश्वत्थपर्णे भूर्भुवः स्वरोमिति हुतशेषं निधाय, प्रदक्षिणीकृत्य, 'विश्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः ' इति नत्वा, आचार्याय शतं तदर्धं तदर्धं द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्त्वा, ऋत्विग्भ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा, शतं द्वादश ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः ॥ प्रासादमात्रे नूतने तु मात्स्योक्तजलाशयप्रतिष्ठाविधिमेव कुर्यात् ॥ गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि तु न भवति द्वारलोपात् । वारुणहोमस्थाने वास्तुहोमः । अन्यत्तद्वदेव । इति भट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ लिङ्गार्चाप्रतिष्ठाविधिः ॥ अथ पुनः प्रतिष्ठा । तामधिकृत्य हयशीर्षपञ्चरात्रे–" चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाथवा । अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्षतजदूषिता ॥" संस्कार्येति शेषः । पदार्थादर्शे ब्राह्मे–"खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते । यागहीनैः पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैवं पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥ २ ॥ " यागः पूजा । पशुर्गर्दभादिः । पञ्चरात्रे–"खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा । तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः ॥ " अर्चाभङ्गादावुपवासः कार्यः–"न राज्ञो विप्लवेऽश्री-

---

पर भूर्भुवः स्वः ॐ इससे तीन वा चार बार शेष हविको रखकर अग्निसहित देवकी परिक्रमा करके विश्वभुक्, सर्वभुक् आत्मा और परमात्माको प्रणाम है, इस मन्त्रसे प्रणाम करे, फिर आचार्यकी अंगुठी, दो कुण्डल, दो वस्त्रसे पूजा करे, सौ वा पचास वा पच्चीस वा बारह वा तीन वा एक गौओंको दे और ऋत्विजोंको भी दक्षिणा देकर सौ वा बारह वा दश ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इति संक्षेपः । नवीन प्रासाद ( मंदिर ) मात्रमें तो मत्स्यपुराणमें वर्णन की हुई जलाशयप्रतिष्ठाविधिको ही करना चाहिये, गौका उत्तारण और पात्रोंका प्रक्षेप आदि कर्म द्वारके लोपके भयसे नहीं होते, वरुणहवनके स्थानमें वास्तुहवनको करे और सम्पूर्ण उसी प्रकार समझना चाहिये ॥ इति कमलाकरभट्टकृतानिर्णयसिन्धुभाषाटीकायां लिंगार्चाप्रतिष्ठाविधिः समाप्तः ॥ अब फिर दूसरीवारकी प्रतिष्ठा लिखते हैं । फिर प्रतिष्ठाके प्रकरणमें हयशीर्षपञ्चरात्रमें यह लिखा है कि, चाण्डाल, मद्यके स्पर्श, अग्नि तथा अपवित्र मनुष्यके स्पर्शसे चाहे वे ब्राह्मण क्षत्रिय भी हों इनसे दूषित हुई प्रतिमा भी फिर संस्कारके योग्य होती है, पदार्थादर्शमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, खण्डित, टूटी, जली हुई, भ्रष्ट, मान ( सत्कार ) से हीन याग ( पूजा ) से हीन, पशुगर्दभादिसे छुई हुई जो दुष्ट भूमिमें गिर गयी हो, जो औरके मंत्रोंसे पूजित हो, जो पतितने स्पर्श की हो, ऐसी दश प्रतिमाओंमें देवता नहीं आते । पंचरात्रमें कहा है कि, खण्डित, फटी, चलायमान मूर्तिकी पूजा भयदायक है, इससे बुद्धिमान् मनुष्य उस मूर्तिका पूर्वोक्तविधानसे पुनः उद्धार करे, यदि पूजामें कोई भंग हो जाय तो व्रत करना कारण कि, विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, राज्यका भंग और देवपूजनका नाश इनमें मनुष्यको भोजन न करना चाहिये । सिद्धां-

यात्सुरार्चाविप्लवे तथा ।" इति विष्णुधर्मोक्तेः । सिद्धान्तशेखरे–"चौरचण्डाल- पतितश्वोदक्यास्पर्शने सति । शवाद्युपहते चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥" पञ्च- रात्रे–"अङ्गादङ्गादिसंधाने प्रतिष्ठां पुनराचरेत् । जलाधिवासविहितनेत्रोन्मील- नवार्जिताम् ॥" शुद्धिविवेके विष्णुः–'द्रव्यवत् कृतशौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनेन शुद्धिः' इति । अर्चाः–प्रतिमाः । तद्द्रव्यस्य ताम्रादेरुक्तशौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः । स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् । तद्विधिर्बौधायनसूत्रे–"पूर्वप्र- तिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वकमेकरात्रं द्विरात्रमेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्व- लाद्युपस्पर्शने पूर्वोक्तकाले पुण्याहं वाचयित्वा, युग्मान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा, निशायां जलाधिवासं कृत्वा, श्वोभूते कलशपूर्णेन पञ्चगव्येन तत्तन्मन्त्रैः स्नापयि- त्वाऽन्यं कलशं शुद्धोदकेनापूर्य, तस्मिन्नवरत्नानि प्रक्षिप्य, तं कलशं तत्तद्गायत्र्याष्ट- सहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वाभिमंत्र्य, तेनोदकेन देवं स्नापयेत् । ततः शुद्धोदकेन स्नापयेदष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिं वा पुरुषसूक्तेन मूलमन्त्रेण च । ततः पुष्पाणि दत्त्वा, यथासंभवमर्चयित्वा गुडौदनं निवेदयेत्" इति।बुद्धिपूर्वं तु विच्छेदे पूर्वोक्तां प्रतिष्ठां पुनः कुर्यात् । पूर्वोक्तविष्णुवचनात् । इदं मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यमिति मदनरत्ने हेमाद्रौ च । देवार्चाप्रासादभेदने तु शूलपाणौ काश्यपः–'वापी-

---

तशेखरमें कहा है कि चोर, चांडाल, पतित, रजस्वलाका स्पर्श और शिव आदिकी मूर्तिके भंगमें फिर प्रतिष्ठा करनी चाहिये, पंचरात्रमें लिखा है कि यदि अंगमें दूसरा अंग लगाया जाय यथा दूसरे नेत्र चढ़ाने इत्यादि हों तो फिर प्रतिष्ठा करनी चाहिये, परंतु जलके अधिवा- समें नेत्रोंके मीचनेको त्याग दे, अर्थात् फिर प्रतिष्ठा न करे, शुद्धिविवेकमें विष्णुने कहा है कि जिनका द्रव्यके तुल्य शौच किया है उन देवप्रतिमाओंकी फिर प्रतिष्ठासे शुद्धि होती है, अर्थात् तांबे आदि उस प्रतिमाके द्रव्यका उक्तके तुल्य शौच करके फिर प्रतिष्ठा करनी । स्मृत्यर्थसारमें भी इसी प्रकार लिखा है, फिर प्रतिष्ठाकी विधि बौधायनसूत्रमें इस प्रकार कथन की है कि पहले प्रतिष्ठा की हुई मूर्तिको अज्ञानसे एक रात्र दो रात्र एक महीने दो महीने तक पूजा आदिका भंग हो जाय या शूद्र, रजस्वला आदिका स्पर्श हो जाय तो पूर्वोक्त समयमें स्वस्तिवाचन कराय युग्म (दो आदि) ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और रात्रिमें जलाधिवास करके, प्रातःकाल कलशमें भरे पञ्चगव्यसे उन उन मन्त्रोंसे स्नान करा- कर और दूसरे कलशको शुद्ध जलसे भरकर और उस घड़ेमें नवरत्न डालकर उस कल- शका उस उस देवताका आठ सहस्र,आठसौ वा अट्ठाईस वार अभिमन्त्रण करके उस जल- से देवको स्नान करावे, फिर शुद्ध जलसे न्हवावे और आठ सहस्र दलोंसे पूजन कर दाल और भात निवेदन करे, यदि जानकर भंगता हो जाय तो पूर्वोक्त प्रतिष्ठाको पूर्वमें कहे विष्णुके वाक्यसे फिर करे । यह प्रतिष्ठा मलमास और शुक्रास्त आदिमें भी कर लेनी, यह मदनरत्न और हेमाद्रिमें भी कहा है । देवताकी प्रतिमा और मन्दिरके टूटनेमें

कूपारामसेतुसभातडागवप्रदेवतायतनभेदने प्रायश्चित्तं चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्। 'इदं विष्णुः' 'मानस्तोके' 'विष्णोः कर्माणि' 'पादोस्य' इति यां देवतामुत्सादयति तस्यै देवतायै ब्राह्मणान् भोजयेत्' इति। शंखलिखितौ-'प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपातभङ्गेषु तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च निपातितानाम्' इति। समुत्थानं-प्रतिक्रिया। प्रतिसंस्कारः-पुनः प्रतिष्ठा। अष्टशतं पणा दण्डश्चेत्यर्थः॥ अथ जीर्णोद्धारनिर्णयः। स च लिङ्गादौ दग्धे भग्ने चलिते वा कार्यः। अयं चानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिङ्गादौ भङ्गादिदुष्टेऽपि न कार्यः। तत्र तु महाभिषेकं कुर्यादिति त्रिविक्रमः। कर्तामुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये इत्युक्त्वा पुण्याहं वाचयित्वा आचार्यमृत्विजश्च वृत्वा। लिङ्गे ॐ व्यापकेश्वरहृदयाय नमः। ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहेत्येवं षडङ्गं कृत्वाऽघोरमन्त्रं शतं जप्त्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्याघोरेण घृतसर्षपैः सहस्रं हुत्वा। इन्द्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्त्वा जीर्णदेवं प्रणवेन संपूज्य ब्रह्मादिमण्डलदेवतानां होमं पूर्वोक्तं कृत्वा देवं प्रार्थयेत्। "जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम्। अस्योद्धारे कृते शांतिः शास्त्रेऽस्मिन् कथिता त्वया॥ जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम्। तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया॥ २॥"

---

तो शूलपाणिमें काश्यपने कहा है कि, बावडी, कूप, बाग, पुल, सभा, तालाब, परकोटा, देवमन्दिरके तोड़नेमें यह प्रायश्चित्त है कि इन चार मन्त्रोंसे चार आहुति दे कि 'इदं विष्णु० मानस्तोके० विष्णोः कर्माणि० पादोस्य०' और उसी देवताके निमित्त ब्राह्मणभोजन करावे। शंख लिखितने कहा है कि, प्रतिमा, कूप, मार्ग, ध्वजा, पुल, चौबच्चेके भंगमें उनको फिर बनवावे और फिर प्रतिष्ठा करे और जो प्रतिमा आदिको गिराता हो उसको आठसौ पण दण्ड भी दे। अब जीर्ण मन्दिरादिका उद्धार कहते हैं, वह उद्धार लिंग आदिके जलने टूटने वा चलनेपर करना चाहिये और यह उद्धार अनादिसिद्ध लिंगके भंगआदि होनेपर भी न करना चाहिये, वहां तो महास्नानविधि करे यह त्रिविक्रमका कथन है इस देवमन्दिरका जीर्णोद्धार करता हूँ करनेवाला यह कहकर और स्वस्तिवाचन कराय आचार्य और ऋत्विजोंका वरण करके लिंगमें 'ॐ व्यापक ईश्वर हृदयाय नमः ॐ व्यापक ईश्वर शिरसे स्वाहा' इस प्रकार षडंग न्यास करके और अघोर मन्त्र सौ वार जपकर और अग्निका स्थापन करके घृत और सरसोंसे एक सहस्र आहुति देकर और नाममन्त्रोंसे इन्द्र आदिको बलिदान देकर, जीर्ण देवकी ॐकारसे पूजा करके ब्रह्मा आदि मण्डलदेवताओंका पूर्व कहे अनुसार हवन करके देवकी प्रार्थना करे कि जीर्ण और भंग हुआ यह देव मनुष्योंको सब दोषोंका दाता है, इसके उद्धारकी शान्ति इस शास्त्रमें आपने ही कही है, जीर्णका उद्धार राजा और प्रजाको हित करनेवाला है हे देव! इससे इस मूर्तिमें आप नीच स्थित हो आपकी आज्ञासे शस्त्रका प्रहार करता हूं अर्थात्

इति । ततः क्षीराज्यमधुदूर्वाभिः समिद्भिश्चाष्टोत्तरसहस्रं शतं वा देवमन्त्रेण हुत्वाऽङ्गानां दशांशेन लिङ्गचालनार्थं सहस्रं शतं वा पायसेन हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत् । " लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् । यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता । शिवेन सह संतिष्ठ" इति मन्त्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत् । ततोऽस्त्रमन्त्रितेन खनित्रेण खात्वा लिङ्गमादाय नद्यादौ वामदेवेन लिङ्गं प्रणवेन मूर्तिं क्षिपेत् । दारुजं तु मधुनाऽभ्यज्याघोरेण दहेत् । हेमरत्नादिमयं तु दग्धं चलितं वा पुनस्तत्रैव स्थापयेत् ततः शान्त्यै अघोरेण तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत् । "भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । जीर्णलिङ्गसमुद्धारस्त्वाज्ञया ते मया कृतः ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले । प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३ ॥ " इति । ततो यजमानः प्रार्थयेत् । " गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः ॥ शान्तिर्भवतु देवेश ह्यच्छिद्रं जायतामिदम् ॥ " मूर्तौ तु विशेषः-"त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं

---

फिर निर्माण करता हूं । फिर दूध, घृत, शहत, दूब, समिधसे देवमंत्रको पढ़कर एक सहस्र आठ १००८ वा एक सौ आठ १०८ आहुति देकर और अंग ( परिवार ) देवोंके निमित्त दशांशसे और लिंगके चलानेके निमित्त खीरकी सहस्र वा सौ आहुति देकर लिंगकी प्रार्थना करे कि, इस लिंगरूपमें आकर जो देवता स्थित हैं वह देव शिवकी आज्ञासे संमित ( श्रेष्ठ ) स्थानको गमन करे, और इस स्थानमें सम्पूर्ण विद्याके ईश्वरोंसे युक्त जो विद्या है वह शिवके संग स्थित हो इस मन्त्रसे मंत्रित जलसे अभिषेक करके देवताका विसर्जन करे फिर अस्त्रसे अभिमन्त्रित कियेहुए खनित्र ( कुदालादि ) से खोदकर और लिंगको लेकर वामदेव मन्त्रसे लिंगको और प्रणव पांच ओंकारसे मूर्तिको नदी आदिमें सिरा दे, काष्ठके लिंगमें तो शहद लगाय अघोर मंत्रको पढ़कर होम दे, सुवर्ण रत्न आदिके लिंग दग्ध वा चल योग्य हो तो ठीककर वहां ही स्थापन करदे, फिर शांतिके निमित्त तिलोंकी 'अघोर' मंत्रसे १००० सहस्र आहुति देकर प्रार्थना करे कि, हे भगवन् ! हे भूत और भाविके अधिपति ! हे लोकनाथ ! हे जगत्के ईश्वर ! आपकी आज्ञासे मैंने जीर्ण लिंगका उद्धार किया है सो क्षमा करना और काष्ठके निर्मितको अग्निसे भस्म करे, और पाषाणकी मूर्ति जलमें सिरा दे । हे देवेश ! जो अघोर अस्त्रसे तर्पित किया है वह सब प्रायश्चित्तके निमित्त है इसमें जो यथोक्त कर्म ज्ञान अथवा भूलसे न किया हो वह सब आपके प्रसादसे परिपूर्ण हो फिर यजमान स्तुति करे कि, हे देवेश ! गौ, ब्राह्मण, शिल्पी, राजा आचार्य तथा यज्ञ करनेवालेकी शांति हो और यह पूर्ण हो, मूर्तिमें तो यह विशेष कहा है कि, हे सरश्रेष्ठ ! आपके प्रसादसे विघ्नरहित मूर्तिको निर्माण

देहं निर्मापयत्यसौ । वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥ वसन् क्लेशं सहित्वेह मूर्तौ वै तव पूर्ववत् । यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥ ॥ २ ॥ " इति । ततो नवां मूर्तिं लिङ्गं वा कृत्वोक्तविधिना स्थापयेत् । मूलं त्वग्निपुराणे स्पष्टम् । इति जीर्णोद्धारः ॥ अथ तुलसीग्रहणम् । देवयाज्ञिककृते स्मृतिसारे–"वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु । पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये ॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥ " विष्णुधर्मोत्तरे–"रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना ॥ जीवितस्याविनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मवित् ॥ " तथा–" संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशि सन्ध्ययोः । यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम् ॥ " पाद्मे–" द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्त्तिके । लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥ " रुद्रयामले–" द्वादश्यां च दिवा स्वापस्तुलस्यवचयस्तथा । विष्णोश्चैव दिवा स्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ " विष्णुधर्मे–" न च्छिन्द्यात्तुलसीं विप्रो द्वादश्यां वैष्णवः क्वचित् । देवार्थे तुलसीच्छेदो होमार्थे समिधां तथा ॥ इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थे द्रुतृणस्य च ॥ " ग्रहणमन्त्रस्तु पाद्मे–"तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ।

---

करता हूँ, इससे तबतक और अल्प स्थानके विषय आप विराजिये, और जबतक यह भक्त आपकी मूर्ति निर्माण करे तबतक यहां क्लेशसहित वसते हुए उसके मनोवाञ्छित कर्मको करो, फिर नवीन मूर्ति वा लिंगको निर्माण कर विधिपूर्वक स्थापन करे, इसमें प्रमाण अग्निपुराणमें कहा है। इति जीर्णोद्धारः। तुलसीके ग्रहण करनेको लिखते हैं, देवयाज्ञिकके निर्माण किये स्मृतिसारमें कहा है कि, वैधृति, व्यतिपात, मंगल, शुक्र, रविवार, दोनों पर्व, पूर्णिमा, अमावस, ( १५।३० ) संक्रान्ति, द्वादशी, दोनों सूतक ( मरण जन्म ) में जो तुलसीको तोडते हैं वे मानो भगवान्‌के शिरको छेदते हैं। विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है कि, धर्मात्मा पुरुष रविवारके विना दूर्वा और द्वादशीके विना तुलसीको अपने जीवनके निमित्त न तोडे; तैसे ही कहा है कि, संक्रांति, रविवार, अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी, रात्रि, सन्ध्यामें जिन्होंने तुलसीपत्रको तोडा मानो उन्होंने हरिका मस्तक ही तोडा है। पद्मपुराणमें कहा है कि, जो मनुष्य द्वादशीको तुलसीपत्र और कार्त्तिकमें आंवलेका पत्ता तोडता है वह महा निंदित नरकोंमें गमन करता है। रुद्रयामलमें कहा है कि, द्वादशीको दिनमें शयन और तुलसीका तोडना और दिनमें विष्णुको स्नान कराना इनको बुद्धिमान् मनुष्य सदा त्याग दे, विष्णुधर्ममें कहा है कि, वैष्णव ब्राह्मणको द्वादशीको कभी भी तुलसी न तोडनी चाहिये, देवताके निमित्त तुलसीका और होमके लिये समिधोंका और गौके निमित्त वृक्ष तृणका छेदन अमावास्याको भी दूषित नहीं है. ग्रहण करनेका मन्त्र पद्मपुराणमें यह लिखा है हे तुलसी ! तुम अमृतरूपा हो और सदा भगवान्‌की

केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥" इति । अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वम् । पारिजाते दक्षः—'समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः प्रहरो मतः । ' भार्गवार्चने भविष्ये—"प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् । तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेऽपि च ॥ " बृहन्नारदीये—"वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥ " तत्रैव पाद्मे— " तुलसी पर्युषिता नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि । पद्मं पञ्चदिनात्त्याज्यं शेषं पर्युषितं विदुः ॥ " स्कान्दे—"पालाशं दिनमेकं तु पंकजं च दिनत्रयम् । पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ॥ " पदार्थादर्शे बोपदेवस्त्वन्यथाह—" बिल्वापामार्गजातीतुलसिशमिशताकेतकीभृङ्गदूर्वामन्दाम्भोजाहिदर्भा मुनितिलतगरब्रह्मकह्लारमल्लचः । चम्पाश्वारातिकुम्भीदमनमरुबका बिल्वतोऽहानि शस्तास्त्रिंश ३० त्र्ये ३ का १ र्य ६ री ६ शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् ॥ " अस्यार्थः—शता शतावरी । मन्दः मन्दारः । अहिर्नागकेशरः । मुनिरगस्त्यः । अश्वारातिः करवीरः । कुम्भी पाटलेति कैदवनिघण्टुः ॥ अरयः षट् । ईशा एकादश । उदधयश्चत्वारः । निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूः एकः । यमौ द्वौ । बिल्वमारभ्याहिपर्यन्तं गणयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादि गणयेदित्यर्थः । एतद्दिनोत्तरं पर्युषि-

---

प्यारी हो, कृष्णके निमित्त तुझ तोड़ता हूं, हे शोभने ! तुम वरदाता हो ॥ अब फल आदि के बासीपनको कहते हैं, पारिजातमें दक्षने लिखा है कि, समिध, फूल और कुशा आदिके तोड़नेका दूसरा प्रहर माना है । भार्गवार्चनमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि जातीका फूल एक प्रहर, कनेरका एक रातदिन स्थित रहता है । तुलसी, बेलपत्र और सब जलमें और मालीके घरके फूलोंके बासीपनका दोष नहीं है। बृहन्नारदीयमें कहा है कि, फूल और जल ये बासी त्यागने योग्य है परन्तु तुलसीपत्र और गंगाजलका त्याग नहीं है वहां ही पद्मपुराणमें लिखा है कि, तुलसी बासी नहीं होती और तीन दिन तक बेलपत्र बासी नहीं होता, पांचदिन तक कमल बासी नहीं है शेष पर्युषित होते हैं । स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, ढांक एक दिन, कमल तीन दिन, बेलपत्र पांच दिन, तुलसीपत्र दश दिनतक बासी नहीं है, पदार्थादर्शमें बोपदेवने तो और लिखा है कि बेल तीस दिन, अपामार्ग (चिराचिटा) तीन दिन, जाती एक दिन, तुलसी छः दिन, समिधा ग्यारह दिन, शतावरी चार दिन, केतकी नौ दिन, भंगरा आठ दिन, दूर्वा एक दिन, मन्दार एक दिन, कमल दो दिन, नागकेशर एक दिन, कुशा तीस दिन, अगस्त्य तीन दिन, तिल एक दिन, तगर छः दिन, ब्राह्मी ग्यारह दिन, कह्लार चार दिन, चमेली नौ दिन, चम्पा आठ दिन, कनेर एक दिन, पाटल एक

तानीत्यर्थः । टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य-" तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी । शुष्का पर्युषिता वापि न दुष्टा भवति कचित् ॥ " तिथितत्त्वे मात्स्ये-" बिल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदले । कह्लारं तुलसीं चैव पद्मं च मुनिपुष्पकम् ॥ एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा ॥ " स्मृतिसारावल्याम्-" जलजानां च सर्वेषां पत्राणामहतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतो यस्य चैव हि । मुकुलैर्नार्चयेद्देवं पंकजैर्जलजैर्विना ॥ २ ॥" अथ शिवनिर्माल्यनिर्णयः । सिद्धान्तशेखरे-"धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् । विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ अन्यदन्नादि पानीयं ताम्बूलं गन्धपुष्पकम् । दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं तु सर्वशः ॥ आचार्यशिवचण्डानामाज्ञाभङ्गे तु लक्षकम् । धनस्य भक्षणे तेषां पादोनं लक्षमीरितम् ॥ निर्माल्ये भक्षिते लक्षपादतः शुद्धिरीरिता । दानं च भक्षणसमं तदर्धं तदुपेक्षणे ॥ अकामाद्भक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः । ब्रह्मपञ्चकसाहस्रमर्धेन[1] सहितं ततः ॥ कामतो भक्षणे दीक्षा प्रायश्चित्तं न चान्यतः । निर्माल्यलंघनेऽघोरं प्रजपेदयुतं ततः ॥ स्पर्शश्च लंघनसमो विक्रयो भक्षणेन च ॥ ७ ॥ " स्मृत्यर्थसारेऽपि-" शैव-

---

दिन, मौलसिरी एक दिन, मरवा दो दिन, बकुल एक दिन पर्यन्त बासी नहीं होते । टोडरानन्द ग्रन्थमें स्कन्दपुराणके दमनके प्रकरणमें कहा है कि, मौलसरीकी माला भगवान्को अत्यन्त प्रिय करती है, सूखी वा बासी भी कदाचित् मौलसरी दूषित नहीं होती है। तिथितत्त्वमें मत्स्यपुराणका लेख है कि, बिल्वपत्र, कुन्द, तमाल और आँवलेके पत्ते, कह्लार, तुलसी, पद्म, अगस्त्य, कुशा और कलियें बासी नहीं होते । स्मृतिसारावलीमें कहा है कि जलसे उत्पन्न हुए सब फूल, पत्ते और बिना टूटे ( स्वच्छ ) फूल, कुशाके फूल, चांदी और सोनेके फूल और तीर्थका जल, इनमें पर्युषितका दोष नहीं, कमल और जलसे उत्पन्न हुए फूलोंको त्यागकर मुकुलों ( कली ) से देवताका पूजन न करे । अब शिवनिर्माल्यका निर्णय लिखते हैं, सिद्धान्तशेखरमें कहा है कि पृथ्वी, सुवर्ण, गौ, रत्न, चांदी, वस्त्रको त्यागकर शेष निर्माल्यको चण्डेश्वरको निवेदन करे, अन्य जो अन्न आदि जल, पान, गंध, फूल हैं उन सबको शिवजीको निवेदन करनेके उपरान्त चण्डको दे, आचार्य शिवचण्डकी आज्ञा भंग करे तो लक्ष और उनके धनके भक्षणमें पौन लक्ष और निर्माल्यके भक्षणमें २५ सहस्र जपसे शुद्धि लिखी है, और भक्षण तुल्य दान और उपेक्षा करनेमें अर्द्धदान करे, और अज्ञानसे भक्षणमें बुद्धिमान् मनुष्य पांच सहस्र गायत्रीको जपे, जानकर भक्षण करे तो दीक्षा ( मन्त्रका उपदेश ) ले और प्रायश्चित्त नहीं है और निर्माल्यके लंघनेमें दश सहस्र अघोरमन्त्र जपे स्पर्श लंघनके तुल्य और बेचना भक्षणके तुल्य होता है । स्मृत्यर्थसारमें भी

---

१ 'अर्द्धेन सहितम्' इसका साढे पांच सहस्रका अर्थ करना।

सौरनिर्माल्ये नैवेद्यभक्षणे चान्द्रम्, अभ्यासे द्विगुणम्, अत्यभ्यासे प्रतपनम्। अन्यानिर्माल्येऽप्यनापद्येवम्" इति। इदं च ज्योतिर्लिङ्गाद्यतिरिक्तविषयम्। तथा च पुरुषार्थप्रबोधे भविष्ये-"ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमः। तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम्॥ शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि। रसलिङ्गे तथार्षे च सुप्रसिद्धप्रतिष्ठिते॥ हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते। शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते॥ २॥" तथा-"बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते। चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम्॥ लिङ्गे स्वयंभवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते। सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चंडाधिकृतिर्भवेत्॥ यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः। चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः॥ ३॥" त्रैविक्रम्याम्-"बाणलिंगे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि। प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥" अत्र-"ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्। तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥" इति स्कान्दादशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्माल्यम्। किंतु स्नात्वेति स्मार्ताः। अनुपनीतेन ग्राह्यमिति श्रीदत्तः। शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्यमिति शैवाः। तिथितत्त्वे हेमाद्रौ।

---

कहा है कि, शिवजी और सूर्यके निर्माल्य, नैवेद्य ( मिष्टान्न ) के भक्षणमें चान्द्रायण व्रत करे और वारंवार करे तो दूना व्रत करे, अत्यन्त अभ्यास करनेसे तो प्रतपन करे और देवताओंके निर्माल्य भक्षणमें भी विना आपत्ति यही प्रायश्चित्त है, यह भी ज्योतिर्लिंग आदिसे भिन्न विषयमें जानना सोई पुरुषार्थप्रबोधमें भविष्य पुराणका वाक्य है कि, जो श्रेष्ठ मनुष्य ज्योतिर्लिंगके विना लिंगकी पूजा करता है उसको निर्माल्य और नैवेद्यके भक्षणमें तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त लगता है। शालग्रामसे निर्मित और बाणके लिंग और स्वयं निकसे लिंगमें, रसके लिंगमें और ऋषि देवता सिद्धके प्रतिष्ठित लिंगमें, हृदय और चन्द्रकान्त मणि, सोने, चांदीसे निर्मित लिंगमें शिवदीक्षावाला भक्त निर्माल्यका भक्षण करे यह कहा है। तैसे ही लिखा है कि, बाणलिंग, स्वयं प्रादुर्भूत लिंग, चन्द्रकान्तमणिका, हृदयका लिंग इन शिवमूर्तिके नैवेद्यका भक्षण चान्द्रायणके तुल्य पवित्र करनेवाला है, स्वयंप्रादुर्भूत बाण वा रसका वा रत्नका लिंग, सिद्धोंके प्रतिष्ठित लिंगोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, जिसमें चण्डका अधिकार है मनुष्य उस देवताके नैवेद्यको भक्षण न करे, और जिसमें चण्डका अधिकार नहीं है, उसको भक्तिसे भोग लगाय भक्षण करे। त्रिविक्रमीमें कहा है कि बाज, लोहेका और सिद्धोंका प्रतिष्ठित और स्वयंभूलिंग और सम्पूर्णप्रतिमामें चण्डका अधिकार नहीं है, ब्रह्महत्यारा भी जो शुद्ध होकर निर्माल्यको धारण करे, हे महाव्रते! उसके महापापको भी मैं शीघ्र नाश करता हूं इस स्कन्दपुराणके वाक्यसे अशुद्ध मनुष्य ग्रहण न करे यह शैवोंका कथन है।

परिशिष्टे-"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥" पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण च निवेदितमित्यर्थः । शिवपुराणे-'ये वीरभद्रशमिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः । शंभोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न दीक्षिताः ॥ तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम् ॥" काशीखण्डे-" जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः । एष जालंधरो बन्धः समस्तसुरवल्लभः ॥" तथा-"स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् । त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥ लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम् । गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः ॥ २ ॥" इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषयमिति केचित् । काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्गविषयम् । काशीखण्डे रत्नेश्वराख्याने तथैव दर्शनादित्यन्ये ॥ कृषिनिर्णयः । राजमार्तण्डः-"ऋक्षेषूत्तरपौष्णवैष्णवमघामूलानुराधाश्विनीप्राजापत्यकरद्विदैवतगुरुप्रालेयपादेषु च । निर्दोषैर्वृषभैर्हलैश्च सुमनोमालाभिरभ्यर्चितैर्दत्त्वा क्षेत्रपतेर्बलिं हलधरः क्षेत्रं ततः कर्षयेत् ॥ प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनीपौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषक्स्वाती विशाखा तथा । जीवार्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने लग्ने च सौम्यो

---

तिथितत्त्व और हेमाद्रिपरिशिष्टमें वाराहपुराणका लेख है कि, शिवका नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल, जल ये सब ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं और शालग्रामकी शिलाके सम्बन्धसे सब पवित्र हो जाते हैं, अर्थात् पंचायतन ( पांच देवताओंकी ) पूजामें जो एक समय निवेदन किया हो, शिवपुराणमें कहा है कि जिनको वीरभद्रका शाप लगा है और जो शिवकी भक्तिसे रहित हैं और जो शिवके सिवाय दूसरे देवताओंके भक्त हैं, उनको शिवजीके चारों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती । काशीखण्डमें कहा है कि, विश्वेश्वरके स्नानजलको मस्तकपर धारण करना चाहिये यह जालंधरबन्ध ( जलोंका धारण ) सब देवताओंको अतिप्रिय है तैसेही कहा है कि, जो विधिपूर्वक शिवके लिंगको स्नान कराकर स्नानके जलको पान करता है उसका तीन प्रकारका पाप शीघ्र दूर होता है, जो लिंगके स्नानजलको शिरपर छिड़कता है पापहीन होकर उसको गंगास्नानका फल प्राप्त होता है, ये वाक्य पूर्व वाक्यके वशसे विश्वेश्वरके विषयमें हैं, यह कोई लिखते हैं कि, पुराणोंमें प्रसिद्ध काशीके सब लिंगोंके विषयमें है, और कहते हैं काशीखण्डके रत्नेश्वर लिंगके आख्यानमें इसी प्रकार देखा है । अब कृषिका निर्णय लिखते हैं । राजमार्तण्डमें कहा है कि, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, मघा, मूल, अनुराधा, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, विशाखा, पुष्य, मृगशिर नक्षत्रोंमें निर्दोष और फूलोंकी मालासे पूजित बैल और हलोंसे क्षेत्रके पति देवताको बलि देकर कृषक खेतको जोते, और रोहिणी, श्रवण, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मघा, मार्तण्ड ( हस्त ), पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिर, शतभिषा, स्वाती, विशाखा नक्षत्र, बृहस्पति, सूर्य, चंद्र, शुक्र, बुधवार और सौम्योदय लग्न ये सब खेतीके बोने

दये सस्यानां वपने तथैव लवने शस्तास्तथा रोपणे ॥ २ ॥" चण्डेश्वरः- "हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां श्रवणत्रये । स्थिरलग्ने गुरोर्वारे बीजं धार्यं ज्ञशुक्रयोः ॥ ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा । इमं मन्त्रं लेखयित्वा धान्यागारे निधापयेत् । सस्यवृद्धिं परां कुर्यात्पूजितं प्रतिपूजयेत् ॥ दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनमभिनवासु नारीषु । व्ययमपि सस्यधनानां न बुधा बुधवासरे कुर्युः ॥ शनिवारे च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः ॥ ३ ॥" अथ वस्त्रनिर्णयः । श्रीपतिः-" रोहिणी च करपञ्चकेऽश्विभे त्र्युत्तरासु च पुनर्वसुद्वये । रेवती च वसुदैवते च भे नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥ जीर्णं रवौ सततमम्बुभिरार्द्रमिन्दौ भौमे शुचे बुधदिने तु भवेद्धनाय । ज्ञानाय मन्त्रिणि भृगौ प्रियसंगमाय मन्दे मलाय च नवाम्बरधारणं स्यात् ॥ रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्ति नववस्त्रभूषणे । सा न योषिदवलंबते पतिं स्नानमाचरति वारुणेऽपि या ॥ ३ ॥" अथालंकारवलयादिनिर्णयः । दैवज्ञवल्लभः-" नासत्यपूषवसुभिः करपञ्चकेन मार्तण्डभौमगुरुदानवमन्त्रिवारे । मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदन्तरक्ताम्बराणि विधृतानि भवन्ति सिद्ध्यै ॥ " ज्योतिर्निबन्धे-" हस्तानुराधमृगपूषधनिष्ठयुक्ताचित्रोत्तरासु च

---

और लगाने, काटनेमें उत्तम हैं । चंडेश्वर कहते हैं कि, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ये नक्षत्र, स्थिर लग्न, बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें बीज बोवे, 'ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय नमः देहि मे धन्यं स्वाहा ' धन देनेवाले सब लोकके हितकारीको प्रणाम है मुझे अन्न दो, इस मंत्रको लिखकर कोठारमें रख दे तो पूजितको भी अर्चित करता है, बुद्धिमान् मनुष्य दक्षिणका गमन और नवीन स्त्रीका दक्षिण दिशाको गमन और खेत और धनका खर्च बुधवारमें न करे वा शनिवारको भी धन और अन्नको न दे । अब वस्त्रका निर्णय लिखते हैं । श्रीपति कहते हैं कि, रोहिणी और हस्तसे पांच और तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, धनिष्ठा नक्षत्रमें नवीन वस्त्रको धारण करना उत्तम है, जीर्ण वस्त्र रविवारको, जलसे भीगा वस्त्र चन्द्रवारको धारण करे और नवीन वस्त्रको मंगलवारको पहरे तो अशुद्धि, बुधवार धन, बृहस्पतिवारको ज्ञान, शुक्रवारको प्रियमिलन, शनैश्चरको मलिनता होती है, जो स्त्री रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरामें नये वस्त्र और गहनेको पहरती है वा शतभिषा नक्षत्रमें न्हाती है उसको पतिका संग प्राप्त नहीं होता । अब भूषण और कंकण आदिका निर्णय लिखते हैं । दैवज्ञवल्लभ कहते हैं कि अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, हस्तसे पांच नक्षत्र, सूर्य, मंगल, शुक्र, बृहस्पतिवार इनमें मोती, सुवर्ण, मणि, मूँगा, शंख, दांत, लाल वस्त्रको धारण करे तो सिद्धि होती है। ज्योतिर्निबंधमें कहा है कि हस्त, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, धनिष्ठा, चित्रा, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी नक्षत्र, स्थिर लग्न, शनैश्चर,

पुनर्वसुरोहिणीषु । लग्ने स्थिरे रविसुतेन्दुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम् ॥ " तत्रैव श्रीपतिः-" पौष्णाश्विनीवसुकरादिषु पञ्चकेषु कौसुम्भहेममणिविद्रुमकाचशंखाः । नार्या धृताः सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादितिगुरुष्वसुखाय भर्तुः ॥ " तत्रैव-" शंखादिवररत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु च । रोहिण्यां नैव गृह्णीत भर्तुर्जीवितकांक्षिणी ॥ " अथ सूचीकर्म । " वासवादितिभत्वाष्ट्रमैत्रचन्द्राश्विनीषु च । सूचीकर्मतनुत्राणमेभिर्ऋक्षैः प्रशस्यते ॥" अथ शय्या । " हस्तादितिब्रह्मगुरूत्तराणि पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभानि ॥ वारेषु जीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनारम्भणमुत्तमं स्यात् ॥ " अथ शस्त्रधारणम् " पुष्ये चादितिचित्रपद्मतनये शक्रोत्तरारेवतीस्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौ गुरौ भार्गवे । कुम्भे कीटगृहे वृषे मृगपतौ चेन्दौ शुभैर्वीक्षिते सन्नाहः शरखड्गकुन्तछुरिका धार्या नृपाणां हिताः ॥" अथ स्वामिसेवा । चण्डेश्वरः-"रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसुवारुणयोरपि । सेवेत स्वामिनं भृत्यः शुभवारोदये तथा ॥" ज्योतिर्निबन्धे-"दासीदासादिभृत्यानां कुर्यात्संग्रहणं बुधैः । स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे मन्दवारे विशेषतः ॥ " गजाश्वदोलारोहणनिर्णयः । स एव-"पौष्णप्रजेशादितिभद्वयानि हस्तादिषट्कश्रवणोत्तराणि । दोलादिमातङ्गतुरंगमाणामारोहणेऽभीष्टफलप्रदानि ॥ " अथ नृत्यम् ।

---

बुध, बृहस्पति वारमें मनुष्य सुवर्ण आदिको पहरे । वहां ही श्रीपति कहते हैं कि रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त आदि पांच नक्षत्रोंमें स्त्री कुसुंभी रंगका वस्त्र, सुवर्ण, मणि, मूंगा, कांच, शंखको धारे तो सन्तानको मंगलकारी होते हैं और रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्यमें धारे तो पतिके सुखकारी होते हैं । वहां ही लिखा है कि शंखआदि श्रेष्ठरत्नको पतिके जीवनकी इच्छा करती हुई स्त्री पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, रोहिणीमें धारण करे । अब सूचीकर्म ( सीने ) का निर्णय लिखते हैं । धनिष्ठा, पुनर्वसु, चित्रा, मृगशिर, अश्विनीमें सीना और ( कवच ) संजोवलका बनना अति उत्तम है । अब शय्याका निर्णय लिखते हैं । हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, मूल, मृगशिर, चित्रा नक्षत्र, बृहस्पति, सोम, शुक्र, बुधवारमें खाटका आरम्भ श्रेष्ठ है । अब शस्त्रका धारण लिखते हैं । पुष्य, पुनर्वसु, चित्रा, मृगशिर, ज्येष्ठा, तीनो उत्तरा, रेवती, स्वाती, अश्विनी, विशाखा, अनुराधा ये नक्षत्र, सूर्य, बृहस्पति, शुक्रवार, कुंभ और वृश्चिक लग्न मकरका चन्द्रमा और लग्नमें शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो तनुत्राण ( बख्तर ); बाण, तलवार, भाला, छुरिका धारण करना मनुष्योंके निमित्त हित है । अब स्वामीकी सेवा कहते हैं । चण्डेश्वर लिखते हैं कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा और शुभवारमें सेवक स्वामीकी सेवा आरंभ करे । ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, बुद्धिमान् मनुष्य दासी, दास और भृत्य इनके संग्रहको शुभग्रहोंसे देखे अच्छे शुभ लग्नमें और शनिवारको विशेषतासे करे । अब हाथी घोड़ोंके चढनेको लिखते हैं । ज्योतिर्निबन्धमें कहा है कि, रेवती, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्तसे छः, श्रवण, तीनों उत्तरा इनमें हिंडोला, हाथी, घोडा, इनपर चढ़ना यथेच्छ फलको

"हस्तः पुष्यो वासवं रोहिणी च ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं चोत्तराश्च।पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चक्रवर्ती नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥" अथ राजदर्शनम् । श्रीपतिः-'मृगाश्विपुष्यश्रवणश्रविष्ठाहस्तध्रुवत्वाष्ट्रभपूषभानि । मैत्रेण युक्तानि नरेश्वराणां विलोकने भानि शुभप्रदानि ॥" अथ क्रयविक्रयौ । " भाद्रद्वयत्रिदशमंत्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतुरंगमरेवतीषु । सारङ्गपाणिरजनीकरमित्रभेषु लाभः सदैव भवति क्रयविक्रयाभ्याम् ॥" वस्त्रे तु-"चित्रा शतभिषा स्वाती रेवती चाश्विनी शुभा । श्रवणश्च तथा प्रोक्ता वस्त्राणां क्रयणे शुभाः ॥ " अथ सेतुनिर्णयः । "स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्ने शुभे दिने । सेतूनां बन्धनं कार्यं ध्रुवभे चार्कजीवयोः ॥" अथ पशुकृत्यम् ।· श्रीपतिः-"चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु । स्थानप्रवेशो गमनं विदध्यात्पुमान् पशूनां न कदाचिदेव ॥" चण्डेश्वरः-"हस्तमूलविशाखासु रेवत्यां श्रवणे तथा । मैत्रे च वारुणे श्रेष्ठं पशुक्रयणमुच्यते ॥ पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेषु इन्द्राग्निवाजिवसुवारुणशंकरेषु । एतेषु गोमहिषदन्तितुरंगमादिनानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता ॥ २ ॥" अथ गजदन्तच्छेदः । ज्योतिर्निबन्धे-"त्वाष्ट्रे च वैष्णवेऽश्विन्यामादित्ये वसुदैवते ।

---

देता है। अब नृत्यको लिखते हैं-हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, रेवती, शतभिषा, तीनों उत्तरा पूर्व आचार्योंका लिखा हुआ यह नक्षत्रोंका समूह नृत्यके आरम्भमें उत्तम है और यह चक्रवर्ती योग है । अब राजाके दर्शनको लिखते हैं-श्रीपति कहते हैं कि, मृगशिर, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, तीनों उत्तरा, रोहिणी, चित्रा, रेवती, अनुराधा नक्षत्र राजाके दर्शनमें मंगलदायक हैं । अब क्रयविक्रयको लिखते हैं-पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, बृहस्पति और रविवार, मूल, स्वाती, तीनों उत्तरा, अश्विनी, रेवती, श्रवण, मृगशिर, अनुराधामें क्रयविक्रय ( लेनदेन ) करे तो निरन्तर लाभ होता है। वस्त्रमें तो यह लिखा है कि, चित्रा, शतभिषा, स्वाती, रेवती, अश्विनी, श्रवण नक्षत्र वस्त्रोंके क्रय करनेमें शुभ हैं । अब सेतुको लिखते हैं-स्वातीनक्षत्रसे युक्त शनिवार वृष लग्न और शुभ दिन, तीनों उत्तरा और रोहिणी, रवि, और बृहस्पतिवारमें पुलोंका बांधना उत्तम है। अब पशुके काम वर्णन करते हैं-श्रीपति कहते हैं कि, चित्रा, तीनों उत्तरा, श्रवण, रोहिणी, चतुर्दशी, अमावास्या, अष्टमी इनमें मनुष्य पशुओंके स्थानमें गमन और प्रवेश न करे। चण्डेश्वर कहते हैं कि, हस्त, मूल, विशाखा, रेवती, श्रवण, अनुराधा शतभिषामें पशुओंका लेना उत्तम है और तीनों पूर्वा, मृगशिर, कृत्तिका, विशाखा, अश्विनी, धनिष्ठा, स्वाती, आर्द्रा नक्षत्रोंमें गौ, भैंस, हाथी, घोडा आदि नानाप्रकारके पशुओंका गमन बेचना उत्तम है । अब हाथीके दांतका छेदन लिखते हैं-ज्योतिर्निबन्धमें कहा है चित्रा, श्रवण, अश्विनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा,

दन्तिनां शुभदं कर्म पुष्ये हस्ते च कर्तनम् ॥" अथ निक्षेपः । " भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषा मघा तथा । चित्रा ज्येष्ठा विशाखा च मूलं मृगपुनर्वसू ॥ एभि-र्दत्तं प्रयुक्तं च यच्चन्निक्षिप्यते धनम् । पृष्ठतो धावमानस्य तद्धनं नोपपद्यते॥२॥" अथ ऋणमोक्षः । श्रीधरः-"वागीशमन्ददिवसांशकलग्नयुक्ते रिक्तासु मन्ददिवसे कुलिकोदये च । मैत्रद्वितीयपदमैत्रमुहूर्तयुक्ते राश्युद्गमे च ऋणमोक्षमुशन्ति सन्तः ॥" अथ राजमुद्रा ।"मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु योगे प्रशस्ते शनिचन्द्र-वर्ज्यम् । वारे तिथौ पूर्णजयाह्वये च मुद्राप्रतिष्ठा शुभदा हि राज्ञाम् ॥ " अथ नौकानिर्णयः । चण्डेश्वरः-" पौष्णाश्विनीतुरगवारुणमित्रचित्राशीतोष्णरश्मिव-सवोऽनलवंत्यमूनि । वारे च जीवभृगुनन्दनके प्रशस्ते नौकादिसंघटनवाहनभेषु कुर्यात् ॥" अथ भोगः । "गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषु स्यात् । स्वात्युत्तरासु कुर्याच्छयनासनभोगभोगादि ॥ " अथ श्मश्रुकर्म । श्रीपतिः-"पुष्ये पौष्णे चाश्विनीष्वैंदवे च शाक्रे हस्ताद्ये त्रिके भेऽप्यदित्याः। क्षौरं कार्यं वैष्णवादित्रये च मुक्त्वा भौमादित्यपाताङ्गिवारान् ॥ न स्नानभुक्तो-त्कटभूषितानामभ्यक्तयात्रासमरोत्सुकानाम् । क्षौरं विदध्यान्निशि संध्ययोर्वा

---

पुष्य और हस्तमें हाथियोंका कर्म उत्तम फलदायक है अर्थात् हाथीदांतका कर्तन आदि । अब निक्षेप ( धरोहर ) को लिखते हैं-भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखा, मूल, मृगशिरा, पुनर्वसुमें दिया वा किसी कार्यमें लगाया अथवा जो धन रक्खा जाता है वह पीछे दौडते हुए भी धनीको प्राप्त नहीं होता । अब ऋणमोक्षको लिखते हैं-श्रीधर कहते हैं कि, बृहस्पति, शनैश्वरसे युक्त नवांशके लग्नमें, रिक्ता और शनिवार कुलिकके उदयमें, अनुराधाके दूसरे चरण वा योगमें और राशिके उदयमे सज्जनोंने ऋणके मोक्षका करना लिखा है ।अब राजमुद्रा ( सिक्का ) को लिखते हैं । मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चर संज्ञक नक्षत्र शनैश्वर और चन्द्रवारसे भिन्न श्रेष्ठ जय देनेवाले वार और तिथिमें राजाओंकी मुद्राका खुदवाना उत्तम है । अब नौकाको लिखते हैं-चण्डेश्वर कहते हैं कि रेवती, अश्विनी, शतभिषा, अनुराधा, चित्रा, मृगशिर, हस्त, धनिष्ठा, कृत्तिका नक्षत्र, बृहस्पति, शुक्रवारमें नौका निर्माण और चलाना करे । अब भोगको लिखते हैं । पुष्य, हस्त, अनुराधा, अभिजित्, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, स्वाती, तीनों उत्तरामें शयन और भोगोंको करना चाहिये । अब श्मश्रुकर्म ( हजामत ) कहते हैं । श्रीपति लिखते हैं कि, पुष्य, रेवती, आश्विनी, मृगशिर, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्रोंमें, भौम, रवि, शनै-श्चर वारोंको वर्ज्य कर क्षौर बनावे, स्नान, भोजनके उपरान्त, श्रेष्ठ भूषणोंका भूषित, उब-टना, यात्रा और संग्राममें उद्यत, रात्रि, सन्ध्या और नौवें दिन जीवनके अभिलाषी

जिजीविषूणां नवमे न चाह्नि ॥ २ ॥ " त्रिस्थलीसेतौ वृद्धगार्ग्यः-" रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि । श्राद्धाहः प्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरेषु वर्जयेत् ॥ " गार्ग्यः-" षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा । आसु सन्निहितं पापं त्रिषु तैले भगे क्षुरे ॥ " राजमार्तण्डः-" देवकार्ये पितुः श्राद्धे रवेरंशपरिक्षये । क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥ " बृहस्पतिः-" राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् । श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥ " तथा-" क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके ॥ " केचित्तूत्तरार्धमन्यथा पठन्ति-" मुण्डनस्य निषेधेऽपि कर्तनं तु विधीयते । " नारदः-" नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे । उद्वाहेऽखिलवारर्क्षे तिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥ " भारते-" प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयीत समाहितः । उदङ्मुखोऽथवा भूत्वा तथायुर्विन्दते महत् ॥ " अपरार्के-"उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः । केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥ दक्षिणं

---

मनुष्यको क्षौर न कराना चाहिये। त्रिस्थलीसेतुमें वृद्ध गार्ग्य कहते हैं कि रवि, मंगल, शनैश्चर, रात्रि, व्यतिपात, व्रत और श्राद्धके दिन, प्रतिपदा, रिक्ता, भद्राको क्षौर न करावे। गार्ग्य कहते हैं कि छठ, अमावस, पूर्णिमा, व्यतिपात, चतुर्दशी और अष्टमीको तेल, उबटन, रतिकर्म और क्षौरको करे तो शीघ्र ही पापयुक्त होता है। राजमार्तण्डमें लिखा है कि देवकार्य, पितृश्राद्ध, सूर्यके अंशकी घटती, जन्ममास और जन्मनक्षत्रमें क्षौर न करावे। बृहस्पति कहते हैं कि, राजाके कार्यमें लगे और राज्यसे जीविकावाले मनुष्योंकी डाढ़ी और रोम, नखके छेदनमें समयकी शुद्धि नहीं देखनी; उसी प्रकार लिखा है कि नैमित्तिक क्षौर और पिता आदिकी मृत्यु, दीक्षा, प्रायश्चित्त और तीर्थका क्षौर निषेधके दिनमें भी अवश्य करना चाहिये। कोई तो इस श्लोकके पिछले दो पदोंको और प्रकार पढ़ते हैं कि मुण्डनके निषेधमें भी बालोंको कतरवा ले। नारद कहते हैं कि राजा और ब्राह्मणकी आज्ञा, यज्ञ, मरण, बंधनसे छुटकारा, विवाह इन कर्मोंमें क्षौर संपूर्ण वार, नक्षत्र और तिथियोंमें भी मनोरथदाता है। भारतमें कहा है-पूर्व वा उत्तरको मुख करके सावधानतासे मनुष्य क्षौर करावे तो उसकी आयु अधिक होती है। अपरार्कमें कहा है-बुद्धिमान् मनुष्य उत्तर वा पूर्वको मुख करके क्षौर करावे और उत्तरके ही केश, रोम, नखोंको प्रथम

---

१ यथा च—आनर्तोऽहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोऽदितिर्दितिः श्रीशः । क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः । अर्थात्-जो निषिद्धदिनमें क्षौर करा लिया हो तो उसके दोषशान्तिके निमित्त शुभदिनमें क्षौर करा ले, आनर्त, अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, अदिति, दिति श्रीश इनके नामस्मरणसे क्षौर कराते समय सब दोष नष्ट होते हैं ॥

कर्णमारभ्य धर्मार्थं पापसंक्षये । शिखाद्ये नवसंस्कारे शिखाद्यन्तं शिरो वपेत् ॥ २ ॥ " यतीनां तु विशेषो निगमे-"कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत् " इति । अन्येऽपि विधिप्रतिषेधाः प्रागुक्ताः । अथेन्धनसंग्रहः । "ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुविष्णुविशाखयुक्ते । वारे कुजार्कभृगुनन्दनसोमजानां श्रेष्ठेन्धनस्य करणं भवति प्रशस्तम् ॥ " अथ नवान्नम् । श्रीपतिः-"रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्मतः पृथगपि द्वितये च । त्र्युत्तरेषु गदितं पृथुकानां प्राशनं नवनवान्नविधानम् ॥" अथ नवभोजनपात्रम् । ज्योतिर्निबन्धे-"भोज्यपात्रं सुधासिन्धौ घटयेद्वा समाहरेत् । तत्रान्नप्राशनप्रोक्ते काले भोजनमाचरेत् ॥" अथ नवपर्णफलादिभक्षणम् । चण्डेश्वरः-" मूलाश्विमैत्रकरतिष्यहरीन्द्रभेषु पौष्णोत्तरैन्दवपुनर्वसुवासवेषु । वारेषु भूमितनयार्कजवारवर्जं ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं हिताय ॥ " अथ होमे आहुतिपातः । ज्योतिषे-" तरणिविद्भृगुभास्करिचन्द्रमःकुजसुरेज्यविधुंतुदकेतवः । रविभतो दिनभं गणयेत्क्रमात् प्रतिखगं त्रितयं त्रितयं न्यसेत् ॥ दिनकरार्कितमःकुजकेतवो हुतभुजे न शुभास्त्वितरे शुभाः । हवनचक्रमिदं प्रविलोक्यतां हवनकर्मणि सर्वसमृद्धये ॥ २ ॥"

---

मुड़वावे । दक्षिण कानसे लेकर, धर्म और पापनाशके निमित्त क्षौर करावे और नये संस्कारमें शिखासे लेकर और शिखासहित मुंडन करावे । संन्यासियोंके निमित्त तो वेदमें विशेष लिखा है कि कुक्षि, लिंग, शिखाको त्यागकर ऋतुकी संधियोंमें मुण्डन करावे और भी विधि और निषेध प्रथम कह आये हैं । अब इन्धनसंग्रह लिखते हैं । रोहिणी, कृत्तिका, हस्त, मघा, मूल, तीनों पूर्वा, आर्द्रा, रेवती, अनुराधा, पुष्य, श्रवण, विशाखा नक्षत्र, मंगल, रवि, शुक्र, बुधवारमें इन्धनका संग्रह करना उत्तम है । अब नवान्न भक्षण लिखते हैं-श्रीपति कहते हैं कि रेवती, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, तीनों उत्तरामें बालकोंको नया अन्न प्राशन करावे । अब नये भोजनपात्रको वर्णन करते हैं-नये भोजनपात्रको अमृतसिद्धिके निमित्त अन्नप्राशनमें लिखे मुहूर्त्तमें बनवावे और लावे और उसी मुहूर्त्तमें उस पात्रमें भोजन करे । अब नये पत्ते और फल आदिके भक्षणको लिखते हैं । चण्डेश्वर कहते हैं कि, मूल, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुनर्वसु, धनिष्ठा इन नक्षत्रोंमें मंगल, शनैश्चर वारको त्यागकर हितार्थी मनुष्यको ताम्बूल और फलका भक्षण करना चाहिये। अब होममें आहुतिके पातको लिखते हैं-सूर्य, बुध, शुक्र, शनैश्चर, चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, राहु और केतु इन ग्रहोंके मुखमें आहुति तब जाती है कि, सूर्यके नक्षत्रसे हवनदिनके नक्षत्रको गिने और एक २ग्रहके निमित्त सूर्यके नक्षत्रसे तीन तनि नक्षत्र रख दे, उनमें सूर्य, शनैश्चर, राहु, मंगल, केतुके मुखमें आहुति जाय तो शुभकी नष्टता होती है । सम्पूर्ण समृद्धिके निमित्त होमकर्ममें इस आहुतिचक्रको